केदारनाथ सिंह: व्यक्ति एवं सर्जक

गोवा विश्वविद्यालय(गोवा), की पी-एच.डी. (हिन्दी)
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध - प्रबंध सार
2001

***

शोधार्थी
शेरपाल सिंह
हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

(Dr. G. Gopinathan) 21/1/02.
Examiner.

***

निर्देशक
डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र
रीडर, हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

T-123
SIN/Ked

Head
Department of Hindi
GOA UNIVERSITY

Dean
Faculty of Languages
Goa University

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगाँव, पणजी - गोवा - 403206
दिसंबर 2001

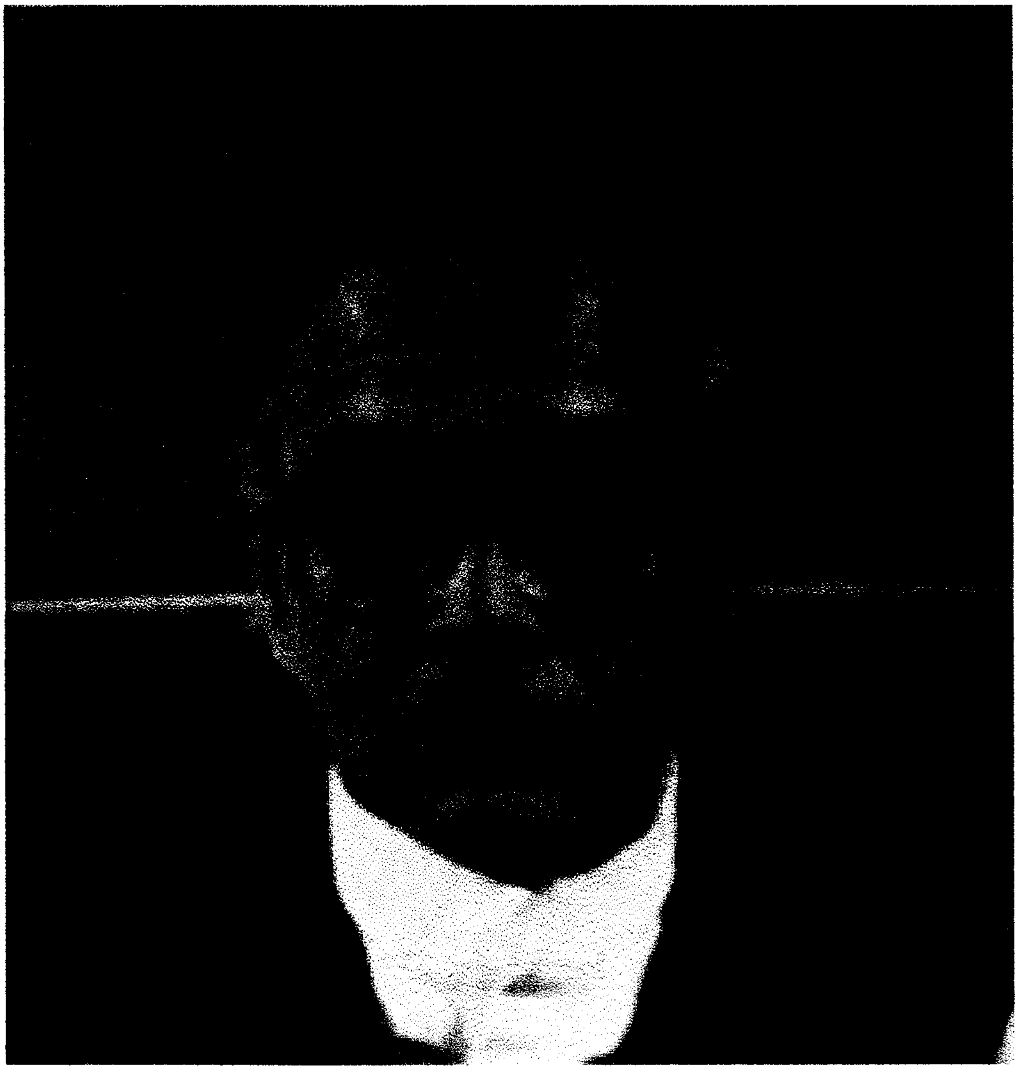

Declaration

I the undersigned hereby declare that the Ph.D. Thesis Titled " Kedar Nath Singh: Vyakti Avam Sarjak" has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of any degree of this university or elsewhere

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

Sherpal Singh

Christmas 2001

Taleigao Plateau

Goa

Certificate

As per the Goa University Ordinance, I certify that this thesis is a record of research work done by the candidate Sherpal Singh during the period of study under my guidance and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Dr. R. N. Mishra,
Reader, Department of Hindi,
Goa University,
Goa

Taleigao Plateau
Goa

पुरोवाक

केदारनाथ सिंह: व्यक्ति एवं सर्जक

साठोत्तर समकालीन रचनाकारों में केदारनाथसिंह व्यक्ति एवं सर्जक के रुप में अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं। इसकी परख उनके व्यक्तित्व एवं कविता की बनावट एवं बुनावट को समझकर ही किया जा सकता है। केदार जी इन दोनों रुपों में जटिल लगते हैं। यह जटिलता उम्र एवं अनुभव के साथ-साथ क्रमशः विकसित होती गई है। गोपाल राय का मानना है कि इनकी किसी कविता पुस्तक की समीक्षा लिखना भी समीक्षक के लिए एक चुनौती है। यही कारण है कि अभी तक केदारनाथ सिंह की कविताओं पर बहुत कम शोध कार्य हुए हैं। यह संकट मेरे लिए भी था लेकिन मैंने इसे चुनौती के रुप में स्वीकार किया। वस्तुतः केदारनाथ सिंह की ग्रामीण भाव बोध की कविताओं ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया।

केदार नाथ सिंह काव्य - विकास के हर दौर में वस्तु के स्तर पर जमीन से जुड़े रहे हैं और विधान के स्तर पर बिंब से। प्रारम्भिक दौर की कविताओं में जमीन की खुशबू अधिकांश रुप में मिलती है। सामान्यतः जमीन की महिमा का बखान करने वाले अधिकतर कवि अभिधा और सपाट बयानी पर आश्रित रहते हैं, जैसे कि नागार्जुन, शिवमंगल सिंह 'सुमन' और आगे चल कर धूमिल। केदारनाथ सिंह का रास्ता बाद में इनसे अलग हो जाता है और वे कविता को संवेदनात्मक बौध्दिकता से जोड़ते हैं। जिसमें विस्तार भी है और गहराई भी। 'टमाटर बेचती हुई बुढ़िया', 'बैल, बढ़ई',

'दुपहरिया', 'बसन्त गीत', 'धानों का गीत', 'बादल ओ' 'फागुन का गीत', 'टूटा ट्रक', 'रोटी', 'बिना नाम की नदी', 'सूर्यास्त', 'हाथ', 'नंगी पीठ' एवं 'माँझी का पुल' आदि कविताओं से मैं आकर्षित हुआ क्योंकि इनमे गाँव की मिट्टी की महक विद्यमान है 'बादल ओ' कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-

हम कि नदी को नहीं जानते
हम कि दूर सागर की लहरें नहीं मांगते ।
हमने सिर्फ़ तुम्हें जाना है,
तुम्हे माँगते हैं ।
आर्द्रा के पहले झोंके में तुम को सुंघा है
पहला पत्ता बढ़ा दिया है ।
लिये हाथ में हाथ हवा का-
खेतों की मेंडों पर घिरते तुम को देखा:
ओठों से विवरा छू लिया है ।
ओ सुनो ! बीज - वर्षी बादल,
ओ सुनो ! अन्न - वर्षी बादल
हम पंख माँगते हैं ।

प्रकृति एवं लोक जीवन के साथ-साथ कवि की निगाह समकालीन जीवन के तनाओं पर भी बराबर रही है, जिनमें युगीन समसामयिक चुनौतियाँ भी है । यह ठीक है कि इनकी कविताओं में तनाव आक्रोश के रुप में व्यक्त न होकर मीठी घुड़की के रुप में व्यक्त हुआ है । 'फर्क नहीं पड़ता' कविता में कवि ने अपने युग की विषमताओं को सीधे सरल रुप में पकड़ा है:-

आसमान मुझे हर मोड़ पर
थोड़ा – सा लपेटकर बाकी छोड़ देता है
अगला कदम उठाने
या बैठ जाने के लिए
और यह जगह है जहाँ पहुँचकर
पत्थरों की चीख साफ़ सुनी जा सकती है
पर सच तो यह है कि यहाँ
या कहीं भी फ़र्क नहीं पड़ता
तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'
वहाँ लिख दो 'सड़क'
फ़र्क नहीं पड़ता ।

तीसरा सप्तक के अपने वक्तव्य में केदारनाथ सिंह ने कई ऐसी बातें कही हैं जो उनकी कविता एवं काव्य विकास को समझने में सहायक हैं । वक्तव्य के अन्त में वे कहते हैं:

'समाज के प्रगतिशील तत्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों की परख मेरी रचनाओं में आ सकी है या नहीं, मैं नहीं जानता । पर उनके प्रति मेरे भीतर एक विश्वास, एक लालसा, एक लपट जरूर है, जिसे मैं हर प्रतिकूल झोंके से बचाने की कोशिश करता हूँ , करता रहूँगा ।'

प्रगतिशील मूल्यों के प्रति अपनी प्रतिबध्दता की घोषणा के साथ वे यह भी स्वीकारते हैं :-

'कला का संघर्ष एक तरह का आत्म संघर्ष होता है, विशेष रुप से एक नये कवि के लिए । कवि के अनुभव और उसका दर्शन इस संघर्ष को केवल दिशा भर देते हैं उसे समाप्त नहीं कर देते ।

मेरी कुछ कविताओं में इस संघर्ष की झलक बहुत साफ है। मैं मन को बराबर खुला रखने की कोशिश करता हूँ ताकि वह आस –पास के जीवन की हल्की से हल्की आवाज को भी प्रतिध्वनित कर सके।

इस सप्तक में संकलित केदार नाथ सिंह की कविताएं कई तरह की है, लेकिन जिन कविताओं से उनकी पहचान बनी, वे लोक–भूमि पर रचित कविताएँ हैं। ये कविताएं न केवल लोक जीवन का कोई न कोई प्रसंग हमारे सामने लाती है, बल्कि इनकी धुनें भी प्राय: लोकगीतों वाली हैं। "झरने लगे नीक के पत्ते, बढ़ने लगी उदासी मन की' और 'रात पिया पछवारे पहरू ठनका किया' आदि गीत जब प्रकाशित हुए तो छायावादोत्तर हिन्दी कविता के बासीपन से भरे वातावरण में ये भी हवा के ताजे झोंके की तरह लगे।

धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर।
चन्दा को बाँधेंगे कच्ची कलगियों
सूरज कोसूखी रेत में
आना जी बादल ज़रूर ।

एवं

गीतों से भरे दिन फागुन के ये गाये जाने को जी करता।
ये नही बांधे नहीं बॉधते, बाहें
रह जातीं खुली की खुली,

ये तोले नहीं तुलते, इस पर

ये आँखे तुली की तुली,

ये कोयल के बोल उड़ा करते, इन्हें थामें हिया रहता ।

इन गीतों में ग्राम जीवन एवं प्रकृति की नई संवेदनाएं ही नहीं व्यक्त हुई अपितु लोकगीतों की कसावट भी मौजूद थी। केदारनाथ सिंह के रचनाकाल के पूर्व एवं दौरान लोक-गीतों की अच्छी परपंरा विद्यामान थी। इस सप्तक में संकलित केदारनाथ सिंह की कविताओं के चित्र और संगीत को देखकर लगता है कि उनकी कवि – प्रतिभा को ग्रामीण जीवन के परिवेश ने प्रेरित किया। इसमें दूसरी तरह की कविताएं प्यार की कविताएँ है पर उनमें भी लोक भूमि पर रचित कविताओं वाला हर्षोल्लास मौजूद है:

रूको, आंचल में तुम्हारे

यह समीरन बाँध दूँ, यह टूटता प्रन बाँध दूँ।

एक जो इन उँगलियों में

कहीं उलझा रह गया है

फूल – सा वह काँपता क्षण बाँध दूँ।

केदारनाथ सिंह को बिम्बों का कवि कहा जाता है । इनकी कविताओं में सबसे अधिक आदिम बिम्ब प्राप्त होते हैं। आरम्भ से ही कवि का लगाव प्रकृति से था और आज भी वह किसी –न–किसी रूप में उससे जुड़ा है। ये आदिम बिम्ब जातिगत संस्कारों, देश, काल और वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। केदारनाथ सिंह ने न केवल प्रकृति को बल्कि मनुष्य के सारे

क्रियात्मक और मिथकीय विश्वासों को आदिम बिम्ब के रुप में ग्रहण किया है । इस तरह से प्रकृति, मानवेतर विश्वासों से सम्बन्धित देवी–देवताओं तथा आदिम रीति – रिवाजों के बिम्ब इसके अन्तर्गत आते हैं । केदारनाथ सिंह की कविता में सौन्दर्य बोध की प्रवृति के कारण प्रकृतिक; बिंब अधिक हैं । नये पत्तो के आगम धान की रोपाई, रात, शरद प्रात, बादल, चाँदनी आदि से सम्बन्धित बिम्ब उनकी आरम्भिक कविताओं में प्राप्त होते हैं । बाद की कविताओं में प्रकृति के ये बिम्ब मानव जीवन से सम्बन्धित है: जैसे 'पकती हुई जमीन', मनुष्य के सन्दर्भ में और पेड़ जारूस का बिम्ब हैं ।

आदिम बिम्ब के पश्चात् अलंकृत बिम्ब सबसे अधिक हैं । यद्यपि केदार जी सहज अभिव्यक्ति के कवि हैं, किन्तु कविता में सम्प्रेषणीयता को सघन बनाने के लिए वे अलंकृत बिम्बों का प्रयोग करते है । 'विदा गीत' में आए बिम्ब मनोदशा को प्रकट करते है एवं 'शरद –प्रात' व 'वसन्त गीत' के बिम्ब वातावरण को सृजित करते है:

सुबह उठा तो ऐसा लगा कि शरद आ गया,
आँखों को नीला – नीला आकाश भा गया
धूप गिरी ऐसे गवाक्ष से
जैसे काँप गया हो शीशा,
मेरे रोम – रोम ने तुमको
पता नहीं क्यों बहुत असीसा
शरद तुम्हारे खेतों में सोना बरसाये
दज्जों पर लौकियाँ चढ़ाये

टहनी – टहनी फूल लगाये
पत्ती– पत्ती ओस चुआये
मेड़ो– मेड़ो दूब उगाये
शरद तुम्हारे बालों में गुलाब उलझाये ।

बिम्बों के साथ–साथ, हिन्दी कविता को लोक जीवन की ओर लौटाने एवं भाषा शैली व शिल्प को लोक संबंध बनाने हेतु केदारजी ने महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं । लोक जीवन से गहरी सम्पृक्ति तो उनकी कविताओं में आरम्भ में थी, परन्तु उनमें गीतात्मक अन्दाज था । बाद के वर्षों में उन्होंने जो परिपक्वता प्राप्त की है वह भारत की जन चेतना से इतनी एकाकार है कि उनके कविता प्रयोगों को आज की अधिसंख्यक कविताओं से आसानी से विलगाया जा सकता है । केदारनाथ सिंह की कविताओं में आटा, दाल, नमक, पुदीना,थैले, डोलचियाँ, दियासलाई गाय, बछड़ा घास , पते, खुर कछार, तिल – गूड़ –लावा, भैंस, कुम्हार, आग, लोहा चारपाई, गड़रिया, लालटेन अदि शब्दों का समावेश जान बूझ कर नहीं किए हैं, अपितु वे हवा और पानी की भाँति स्वभाविक रुप से प्रविष्ट हो गये है, जिसके कारण आज की कविता से ऊबा और झुझलाया हुआ पाठक इनकी रचनाओं से आत्मिक भाव से जुड़कर काव्यास्वाद की अनुभूति करता है । यह सही है कि बिम्बों की जटिलता को तोड़ने में समय जरुर लगता है लेकिन जब वे खुल जाते हैं तो कविता समग्रता में आनंद बोध पैदा करती है ।

केदारनाथ सिंह की कविताओं से आज की दुर्दशा और ऐसे वातावरण में जीते हुए आदमी यहाँ तक की पशु –पक्षी–प्रकृति – वनस्पति आदि की ताकत और जिजीविषा का भी बोध होता है

जिसे इन्होंने निराले अन्दाज में प्रस्तुत किया है:–

"नहीं ,
हम मण्डी नहीं जायेंगे
खलिहान से उठते हुए
कहते हैं दाने
जाऐंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे
जाते जाते
कहते जाते हैं दाने ।"

'मौसम चाहे कितना खराब हो उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएं' शीर्षक कविता परिवेशगत जीवन की विडम्बनाओं को व्यक्त करती हुई इस बात का संकेत देती है कि परिस्थितियाँ चाहे जितनी भी विकट हो, रचनाकार उनकी जड़ों तक पहुँच कर ही सांस लेता है । केदार जी के कविता संग्रहों में संकलित कविताएं अपने समय की धड़कन को जताती हुई आगे बढ़ती हैं । मूलत: ग्रामीण बोध के रचनाकार होते हुए भी वे अपने आप को समसामयिक भाव बोध से अलग नहीं कर पाए हैं । 'बाघ' जैसी युगबोध की कविता अपनी संपूर्णता में व्यक्त हुई है ।

केदार जी को हम काव्यान्दोलनों के किसी खाने में आवद्ध नहीं कर सकते । विचार और भाषा की दृष्टि से इनकी कविताएं अन्य रचनाकारों से अलग हैं ।इनकी कविताएं कविता के आत्मसंघर्ष का बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं । वे बिना किसी शोरगुल के एक गहरे आत्मसंघर्ष से गुजरते हुए, वहाँ पहुची हैं जहाँ वे कहते है – यहाँ से देखो! सामाजिक यथार्थ के दबाव से

केदारनाथ सिंह की कविता क्रमश: तीव्र होते आत्म - संघर्ष की सूचना देती है:-

वह धीरे से हँसता है
और मेरी मेज हिलने लगती है,
मेरी मेंज पर रखी किताबें
हिलने लगती हैं
मेरे सारे शब्द और अक्षर हिलने लगते हैं ।

केदारनाथ सिंह कविता को एक सामाजिक कर्म मानते हुए उसकी अर्थक्ता की तलाश में निरंतर लगे हुए हैं । इनकी कविता लोकजीवन के घर - आंगन, खेत- खलिहान और नदी-नालों से शुरू होकर महानगरीय एवं समसामयिक जीवन संदर्भों को चित्रित करती है । जिसकी विकास यात्रा को तीसरा सप्तक एवं उनके अन्य काव्य संग्रहों की कविताओं के माध्यम से जाना जा सकता है ।

प्रस्तुत शोधं प्रबंध को मैंने सात अध्यायों में विभाजित कर कवि के जीवन एवं सर्जक रुप को जानने की कोशिश की है ।

प्रथम अध्याय के अंतर्गत मैंने मुख्यरुप से केदारजी के जन्म, कुलपरिवार, शिक्षा एवं दाम्पत्य जीवन की विस्तृत जानकारी दी है ।

व्यक्तित्व विश्लेषण के दूसरे अध्याय में जीवन परिवेश स्वभाव एवं मित्र मंडली तथा आचार्य बनाम कवि जीवन का उल्लेख किया गया है । अंत में सम्मान एवं कृतियों की सूची दी गयी है ।

तीसरे अध्याय में कवि की काव्यानुभूति एवं प्रेरणा में ग्रामीण परिवेश के साथ–साथ प्रतिष्ठित समकालीन रचनाकारों से संपर्क एवं कृतियों के संक्षिप्त परिचय की चर्चा की गई है ।

काव्यान्दोलनों के अंतर्गत तारसप्तकों के प्रकाशन का खास महत्व रहा है । चौथे अध्याय में प्रमुख रुप से तीसरा सप्तक और केदारनाथ सिंह शीर्षक के अंतर्गत कवि के साहित्य चिंतन एवं वक्तव्य का समावेश किया गया है । इसके साथ ही कल्पना और छायावाद कृति की सूक्ष्म विवेचना प्रस्तुत की गई है ।

पांचवे अध्याय में कवि के भावजगत के अध्ययन के अन्दर परिवेशगत यथार्थ, प्रकृति प्रेम सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन तथा लोकजीवन के महत्व को केदार की कविताओं के संदर्भ में रेखांकित किया गया है ।

छठें अध्याय में केदार जी की काव्यमान्यताओं का विवेचन उनके विविध काव्यसंग्रहों के आधार पर किया गया है ।

कवि की बिम्ब विधायिनी भाषा एवं शैली की चर्चा सातवें अध्याय में की गई है ।

अंत में उपसंहार के माध्यम से कवि की जीवन दृष्टि एवं विचारधारा का समग्र मूल्यांकन किया गया है ।

शोधकार्य के इस दुर्गम पथ पर चलने की प्रेरणा गुरूवर डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र से मिली । मेरी मूक शब्दावली ही उनके प्रति कृतज्ञता की प्रतीक होगी ।

इस राह पर आगे बढ़ने के लिए प्रो. नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी ,वं डॉ. रामजन्म शर्मा जैसे वरिष्ठ साहित्यकारों का सम्बल मिला । मैं आप सबके प्रति विनम्र शब्दों में आभार व्यक्त करता हूँ ।

डॉ. बालकृष्ण शर्मा रोहिताश्व, डॉ. श्रीमती इशरत खान, श्रीमती वृषाली मांद्रकर, डॉ. रवीन्द्र कात्यायन, आदि विभागीय प्राध्यापकों / प्राध्यापिकाओं के सहयोग के बिना तो शायद मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाता ।

श्रीमती प्रार्थना नाईक एवं रविकांत एवं अन्य कर्मचारियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

मेरी शोध यात्रा को अपनी मंजिल तक पहुंचने में डॉ. पी. वी. कुन्नुर एवं उनके सहयोगियों के सहयोग के लिए आभार व्यक्त करता हूँ ।

शोध प्रबंध –सार के टंकण कार्य को बड़ी तत्परता से पूरा करने के लिए श्री मनमोहन केळकर को धन्यवाद देता हूँ ।

अंत में मैं अपनी सहधर्मिणी श्रीमती गीता और पुत्र तपेश सिंह के साहस एवं धैर्य की सराहना करता हूँ ।

धन्यवाद !

शेरपाल सिंह

विषयानुक्रमणिका

केदारनाथ सिंह: व्यक्ति एवं सर्जक

पृ. संख्या

प्रथम अध्याय:- 15 - 36

केदारनाथ सिंह का जीवन परिचय

1.1 जन्म एवं कुलपरिवार

1.2 प्रारम्भिक शिक्षा

1.3 दाम्पत्य जीवन

द्वितीय अध्याय:- 37 - 63

केदारनाथ सिंह: व्यक्तित्व विश्लेषण

2.1 प्रारम्भिक जीवन परिवेश

2.2 लोक साहित्य का प्रभाव

2.3 स्वभाव एवं मित्र मंडली

2.4 आचार्य जीवन बनाम कवि जीवन

2.5 सम्मान एवं कृतियाँ

तृतीय अध्याय:- 64 - 108

केदारनाथ सिंह: काव्यानुभूति एवं प्रेरणा

3.1 ग्रामीण परिवेश

3.2 प्रतिष्ठित समकालीन रचनाकारों से संपर्क

3.3 प्रारंभिक काव्य प्रकाशन

3.4 काव्य रचना का अनवरत क्रम

चतुर्थ अध्याय:- 109 - 133

तीसरा सप्तक और केदारनाथ सिंह

4.1 सप्तकों का स्वरूपगत विवेचन

4.2 कवि का साहित्य चिंतन

4.3 कवि का वक्तव्य

4.4 काव्य कल्पना

पचंम अध्याय:- 134 - 171

कवि केदारनाथ सिंह के भावजगत का अध्ययन

5.1 परिवेशगत यथार्थ

5.2 प्रकृति सौन्दर्य

5.3 प्रेमानुभूति

5.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन

षष्ठ अध्याय:- 172 - 215

केदारनाथ सिंह की काव्यगत विचारधारा

6.1 गीत रचना का क्रमिक विकास

6.2 अभी विल्कुल अभी एवं नई कविता

6.3 जमीन पक रही है एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु

6.4 यहाँ से देखो एवं सामाजिक दृष्टि

6.5 अकाल में सारस एवं बाघ कविता का विश्लेषण

6.6 उत्तर कबीर और आख्यान की परंपरा

सप्तम अध्याय:- 216 - 259

केदारनाथ सिंह का काव्यशिल्प

7.1 काव्यभाषा

7.2 बिंब एवं प्रतीक विधान

7.3 काव्य शैली

उपसंहार 260 - 267

परिशिष्ट:

1. केदारनाथ सिंह पर प्रो. काशीनाथ सिंह का व्याख्यान

(दिनांक ०७/०३/१९९८) 268-276

2. केदारनाथ सिंह से शोधार्थी की भेंट वार्ता - 1

(दिनांक २३ /०६/ १९९९) 277 -280

3. केदारनाथ सिंह से शोधार्थी की भेंट वार्ता - 2

(दिनांक २१/११/२००१) 281 - 284

संदर्भ ग्रंथ - सूची 285 - 291

प्रथम अध्याय

केदारनाथसिंह का जीवन परिचय

प्रथम अध्याय

केदारनाथसिंह का जीवन परिचय:-

केदारनाथसिंह तीसरे सप्तक के चौथे कवि एवं समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं ।गाँव एवं कविता से इन्हें बेहद प्रेम है, मूलरूप से कविता से जुड़े और आज भी उसी सक्रियता से उसमें रचनारत हैं । यहाँ थोड़ी सी चर्चा कविता के संदर्भ में करके मैं पुन: उनके व्यक्तित्त्व एवं जीवन – परिवेश पर प्रकाश ड़ालना उचित समझता हूँ ।

मनुष्यता के इतिहास में सबसे लम्बा सफ़र कविता ने ही तय किया है, और सबसे अधिक अपेक्षाएं भी कविता से ही की गई हैं । इस संबंध में "मैकाले" ने 'मिल्टन' पर लिखे गए एक निबंध के माध्यम से यह घोषणा की थी कि :- "सभ्यता की उत्तरोत्तर प्रगति के साथ-साथ कविता का पतन होता जाएगा ।"[1] फिर भी कविता की यात्रा और उससे की जाने वाली अपेक्षाओं का सिलसिला अभी तक जारी हैं, और आज भी कविता हमें जीवन एवं जगत के प्रति जागरूक बनाए रखे है ।

यहीं पर यदि हम कविता के अतीत एवं वर्तमान को परखें तो कविता, कई सोपानों को पार करती हुई निरन्तर भविष्य की और उन्मुख है । इस कड़ी में कविता ने अपना रूप-रंग एवं व्याकरण बदला है साथ ही उसके कथा शिल्प और स्वरूप में भी निरंतर बदलाव आया है, और इसने कई उतार -चढाव भी देखे हैं ।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कविता के इतिहास ने मानव जीनव के साथ ही अपनी यात्रा आरम्भ की, और इस दौरान आने वाले वैयक्तिक आत्म संघर्षों एवं परिस्थितियों का

डटकर मुकाबला किया, जिसका संबंध हमारी सभ्यता और संस्कृति से विशेष रूप से रहा है। और जिसने हमें जीवन और जगत को जानने और समझनें में भी योगदान दिया।

हिन्दी कविता, विशेषकर आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास मनुष्य के आत्म संघर्षो का इतिहास है, अत: इन आत्म संघर्षों को समझे बगैर न तो हम आधुनिक हिन्दी कविता को समझ सकते हैं, और न ही उसके किसी कवि को। इसलिए कवि और कविता को समझने के लिए उसके जीवन परिवेश को समझना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

1.1 जन्म एवं कुल परिवार:-

केदारनाथ सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल जिले के चकिया नामक ग्राम में गौतम क्षत्रिय कुल में १९ नवम्बर १९३४ में हुआ था। केदार जी अपने कुल को गौतम बुद्ध से जुड़ा हुआ एवं स्वयं को उनका वशंज मानते है। इसका कोई ठोस परिमाण न होने के कारण वे स्वयं भी संदेह पूर्ण हैं। अपने कुल परिवार के बारे में बताते हुए वे स्वयं कहते है:- "मेरे एक चाचा बर्मा में रह चुके थे। मैं उससे महाभारत की कहानियाँ सुना करता था। उन्हें सारा महाभारत कंठस्थ था। वो बर्मा की कहानियाँ भी सुनाते थे। मैं उनसे अंग्रेजी भी पढ़ता था। उन्होंने ही बताया था कि हम गौतम क्षत्रिय होने के नाते बुद्ध के वंशज हैं। हमारे परिवार में ये विश्वास है कि हमारा खानदान गौतम बुद्ध से जुड़ा है। ये गलत हो तो भी भीतर बैठा हुआ है।"[2]

केदार का बचपन प्रकृति के सुरम्य वातावरण में बीता, जहाँ पर कि गंगा और सरयू जैसी पवित्र नदियाँ बहती हैं, और साथ ही बाग–बगीचों और जंगलों का अपना खास दृश्य विद्यामान था। ग्रामीण जीवन और प्रकृति की अमिट छाप केदार के बालमन पर पड़ी, जिसका उल्लेख करते हुए वे स्वयं कहते है:– "चित्रों के प्रति मन में जो आकर्षण है, उसके कुछ कारण हैं। प्रकृति बहुत शुरू से मेरे भावों का आलम्बन रही है। मेरा घर गंगा और घाघरा के बीच है। घर के ठीक सामने एक नाला है जो दोनों को मिलाता है। मेरे भीतर भी कहीं गंगा और घाघरा की लहरें बराबर टकराती रहती हैं। खुले कछार, मक्का के खेत और दूर–दूर तक फैली पगडण्डियों की छाप आज भी मेरे मन पर उतनी ही स्पष्ट है जितनी उस दिन थी, जब मैं पहली बार देहात के ठेट वातावरण से शहर के धुमैले शतशः खण्डित आकाश के नीचे आया।"[3]

केदारनाथ सिंह की शैशवास्था दादी की गोद में बीती एवं बाल्यावस्था प्रकृति की गोद में। उन्होने दोनों का भरपूर आनन्द उठाया, और दोनों से ही उन्हें अगाध स्नेह और अपनत्व प्राप्त हुआ जो कालान्तर में उनकी रचनाओं के प्रेरणा स्त्रोत बने। परिवार एवं प्रकृति के प्रति उनके उद्‌गार इस प्रकार है:–

"गांव में परिस्थिति के साथ जीने की शिक्षा मिलती है। तैरना, पैदल चलना, पेड़ पर चढ़ना – ये सब गाँव के उपहार हैं।"[4]

प्रकृति के सौम्य स्वरुप के साथ-साथ केदारजी ने उसके डरावने पन को भी अनुभव किया। "चकिया" गाँव दो नदियों के बीच होने के कारण बाढ़ का वर्ष दर वर्ष आना सामान्य सी घटना थी। इस भयभीत कर देने वाली प्रकृति को भी केदारनाथ सिंह ने स्मृतियों में संजोया है। इसका उल्लेख वे इस प्रकार करते है:–

"बाढ़ की पहली स्मृति नदी का विराट् रूप है। मैं भयभीत हुआ था। उसकी गगनभेदी आवाज़, अचानक गड़गड़ धड़ाम की आवाज़ें, दूर से आती नावें अपनी पालों के पंख फैलाए उड़ने को तैयार, चीलों की तरह, शाम को कहीं डूब जाता सूरज बार-बार मुस्करा कर कुछ कहता-सा, उगते, पौधें, हाथों से मुँह छुपाए सहमे हुए अंकुर, बढ़ती बेले, खिलते फूल- सभी का प्रभाव मन पर पड़ता था।" [5]

बाल्यावस्था में केदार ने प्रकृति को बहुत समीप से निहारा है। प्रकृति की इस अनमोल छटा ने उनके मन पर एक अमिट छाप छोड़ी है। केदार जी प्रकृति के उन प्रसंगो को स्वयं दोहराते हुए कहते है:-

"बालमन में हर किसी को जानने की जिज्ञासा होती है। ये क्या है, वो क्या है, किसलिए है? मैं पकी फसलों को देखता। सोने के रंग की झूलती गेहूँ की बालियाँ, मीलों तक फैला सुनहरा जादू आँखो में चका चौध पैदा करता, पास बुलाता और रंग बदलता। मैं ठगा सा रहता, आँखे फाड़कर देखता। इसका क्या करूँ समझ न पाता। देखकर मन बल्लियों उछलता। कुछ होता जो ब्यान से बाहर था।" [6]

<u>कुल परिवार</u> : केदार के बाल मन में प्रकृति के अलावा उनके कुल परिवार के सदस्यों की स्मृतियाँ भी उतना ही ताजा हैं। इनका परिवार एक छोटा एवं साधारण सा क्षत्रिय किसान परिवार था। जो उत्तर-प्रदेश में बलिया जिले के एक छोटे से गाँव चकिया में रहता था। इस परिवार में केदार जी के माता-पिता के अतिरिक्त उनकी दादी माँ एवँ बुआ जी रहती थी। इस परिवार में केदारनाथ सिंह एकमात्र बाल सदस्य थे। चकिया गाँव की

स्मृतियों को केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं में पूर्ण रूप से उजागर किया है। अपने गाँव चकिया से आई एक चिट्ठी का जिक्र वे इस प्रकार करते है:-

कल गाँवसे /एक चिठ्ठी आई / बहुत दिनों बाद
शायद नदी ने भेजी थी
न दिन / न तारीख / न सिरनामा /बस ऊपर कोने में
एक बूँद की तरह / टाँका था / छोटा-सा प्यारा-सा
गाँव का नाम-
'चकिया' ।" [7]

'चकिया' गाँव से केदारनाथ सिंह को आज भी अत्यन्त लगाव है। वे चकिया की प्राकृतिक छटा एवं दादी माँ की गोद कभी नहीं भूल सकते।

दादी माँ : केदार दादी माँ उनके परिवार की मुख्य सदस्या थीं। क्योंकि केदार जी के दादाजी कलकत्ता में नौकरी करते थे। इसी कारण दादी माँ की यादगार, प्यार व दुलार को वे भुलाऐ नहीं भूलते। उनको दादी माँ से बेहद प्यार था। इस बात को स्वीकारते वे स्वयं कहते है :-

"दादी माँ बहुत प्यारी थीं। यूं लगता था- अगर संसार है तो वो दादी के जितना ही है।" [8]

केदार का बचपन दादी माँ की गोद में बीता। जहाँ एक और केदार जी की माँ घर के काम में व्यस्थ रहती, वहीं दूसरी ओर उनकी दादी उनको गोद में लेकर गीत गुनगुनाती, लोरियाँ गाती और कहानियाँ सुनाया करती थी। आपकी दादी माँ यद्यपि पढ़ी लिखी नहीं थी, परन्तु जीवनानुभवों की उनके पास कमी न थी।

लोक जीवन के रीति-रिवाज, शादी-ब्याह एवं अन्य अनुष्ठानों के प्रति विशेष रूचि रखती थीं। केदार जी के बचपन पर दादी माँ के लोक संस्कारों की अमिट छाप पड़ी और परिणाम स्वरूप गाँव व लोक जीवन उनके रोम-रोम में बस गया। प्रकृति एवं दादी माँ के सानिध्य के विषय में उनके विचार निम्न लिखित है :-

"प्रकृति का जो प्रभाव मेरे मन में है उसमें सबसे ज्यादा नदी ही मन में उमड़ती है। नदी और मेरी दादी।" [9]

बाबाजी:- आपके बाबा जी का नाम श्री भोलासिंह था, वे परिवार के मुखिया थे, परन्तु सरकारी नौकरी के कारण वो कलकत्ता में रहते थे और उनकी जिम्मेदारी का बोझ भी आपकी दादी ने ही उठाया। जैसा की मैने पहले भी कहा है, कि केदार जी एक अत्यन्त साधारण किसान परिवार में जन्में थे। थोड़ी सी जमीन थी, जो शायद घर खर्च चलाने लायक ही थी। इसी आर्थिक परिस्थिति के कारण आपके दादा जी को घर छोड़ कलकत्ता के एक बैंक में चतुर्थ श्रेणी की नौकरी करनी पड़ी। अपने परिवार की स्थिति एवं बाबा जी की परिस्थिति का उल्लेख करते केदार जी कहते है :-

"मैं बताना चाहता हूँ कि मैं सामंत नहीं हूँ। 'तीसरा सप्तक' के वक्तव्य में मैंने अपने को किसान का बेटा कहा था। मेरा परिवार एक छोटा काश्तकार था, जिसके पास दस-बारह बीघा जमीन थी। अब मेरे पास पांच बीघा जमीन है। हमारे यहाँ की जमीन अच्छी होती हैं। एक छोटा सा मकान है। बस यही है मेरे पास गाँव में। इस संपत्ति के आधार पर मैं सामंत होने का दंभ नहीं कर सकता। जमींदार मेरा परिवार कभी नहीं रहा। खाता पीता परिवार

रहा लेकिन सामंत कभी नहीं रहा। मेरे बाबा कलकत्ता के बैंक में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे। जिस परिवार का मुखिया चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी हो, वह परिवार सामंत कैसे हो सकता है।" [10]

पिताजी :-केदार के बाबा जी कलकत्ता में रहते थे इसलिए घर की देखभाल केदार जी के पिताजी ही करते थे, जो स्वभावत: संगीत के प्रेमी थे। केदार के पिताजी का नाम डोमन सिंह था। उनके नाम की व्याख्या करते हुए प्रो. काशीनाथसिंह गोवा विश्व विद्यालय में अपने व्याख्यान के दौरान बताते हैं:-

"इस तरह के नाम हमारे यहाँ ऐसे बच्चों के रखे जाते थे जो या तो जल्दी ही......., या जिनके जीवित रहने की सम्भावना कम रहती थी। तो उल्टे-सीधे नाम रखे जाते थे ताकि वे जीवित रह सकें। प्राईमरी स्कूल के अध्यापक थे इनके पिता, और स्वाधीनता संग्राम के सैनानी भी थे।" [11]

केदार के पिताजी ने स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में वे अपने गाँव के प्रमुख क्रान्तिकारियों में से एक थे। उनकी क्रान्तिकारी गतिविधियों को केदार के बालमन ने अपनी आँखो देखा है। इसकी याद करते केदार जी कहते है :-

"१९४२ का ध्यान है। मैने चौथी की परीक्षा दी थी। बयालीस का आन्दोलन याद है। मेरे स्कूल के ठीक पीछे थाना था। नौ अगस्त क्रान्तिदिवस कहलाता है। उस दिन थाने पर काँग्रेस ने झंडा फहराने की कोशिश की तो निहत्थी जनता पर ब्रिटिश सरकार ने पटापट गोलियाँ चलाई। बाईस लोग मारे गए। मैं भागा -२ दूसरे बच्चों के साथ थाने पर गया। पेड़ों के नीचे से छुपकर देखा, पिता का पता न चला। आखिर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते एक

तख्तपोश के नीचे लहुलुहान पिता को देखकर रोने लगा ।" [12]

कालान्तर में और ऐसी घटनाएं केदार जी के पिताजी के जीवन में घटी जिन्होंने केदार जी के मन पर गहरी चोट की। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद अंग्रेजों का दमन तीव्र होता गया, इस दौरान केदार जी के पिता को घर छोड़कर बाहर जाना पड़ा। इस घटना को उन्होंने एक साक्षात्कार के दौरान इस प्रकार दोहराया है :-

"बयालीस के आन्दोलन के बाद ही दमन शुरु हुआ था। घर जलने लगे, लुटने लगे, हमारे पिता फरार हो गए। घर बच गया।" [13]

इस प्रकार अंग्रेजों के खिलाफ़ उनका विद्रोह गहराता गया। घर एवं बच्चों की परवाह किए बिना वे रात-रात भर वे अंग्रेजों के दमन के विरुद्ध योजनाएं बनाते थे, और समय मिलता तो संगीत का आनन्द लेते थे। अपने पिताजी के बारे में उल्लेख करते केदार आगे बताते है :-

"मेरे पिता जी के शौक थे : राजनीति और संगीत। हमारे बैठके में गोपनीय मीटिंगें होती थी। अम्मा को कुछ पता रहता होगा। लोग अँधरे में आते, बातें करते और अँधरे में ही चले जाते।" [14]

केदार ने जहाँ देश-प्रेम के प्रति अपने पिता की अनुशक्ति देखी वहीं पर उनमें लोक जीवन में प्रचलित शकुन, अपशकुन और कई अन्य मान्यताओं के प्रति उनके उडिग विश्वास को भी देखा। शायद बचपन में पिता के द्वारा दी गई नसीहतों को उन्होंने अपनी कविताओं में भी व्यक्त किया है :-

"मेरे बेटे

कुएँ में कभी मत झाँकना
जाना,
पर उस ओर कभी मत जाना
जिधर उड़े जा रहे हो
काले-काले कौए।
मेरे बेटे,
बिजली की तरह कभी मत गिरना
और गिर भी पड़ो
तो दूब की तरह उठ पड़ने के लिए
हमेशा तैयार रहना
मेरे बेटे
बुध को उत्तर कभी मत जाना
न इतवार को पच्छिम
और सबसे बड़ी बात मेरे बेटे
कि लिख चुकने के बाद
इन शब्दों को पोंछकर साफ़ कर देना।" [15]

केदारनाथ सिंह के पिता के कार्यों एवं व्यवहार से उनके गाँव और पास पड़ोस के लोग इतना प्रभावित थे कि वृद्धावस्था में भी उनसे मिलने वालों का तांता लगा रहता। सन् १९९० में जब केदारनाथ सिंह अपने पिता को दिल्ली से गाँव लेकर गये तो उनसे मिलने दूर-दूर से लोग आए। मिलने वालों में सभी धर्मों के लोग होते थे। अपने पिता से मिलने आए एक वृद्ध का जिक्र करते हुए वे कहते है :-

"अबकी बार गाँव गया तो अपने वृद्ध पिता को भी दिल्ली

से साथ लेकर गया था। घर पहुँचने पर पिताजी से मिलने अनेक लोग आए, जिनमें इब्राहिम मियाँ भी थे। इब्राहिम मियाँ ने जिन्दगी भर ऊँट पर सामान की लदाई की और यह काम अब अपने बेटे को सौंप चुके हैं। उनकी उम्र अब पच्चासी के लगभग होगी जो मेरे पिताजी की भी है। उन दोनों वृद्ध जनों का मिलना एक अद्भुत घटना की तरह था; जिसमें गाँव की श्रेष्ठ परम्पराओं का सार–तत्व देखा जा सकता है। मैं ऐसा नहीं मानता कि शहर में ऐसे दृश्य नहीं देखे जा सकते। पर गाँव में इसकी सम्भावना अब भी ज्यादा बची हुई है।" [16]

केदारनाथ सिंह के पिता ने जाति–पाति से ऊपर उठ देश की आजादी के लिए कार्य किया। उनके इस कार्य की सराहना हर धर्म व जाति के लोगों ने की। उनके इस महान कार्य की प्रशंसा केदारनाथ सिंह जी ने अपनी एक कविता के माध्यम से करने कोशिश इस प्रकार की है:–

"छोटे से आँगन में
माँ ने लगाये हैं
तुलसी के बिरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ।" [17]

<u>माता</u> :– केदारनाथ सिंह जी के पिता के इस महान कार्य में उनकी माता ने पिताजी का पूरा साथ निभाया। केदारनाथ सिंह के पिताजी यद्यपि अब इस दुनिया में नहीं रहे।

करीब दो वर्ष पूर्व सन् १९९८ में दिल्ली में उनका देहान्त हो गया था। जबकी आपकी माता श्रीमती लाल झरी देवी आज भी आपके साथ दिल्ली में रह रही है। इस वृद्धावस्था में भी वे अपना छोटा-मोटा काम करके केदारनाथ सिंह जी के कार्य में सहयोग दे रहीं है।

केदारनाथ सिंह की माँ ग्रामीण संस्कारों में पली अशिक्षित महिला है। आप के बचपन में वे घर गृहस्थी के सारे काम-काज करते हुए अपने बेटे केदार का विशेष ध्यान रखती थी। काम में व्यस्त होनें के बाद भी अपने होने का एहसास कराती रहती। 'पिता' राजनैतिक गतिविधियों एवं अन्य बाहरी कार्यों में व्यस्त रहते थे, इसलिए घर की सम्पूर्ण जिम्मेदारी केदारनाथ सिंह जी की माँ को ही उठानी पड़ती थी। अपनी माँ की गृह कार्य कुशलता के बारे में केदारनाथ सिंह बताते है:-

"इन सब के बीच हर समय अपने होने का एहसाह कराती, अपने पास बुलाती, हर वक्त काम में लगी हुई होती मेरी माँ। किसान परिवार में अनगिनत काम। फसल आए तो उसे सुखाना, बनाना, सँवारना, सँभालना माँ को बहुत काम थे। उनके होने का प्रमाण घर के कोने कोने में था।" [18]

अपनी माँ के कार्यों को केदारनाथ सिंह जी ने अपनी कविताओं में भी महत्वपूर्ण जगह दी है। माँ केदार के बारे में कितना चिंतित रहती। माँ का वह भोलापन जिसे केदार कभी नहीं भूल सकते। उसी की व्याख्या करते वे कहते है :-

"माँ मेरे अकेलेपन के बारे में सोच रही है
पानी गिर नहीं रहा
पर गिर सकता है किसी भी समय
मुझे बाहर जाना है

माँ चुप है कि मुझे बाहर जाना है
और तुरंत आऊँगा
बहुत-से अजन्मे पुल
जिनसे होकर मुझको
इस छोटे जीवन के
अनगिनती
उसका गिलास
वह सफेद साड़ी जिसमें काली किनारी है
मैं एकदम भूल जाऊँगा
जिसे इस समूची दुनिया में माँ
और सिर्फ मेरी माँ पहनती है ।" [19]

केदारनाथ सिंह जी के जीवन में उनकी माँ के लालन-पालन का एक बड़ा ही अहम योगदान रहा । माँ के बाद उनकी बुआ जी के सानिध्य का प्रभाव केदारनाथ सिंह जी के बचपन पर विशेष रुप से पड़ा ।

<u>बुआजी :</u>- केदारनाथ सिंह की बुआ जी भी उसी परिवार की सदस्या थी । वे काफी कठोर स्वभाव की थी। केदारनाथ सिंह की गलतियों को वे कभी बर्दाश्त नहीं करती थीं । वे केदार की पढ़ाई का विशेष ध्यान रखती थीं । पढ़ाई के दौरान हुई एक घटना का वर्णन करते केदारनाथ सिंह कहते है :-

"गणित तो मेरा कमजोर था ही । परीक्षा कड़ी होती थी । लिहाज़ा गणित में बाकायदा फेल हो गया । घर में धाकड़ बुआ थी, उन्होंने कहा पढ़ाई बन्द कर दो, वहाँ लौटकर जाने से क्या

मतलब, गाँव में तुम्हारा दाखिला करवा देते है। मैंने बुआ की चिरौरी की – बुआ बस एक मौका और दो, अगर फिर फेल हुआ तो खेती करूँगा। बुआ पिघली और बनारस भेज दिया।" [20]

बुआजी के अतिरिक्त एक और सदस्या जो उनसे बेहद प्यार करती थीं– वह थी नानी जी । यद्यपि केदार जी अपने घर–परिवार से अभिन्न रूप से जुड़े थे। फिर भी वे प्राय: ननिहाल जाया करते थे, क्योंकि इनकी माँ नानी की अकेली संतान थी और नानी इन्हें बहुत स्नेह देती थी। केदारनाथ सिंह का ननिहाल परसागढ़ बिहार में था। वृद्धावस्था में नानी ने सारी जमीन जायदाद केदारनाथ सिंह के नाम कर दी थी। बचपन में केदारनाथ सिंह बराबर अपनी नानी के यहाँ जाया करते थे। इनकी नानी साधु सन्तों के विषय में कतिपय प्रश्न पूछा करती थी। अपने ननिहाल व नानी के बारे में बताते हुए केदारनाथ सिंह कहते है :–

"मेरा ननिहाल बिहार में था। वहाँ नानी थी। मेरी माँ के सिवाय नानी का कोई न था। ज़मीन–जायदाद खूब थी । उन्होंने सारी संपत्ति मेरे नाम कर दी। वो वहाँ अकेली रहती थीं। अकेले रहना उन्हें बड़ा खलता था। मेरे जाने पर बड़ा चाव करतीं। उनके कई रिश्तेदारों को नानी के न रहने पर हमने बहुत कम पैसों पर वह ज़मीन–जायदाद दे दी। इस नाते बिहार की आंशिक नागरिकता मुझे मिल गई थी। हमारी नानी बहुत बढ़िया थीं जैसे कि नानियाँ होती हैं। मैं ननिहाल जाता तो पूंछती, "तुम रामउदार को जानते हो?" मैने सोचा कोई साधू सन्त होंगे। बाद में जब मैं कॉलेज गया तो मालूम पड़ा उस मठ में रामउदार दास नामक जो साधु रहते थे, वही हिन्दी जगत् में राहुल सांकृत्यायन नाम से जाने जाते हैं।" [21]

इन सबके अतिरिक्त केदारनाथ सिंह की एक बहन भी

है, श्रीमती रमादेवी । केदारनाथ सिंह के पिता जी उनके बाबा के अकेले वारिश थे और केदारनाथ सिंह अपने पिताजी के अकेले वारिश है, केदारनाथ सिंह को कोई चचेरा भाई भी नहीं है । और अब उनको पुत्र भी एक ही है। जो दिल्ली में सेवारत है। आज केदारनाथ सिंह अपनी माँ पुत्र एवं पुत्रवधु के साथ दिल्ली के साकेत इलाके में एक सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

1.2 प्रारंभिक शिक्षा :-

केदारनाथ सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में शुरू हुई। उन दिनों आज कल की तरह आधुनिक साधन उपलब्ध नहीं थे। जंगल में खुले आसमान के नीचे पेड़ों की छाया में गुरूजन अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे, इस प्रकार की व्यवस्था आज भी गाँवों में है । उस समय कई मील पैदल चलकर स्कूल जाना पड़ता था और वह भी नंगे पाँव । लेकिन आज इस दिशा में काफी सुधार हुआ है, स्कूलों की संख्या बढ़ गई है, जिसमें आने-जाने की समस्या नहीं रही है । केदारनाथ सिंह की प्राथमिक क्षिक्षा के बारे में उनके दो संस्मरण इस प्रकार है :-

"प्राथमिक क्षिक्षा तक मैं गाँव में था । उसके बाद बनारस के उदय प्रताप कॉलेज में आ गया, जहाँ एक अच्छी खासी साहित्यिक परम्परा मौजूद थी, कॉलेज में कविता प्रतियोगिताएं होती थी और समय-समय पर साहित्यकारों के व्याख्यान आदि।"[22]

उनका दूसरा संस्मरण इस प्रकार है :-

"जब पहली बार स्कूल में दाखिल हुए तो घर से दो मील पैदल चलकर स्कूल जाना होता था । पैरों में जूते पहनने का कोई रिवाज न था। धरती का स्पर्श सुख देता। कहीं हरी घास, कहीं

मिट्टी, कहीं रोड़ा, कहीं कॉटा सब थे । हम खेलते-कूदते-फॉदते चले जाते। खेल में लड़कियाँ अलग से खेलती थी और हम अलग। हमारा खाना स्कूल में हमारा नौकर लेकर आता था।"[23]

केदारनाथ सिंह के स्कूल के दिनों ने उनके मन पर अमिट स्मृतियाँ छोड़ी हैं, जिन्हें वे आज तक भी भुला नहीं पाये हैं। शायद वे स्कूल जाने बाद ही उन्होंने दुनियाँ से नाता जोड़ा, ऐसा उनकी निम्न पंक्तियों से प्रकट होता है:-

"हिमालय किधर है?
मैंने उस बच्चे से पूछा जो स्कूल के बाहर
पतंग उड़ा रहा था
उधर-उधर- उसने कहा
जिधर उसकी पतंग भागी जा रही थी
मैं स्वीकार करूँ
मैंने पहली बार जाना
हिमालय किधर है।"[24]

<u>विवाह:</u> केदारनाथ सिंह अपने माता-पिता की अकेली संतान है, इसीलिए सभी को उनकी विशेष चिन्ता रहती, और दादी से लेकर नानी तक सभी उन्हें बेहद चाहते थे। इसी कारणवश उनकी शादी भी बाल-अवस्था में ही करा दी गयी थी। शादी के समय केदारनाथ सिंह की उम्र केवल पंद्रह वर्ष थी। वे उस समय हाई स्कूल के छात्र थे। सभी परिवार जनों के चहेते होने के कारण वे इसका विरोध भी न कर सके। एक साक्षात्कार के दौरान प्रश्नकर्ता ने उनके प्रारम्भिक व्यक्तिगत जीवन के प्रेम प्रसंगों का जिक्र करते हुए प्रश्न पूंछा तो उन्होंने ने कहा :-

"अब बनारस में मुहब्बत का चांस बहुत कम था । वैसे ये वक्त ठीक मुहब्बत करने जैसा था पर मुहब्बत करने से पहले ही शादी हो चुकी थी । शादी तो हमारी हाईस्कूल में ही हो गई थी । सन् उनचास में । अकेला था, माँ–बाप ने कहा, शादी होनी चाहिए । उन्हें प्रसन्न करने के लिए शादी की – दूसरा चारा भी नहीं था । असल में मैं विरोध न कर सका । मैं अक्सर बाहर रहता, वो घर पर रहती । साथ रहने से ही प्रेम विकसित होता है । जिस कॉलेज में पढ़ता था वो सिर्फ लड़कों का कॉलेज था । कुछ दादा किस्म के लड़के कोठों पर जाते फिर नमक–मिर्च लगाकर वहाँ के किस्से बताते पर मुझे न तो उन लड़कों में दिलचस्पी थी और न उन कोठों में । मेरा काबा और शिवाला सब कविता थी । और फिर कविता का किस्सा तो ये है :

"सारी दुनियाँ से दूर हो जाए
जो ज़रा तेरे पास हो बैठे ।" [25]

उपर्युक्त प्रसंग से यह विदित होता है कि कविता की धुन केदारनाथ सिंह में शुरू से ही विद्यमान थी जिसका परिणाम है कि आज हिन्दी समकालीन कविता में उनकी एक खास पहचान बनी है ।

1.3 दाम्पत्य जीवन :-

शादी के करीब दस–बाहर वर्षों के बाद ही केदारनाथ सिंह ने सही अर्थों में दाम्पत्य जीवन आरम्भ किया । हाई स्कूल से एम.ए. तक और फिर शोध कार्य करने के लिए केदारनाथ सिंह को अकेले हॉस्टल की जिन्दगी जीनी पड़ी । शोध कार्य के दो वर्षों बाद तक भी उनके स्थाई पद न मिलने के कारण अकेले जीवन व्यतीत

करना पड़ा। इस पूरे समय में उनकी पत्नी उनके माता-पिता व बच्चों के साथ उनके गाँव चकिया में रहती रहीं। ये दिन केदारनाथ सिंह के संघर्षों के दिन थे, पैसों की तंगी हमेशा उन्होंने सही, क्योंकि नियमित रुप से नौकरी न थी। उन्हीं दिनों को याद करते हुए केदारनाथ सिंह ने एक साक्षात्कार के दौरान स्वीकारा है :-

"हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. करने के बाद मैंने पी.एच.डी. पर काम करना शुरु कर दिया। मैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ काम कर के पी.एच.डी. पाना चाहता था, पर उन्हीं दिनों हिन्दु विश्वविद्यालय में छात्रों की हड़ताल शुरु हो गई। इसमें अध्यापकों का एक समुदाय भी शामिल था। इसी दौरान बड़े अन्यायपूर्ण ढंग से द्विवेदी जी जैसे व्यक्ति को हिन्दू विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया। इससे पन्द्रह दिन पहले मैं और द्विवेदी जी रिक्शा में कहीं जा रहे थे तो उन्होंने कहा था, मैं सोचता हूँ कि अब तुम्हें कहीं लग जाना चाहिए। मेरे विभाग में स्थान खाली हुआ है, अस्थायी है पर स्थायी हो जायेगा। ये स्थान मेरे अधिकार में है। यहाँ दफ्तर में आवेदन पत्र दे आओ। मैंने जिस क्लर्क को आवेदन पत्र दिया वो काना था। हम काने को अपशकुन मानते है- यह जड़ संस्कार मेरे भीतर भी था। मैंने उदास होकर द्विवेदी जी से कहा तो उन्होंने जोर का ठहाका लगाया और कहा, अरे तुम परेशान क्यों होते हो? वो तो मुझे ही करना है। गर्मियों की छुट्टियों के बाद तुम आ जाना, काम हुआ ही समझो। जब मैंने गाँव में अखबार द्वारा द्विवेदी जी को निष्कासित करने की खबर पढ़ी तो मन में जो प्रतिक्रिया हुई यह कि मैं तो नियुक्त हो न सका, काना मेरे गुरु को भी खा गया।" [26]

केदारनाथ सिंह अपने जीवन को इस अस्थिरता से तब

तक जूझते रहे जब तक कि उनको पड़रौना में स्थाई पद प्राप्त हुआ। इस समय केदारनाथ सिंह के पास अपना पूरा परिवार था, जिसमें उनकी पांच बेटियाँ व एक बेटा भी था। केदारनाथ सिंह जी अपनी बेटियों से अत्याधिक स्नेह करते हैं। उनका यह स्नेह उनकी एक कविता "अपनी छोटी बच्ची" के लिए एक नाम में भी प्रस्फुटित हुआ है :-

"ओस भरे
कँपते गुलाब की टहनी पर
तितली के पंखो-सी सटी हुई
धूप।
एक नाम है छोटा-सा
मेरे बेस्वाद खुले होंटों पर
तेरे लिए।
और भी होंगे
पर जाने क्यों मेरा मन
तुझे देखकर सम्मुख
कन्धों तक उठे हुए पौधों के बीच में
सहसा पुकार उठा
एक इसी नाम से।" [27]

पड़रौना में रहते हुए ही केदारनाथ सिंह ने अपनी बड़ी बेटी की शादी कर दी थी। केदारनाथ सिंह के पारिवारिक जीवन में सबसे बड़ा धक्का पत्नी की मृत्यु से लगा। सन् 1972 में केदारनाथ सिंह जे.एन.यू में आ गये उन्ही दिनों उनकी पत्नी कैंसर से पीड़ित हो गई वे करीब चार वर्षों तक कैंसर से पीड़ित रही और अन्त में परलोकवासी हो गई। इस चार वर्षों के दौरान केदारनाथ सिंह जी

ने पत्नी की पीड़ा को अपने तक ही सीमित रखा और उस गम को अकेले ही सहा। फिर भी यत्र-तत्र उनकी कविताओं में इस गम की झलक देखने को मिलती है। "कमरे का दानव" नामक कविता में उन्होंने अपने अकेलेपन को स्वीकारा है। वे लिखते है :-

"डरता नहीं हूँ
मगर उसे जब देखता हूँ
देखा नहीं जाता है।
आज भी खड़ा है वह
मेरे दरवाजे पर मेरी प्रतीक्षा में
बड़े-बड़े डैनों वाला कमरे का दानव
फूल कब खिलते हैं?
त्यौहार कब आता है?
अकस्मात् मौसम किस रोज़ बदल जाता है?
उसे सब ज्ञात है।
इसीलिए कभी कुछ पूछता नहीं है
जब बाहर से आता हूँ
चुपके से क्षत-विक्षत डैने उठाकर
मुझे जगह दे देता है।
मानो कहता हो:
अब बहुत थक गये हो तुम
योद्धा, विश्राम करो।" [28]

केदारनाथ सिंह के परिवार में पाँच बेटियाँ और बेटा है। उनकी सबसे बड़ी बेटी है हेम। हेम की शादी शारदा सिंह के साथ की तथा दूसरी बेटी निर्मला की शादी नामवर जी के पुत्र के साथ की। ये दोनों शादियाँ केदारनाथ सिंह जी ने पड़रौना में रहते ही

कर दी थी। तीसरे नम्बर पर है उषा। उषा की शादी श्री अनिल कुमार सिंह के साथ की जो भोपाल में भारत भवन में कार्यरत है। चौथी बेटी है संध्या इनकी शादी बच्चन सिंह जी के पुत्र के साथ की तथा पांचवी बेटी है रोली। रोली की शादी अपने एक हिन्दी के प्राध्यापक के साथ की, जो आजकल जम्बू में हिन्दी अधिकारी हैं। आपका इकलौता बेटा है, सुनील। सुनिल की भी शादी हो चुकी है। सुनिल भारतीय प्रशासनिक सेवा में दिल्ली में ही कार्यरत है।

केदारनाथसिंह आज अपनी सभी बच्चों की जिम्मेदारियों को पूरा कर चुके है। वे जीवन के इस आखिरी पड़ाव में एक बार फिर अकेले हो गये हैं, और अपनी बूढ़ी माँ के साथ दिल्ली में रह रहे हैं। केदारनाथ सिंह जी ने जीवन में कभी हार नहीं मानी। वे पूर्ण दृढता से जीवन की शर्तों व संदेशों की ओर इशारा करते हुए कहते हैं :-

"जीना होगा /और यहीं /यहीं
इसी शहर में जीना होगा
इंच-इंच जीना होगा
और जैसे भी हो
यहाँ से वहाँ तक
समूचा जीना होगा।" [29]

आजकल केदारनाथ सिंह के साथ उनका भरा-पूरा परिवार तो नहीं है, परन्तु एक नया सदस्य उनके परिवार में जुड़ गया है गिलहरी। केदारनाथ सिंह रोज सुबह नाश्ते के समय पहले गिलहरी को खिलाते हैं, और उसके बाद ही उनकी मुख्य दिनचर्या आरम्भ होती है।

संदर्भ ग्रंथ

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	संपादक /रचियता	पृ. संख्या
1.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर राजा खुगशाल	पृ. 222
2.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 23
3.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर राजा खुगशाल	पृ. 34
4.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 20
5.	वही	वही	पृ. 20
6.	वही	वही	पृ. 20-22
7.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ. 98
8.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 99
9.	वही	वही	पृ. 99
10.	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह	पृ. 200
11.	गोवा विश्वविद्यालय में ७मार्च ९९ को दिये गये प्रो.काशिनाथ सिंह के आख्यान से।		
12.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 20
13.	वही	वही	पृ. 20
14.	वही	वही	पृ. 24
15.	अकाल में सारस	डा.केदारनाथ सिंह	पृ. 19
16.	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह	पृ. 187-188
17.	प्रतिनिधि कविताएं	केदारनाथ सिंह	पृ. 99
18.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 20-25
19.	प्रतिनिधि कविताए	केदारनाथ सिंह	पृ. 100

20.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 25
21.	वही	वही	पृ. 21
22.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर रजा खुगशाल	पृ. 44
23.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 22
24.	प्रतिनिधि कविताएं	केदारनाथ सिंह	पृ. 118
25.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ.28-29
26.	वही	वही	पृ. 27-28
27.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 56
28.	प्रतिनिधि कविताएं	वही	पृ. 97-98
29.	प्रतिनिधि कविताएं	वही	पृ. 143-144

*****

द्वितीय अध्याय

केदारनाथ सिंह : व्यक्तित्व विश्लेषण

द्वितीय अध्याय

केदारनाथ सिंह : व्यक्तित्व विश्लेषण

2.1 प्रारंभिक जीवन परिवेश :

केदारनाथ सिंह का प्रारंभिक परिवेशगत जीवन मूलत: ठेठ गाँव में बीता, जहाँ पर कि गाँव की समस्त ग्रामीण गतिविधियाँ अपने स्वाभाविक रूप में चलती रहती हैं। ऋतुओं के अनुसार खेती, गृहस्थी में होने वाले परिवर्तन, खेत–खलिहान, नदी–नाले और तीज त्यौहार आदि परिवर्तन । इन सब गतिविधियों का प्रभाव केदारनाथ सिंह के जीवन पर स्वाभिक रूप से पड़ा। जिसे इनकी रचनाओं एवं वक्तव्यों के माध्यम से भली–भाँति जाना जा सकता है। इस संबंध में उनका खुद का कथन इस प्रकार है :–

"मेरा आरम्भिक जीवन ठेठ गाँव में बीता। मेरा परिवार कृषि व्यवसाय से जुड़ा था, इसलिए घर में जो माहौल था, वह बिलकुल वैसा ही था जैसा कि एक किसान परिवार में होता है।" [1]

केदारनाथ सिंह का गाँव मूलत: आम गाँवों की तरह ही था जहाँ जीने के न्यूनतम साधन ही उपलब्ध थे, अगर वहाँ पर कुछ अलग था तो वह था वहाँ की अनुपम प्राकृतिक छटा, जो कि विशेषतया वर्षा ऋतु के दिनों में बहुत ही मोहक एवं सुन्दर लगती है। इस सुन्दरतम् प्रकृति ने केदार जी के मन को भी लुभाया। इसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं :–

"गाँव से तीन किमी. दूर दक्षिण में गंगा और तीन किमी. दूर उत्तर में सरयू बहती है। बीच में दोनों को जोड़ने वाला है भागड़ नाला। बस इसी भागड़ नाले के किनारे पर ही अपना घर है। उन

दिनों नदी में बाढ़ भी आती तो सुन्दर लगती। हमारा गाँव ऊँचाई पर है । बाढ़ आने पर टापू सा घिर जाता है। सुरक्षा के लिए साँप, घड़ियाल बैठक तक चले आते हैं। तब वो शत्रु नहीं होते, मेहमान होते हैं, आश्रित होते है।" [2]

केदारनाथ सिंह जी के बचपन के जीवन पर गाँव में सामान्य रूप से प्रचलित खेल-कूदों और विभिन्न ऋतुओं के परिवर्तित रुप का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है। वर्षा ऋतु एवं बाल क्रीड़ाओं के संबंध में केदारनाथ सिंह जी ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि -

"गाँव में परिस्थिति के साथ जीने की शिक्षा मिलती है। तैरना, पैदल चलना, पेड़ पर चढ़ना ये सब गाँव के उपहार हैं। बाढ़ की पहली स्मृति, नदी का विराट रुप है। मैं भयभीत हुआ था। उसकी गगनभेदी आवाज, अचानक गड़गड़ घड़ाम की आवाजें, दूर से आती नावें अपनी पालों के पंख फैलाए उड़ने को तैयार, चीलों की तरह, शाम को कहीं डूब जाता सूरज बार-बार मुस्कुरा कर कुछ कहता-सा, उगते पौधे, हाथों से मुँह छुपाए सहमें हुए अंकुर, बढ़ती बेले, खिलते फूल-सभी का प्रभाव मन पर पड़ता था।" [3]

घर परिवार एवं गाँव के जीवन से केदारनाथ सिंह कुछ इस कदर जुड़ गए थे कि खेती व गृहस्थी के अलावा, पशु-पक्षियों से भी उन्हें प्रेम हो गया था। परिवेशगत जीवन का प्रभाव उनके बालमन पर इस तरह से अंकित हुआ कि कालान्तर में वही जीवन के विविध रुपों में उनकी कविता का विषय बना, जिन्हें कि 'जमीन', 'आवाज', 'बैल', 'आत्मचित्र', एवं 'माँझी का पुल' आदि बहुत सी कविताओं के माध्यम से प्रकट हुआ है। घर-परिवार से

संबंधित निम्नलिखित कथन के माध्यम से उनकी मानवीय संवेदना को परखा जा सकता है । जिसका उल्लेख वे स्वयं करते है:–

"हमारे घर में गायें थीं । एक गाय मेरी अपनी भी थी । वो दुर्भाग्य से कहीं जहरीली घास खा आई और उसे बचाया न जा सका । मेरे किशोर मन पर ये मृत्यु का पहला साक्षात्कार था । मैं बड़ा दुखी हुआ । उसका एक सुन्दर बछड़ा था । मैं उसके गले लगकर बहुत रोया ।"[4]

उक्त कथन में गृहस्थ जीवन में पशु एवं मानव संबंधों का बड़ा आत्मीय चित्रण है । यहाँ पर पशु भी परिवार के सदस्य के रूप में रहते हैं । केदारनाथ सिंह का बालमन जो उस समय गाय की मृत्यु पर बछड़े के गले लग कर रोया, आज भीं उतना ही दयालु, भावुक एवं सहनशील है । उनका गाँव, उनका घर आज भी उनकी कविताओं में जीवित है, जिसे उन्होंने अपनी रचनाओं में मुख्य स्थान दिया है । एक उदाहरण दृष्टव्य है :

"हँसी की एक झालर
टँगी हुई तारों पर
हवा के धक्के से
जिधर झुक जाती है
उधर
मेरा घर है
छोटा–सा घर है
और छोटे–से घर में
असंख्य दिशाएं है
हर दिशा

तेजी से

दूसरी दिशाओं को

जहाँ पर छूती हैं

वहाँ

मैं जीवित हूँ।" [5]

घर एवं गाँव की पुरानी स्मृतियों को याद करते-करते उनकों डाकिए की याद आ जाती है। डाकिया जो कि हफ्ते में मात्र एक दिन 'बुधवार को' गाँव में आता है, और जब वह आता है तो मुर्दनी छाए हुए चेहरों पर खुशी की लहर दौड़ जाती है। कवि कहता है:-

"तब डाक-घर नहीं था गाँव में

दूर किसी शहर से

आता था डाकिया थैला लटकाए हुए

हर बुधवार को

और जब आता था

तो सिर्फ़ यह सोचकर

कि ओं----आज बुधवार है

एक दिव्य सिहरन से

भर जाते थे बूढ़े।" [6]

यह आजादी के पूर्व का समय था। उस समय गाँवों में शिक्षा का प्रचार -प्रसार बहुत कम था। बड़ी मुश्किल से विरले लोग ही स्कूल जाते थे, क्योंकि आज की तरह आवागमन की सुविधाएं नहीं थीं। निम्न-मध्यवर्गीय किसान बड़ी कठिनाई से दो वक्त की रोटी जुटा पाते थे। ऐसी परिस्थिति में जीवन की सुख-सुविधाएं मुहैया कराना बड़ा कठिन था। केदारनाथ सिंह की भी

आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। प्रकृति की गोद में पेड़ के नीचे शिक्षा दी जाती थी और गाँव के स्कूल अक्सर बगीचों और जंगलों में होते थे जहाँ पर पहुँचने के लिए खेत की मेड़ों से होकर गुजरना पड़ता था। केदारनाथ सिंह जी की प्रारंभिक क्षिक्षा भी ऐसे ही माहौल में हुई। इसका वर्णन करते हुए केदारनाथ सिंह स्वयं कहते है :-

"हम खेलते फाँदते चले जाते। खेल में लड़कियाँ अलगं से खेलती थीं और हम अलग।" [7]

साधारण खेलकूद एवं स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण के साथ-साथ गाँव के इस स्वतः स्फूर्त कार्य-कलापों के बीच केदारनाथ सिंह ने कुछ ऐसा भी पाया जो कालान्तर में उनकी रचना-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग बना। उन्होंने बाजार से अगर नक्शा खरीदा तो उसमें अपने घर को ही खोजा:-

"मैं बाजार गया
मैंने बाजार में खरीदा एक नक्शा
नक्शे में बहुत कुछ था
जिसे मैं जानता नहीं था
मैं जानता नहीं था
इसलिए नक्शे को ले आया घर
टाँग दिया दीवार पर
अब दीवार भरी-पूरी लग रही थी
जैसे नक्शा पृथ्वी को ले आया हो
मेरे घर में
मैं खुश था नक्शे में
क्योंकि वहाँ इतनी जगह थी

इतनी सारी जगह

कि मैं उसमें सदियों तक रह सकता था

अपने पूरे कुनबे के साथ ।"[8]

गाँव के इस वारावरण को छोड़कर केदारनाथ सिंह को दिल्ली शहर में आना पड़ा । नगरीय जीवन जीते हुए भी मानसिक रूप से केदारनाथ सिंह जी गाँव से अलग नहीं हो पाये । गाँव के जीवन को जीने की चाह निरन्तर उनके मन में आज भी बनी हुई है । यही कारण है कि आज भी वे वर्ष में एक बार, मन में बसी गाँव की स्मृतियों को ताजा करने के लिए वहाँ जाते हैं । जिसका जिक्र उन्होंने स्वयं किया है:-

"मेरे मित्रों को हैरानी होती है कि मैं अब भी बार-बार गाँव जाता हूँ, और जब भी जाता हूँ तो पन्द्रह-बीस दिन कम से कम अपने ठेठ गाँव के परिवेश में व्यतीत करता हूँ। दिल्ली के बहुत-से लेखक मित्रों ने इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि कोई पन्द्रह-बीस दिन गाँव में कैसे रह सकता है? पर, सच कहूँ तो मुझे यह प्रश्न ही हैरान करता है । मैं ठेठ गाँव में पैदा हुआ और अपने आरंभिक जीवन का काफी हिस्सा मैंने गाँव में ही बिताया है और मेरे भीतर जो एक स्मृति-लोक है, वह बहुत कुछ गाँव के दृश्यों, लोगों और घटनाओं से मिलकर बना है । इसलिए गाँव में जाना मेरे लिए अपनी जानी-पहचानी दुनिया में लौटने की तरह है । इसे एक तरह की घर वापसी कह सकते हैं ।"[9]

गाँव की वे स्मृतियाँ जिन्हें कि वे भुला नहीं पाये उनकी अनेकों रचनाओं में मिलती है । उदाहरण के रुप में 'टमाटर बेचती हुई बुढ़िया' कविता में कवि टमाटर बेचने वाली बुढ़िया की मनोदशा को अत्यन्त समीप से पहचान कर उसका वह सजीव

चित्रण करता है :-

"गहरे सुर्ख टमाटर
उनकी टोकरी में भरे है
धूप टमाटरों को
चाकू की तरह चीर रही है
टमाटरों के अन्दर बहुत-सी नदियाँ है
और अनेक शहर जिन्हें बुढ़िया के अलावा
कोई नहीं जानता ।" [10]

'जमीन', 'बिना नाम की नदी', 'बैल', एवं 'टूटा हुआ ट्रक' आदि अन्य रचनाओं में भी उनके ग्रामीण परिवेश संबंधी सोच एवं समझ को अच्छी तरह से जाना जा सकता है। गाँव के इस परिभाषा बदलते परिवेश में भी वे अडिग है । शायद वे गाँव के साथ अपने आप को बदलना ही नहीं चाहते। 'टूटा हुआ ट्रक' वहीं जैसा का तैसा खड़ा है, वह टूटा भी है और हैरान भी है :-

"मैं पिछली बरसात से उसे देख रहा हूँ
वह वहाँ उसी तरह खड़ा है
टूटा हुआ और हैरान
और अब उससे अँखुए फूट रहे हैं।" [11]

कवि ग्रामीण व्यवस्था में बदलाव तो लाना चाहता है लेकिन परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की हैं कि परिवर्तन सम्भव नहीं हो पा रहा है।

2.2 लोक साहित्यिक का प्रभाव

केदारनाथ सिंह को बचपन में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के अभाव के कारण गाँव में कोई ठोस साहित्यिक वातावरण नहीं

मिला। परिवार में उनकी दादी माँ गाँव के किस्से-कहानियाँ सुनाती और लोक जीवन के गीत भी गुनगुनाया करती थीं। इसके अतिरिक्त गाँव में विभिन्न मांगलिक एवं धार्मिक अवसरों पर लोक गीत गाए जाते थे, जिनका प्रभाव बचपन में ही उनके मन:मस्तिष्क पर पड़ता गया और कालान्तर में उनकी कविता का प्रेरणा स्रोत बना। इस संबंध में उनके दो वक्तव्य इस प्रकार है :-

"साहित्यिक माहौल गाँव में कोई नहीं था, पर लोक-जीवन की जो अपनी स्वत: स्फूर्त रचना शीलता होती है, वह मेरे गाँव में थी। और यदि मैं कहूँ कि वहीं से मैंने पहले-पहल अपनी काव्य-दीक्षा आरम्भ की थी, तो यह अनुचित न होगा, विशेष रुप से 'कतकी नहान' के समय अल सुबह गंगातट की ओर जाने वाली स्त्रियां जो गीत गाती थीं, उनकी अनुगूंज अब तक मेरे मन में है।"[12]

दूसरा वक्तव्य इस प्रकार है :

"जाड़े की रातों में करीब चार बजे भोर में गंगा स्नान के लिए जाती स्त्रियों के गीतों के शब्दों की ध्वनियाँ मेरे अन्दर अद्‌भुत प्रभाव पैदा करती थीं। मैं महसूस करता हूँ कि मेरी काव्य यात्रा की जड़ें इसी दुनिया में कहीं है।" [13]

उपर्युक्त उदाहरणों में कवि केदारनाथ सिंह ने जिस लोक-जीवन में लोक गीतों की बात की है, वह वहाँ के समाज में कहीं-कहीं तो वंशानुक्रम के द्वारा प्राप्त होता है और कहीं-कहीं लोग एक दूसरे से सीख कर ही गाते हैं। इन गीतों की एक तरह से मौखिक परम्परा ही होती है जिन्हें पुस्तकों में ढूँढना बड़ा मुश्किल है, बाद में गाँव के कतिपय लोग इस परम्परा को जीवित रखने के लिए गाने के साथ-साथ लिखने भी लगे हैं। पहले ऐसा नहीं था। गाँव के कुछ बिरले लोग ही होते थे जो कि लिखते और गाते भी थे।

उन दिनों लोक-साहित्य विशेषकर मेलों और बाजारों में सड़क की फुटपाथों पर मिलता था। लोकगीत गाने वालों का स्वर बहुत मीठा होता था चूँकि उसमें एक कहानी होती थी, इसलिए लोग उसे बड़े चाव से सुनते थे। ये कहानियाँ प्रेम और वीरता से सम्बन्धित होती थीं। गाँव के इस परिवेश के बारे में उनके दो कथन इस प्रकार है :-

"उस समाज में कविता होती है, लेकिन उस प्रचलित रूप में वह नहीं होती है, जिसमें हम उसे शहरों में पाते हैं। साहित्य वहाँ बहुत कुछ मौखिक परंपरा का हिस्सा होता है और उसकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं।"[14]

इस संदर्भ में उनका दूसरा कथन है :-

"हमारे गांव में गोंड़ जाति के कुछ लोग रहते थे। वो सेवा कार्य करते थे। अपनी ज़मीन न होती तो दूसरों की ज़मीन पर काम करते। उनमें एक व्यक्ति याद है। मुझे काव्य चेतना की ओर मोड़ने वाला पहला व्यक्ति वही था। उसका नाम था मंगल गोंड़। काला कलूटा था। कलकत्ता में किसी फैक्ट्री में काम करता था। छुट्टी पर गाँव आता था। उन दिनों सड़क पर लोक साहित्य बिकता था। 'सोरठा बृज भार' नाम की पुस्तक मंगल गाकर पढ़ता। शाम को उसे लोग घेर कर बैठ जाते। वो एक मार्मिक प्रेम कहानी गाया करता। उसे सुनकर सब भाव विह्वल हो जाते। इस महफ़िल में मैं भी जाता था। एक दिन हिम्मत करके मैं मंगल के पास वो पोथी माँगने गया। मैंने सोचा, मैं जोड़-जोड़कर पढ़ लूँगा। उसने पोथी दे दी और मै पढ़ने लगा। गीत की लयात्मकता मन पर अंकित हो गई। लोक साहित्य से ये मेरा पहला लिखित जुड़ाव था। शब्दों से पैदा होने वाला संगीत आकर्षित करता था। मतलब से मतलब ही न था। धुन रेंगती हुई मन में उतर जाती थी। एक अजब संस्कार

बन गया था।" [15]

गाँव के लोक–गीत एवं संगीत से प्रभावित होकर बचपन में ही केदारनाथ सिंह वाराणसी आ गए और वहीं के स्थानीय उदयप्रताप कॉलेज में चौथी कक्षा में दाखिला लिया। वहाँ पर उनको एक भरपूर साहित्यिक वातावरण मिला, जिसमें कि आज के अनेक मूर्धन्य रचनाकार और नेता शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, जिसका उल्लेख इन्होंने स्वयं किया है :–

"उन दिनों बनारस में पढ़ने जाना एक परंपरा थी। प्राईमरी के बाद मैने भी गाँव छोड़ा। उस वक्त उदयप्रताप कॉलेज एक मशहूर कॉलेज था जिसमें स्कूल भी था। वहीं मैं भी गया। गाँव के और चार–पांच लड़के भी थे। वहाँ मेरा चौथी क्लास में दाखिला हुआ। गाँव का कोई भी व्यक्ति गार्जियन होता था। स्कूल की परंपरा अच्छी थी। अच्छे अध्यापक थे, अच्छा वातावरण था। इस समय नामवर जी इन्टरमीडिएट में थे। विश्वनाथ प्रताप सिंह भी वहीं थे। वे नामवर सिंह जी से जूनियर थे। वहाँ पर बड़ा अच्छा माहौल था। अभी तक कविता से मेरी पहचान न हुई थी। वैसे भी चौथे दर्जे में कविता क्या समझ में आती पर कविता का आकर्षण बहुत था। वहाँ हर बार नवंबर में कवि सम्मेलन होता था जिसमें 'बच्चन', 'दिनकर', 'सुमन' जैसे दिग्गज कविता पढ़ने आते थे। जब मंच से पहली बार कविता सस्वर सुनी तो जैसे चमत्कार हो गया। ये क्या है जो इतना मोहक है, रूह तक धंसता चला जाता है। उस समय की स्मृतियाँ आज भी उसी लोक में पहुँचा देतीं है। क्या दिन थे। नवंबर की ठंडी चांदनी रात में एक बार हम कवि सम्मेलन सुनकर लौट रहे थे। कविता का जादू दिमाग़ को मथ रहा था। चांदनी रात मस्ती में अपना सौरभ लुटा रही थी। शायद उस लम्हे

में पहली बार कविता ने मुझे भी लापरवाही से देखा होगा। कुछ हुआ था जो अद्भुत था, नया था, अनोखा था। वो लम्हा बयान से बाहर है।" [16]

उदयप्रताप कालेज में साहित्यिक गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों एवं व्याख्यानों आदि का आयोजन होता रहता था, जिसमें अनेक मेधावी छात्र भाग लेते थे। इसके अतिरिक्त कभी-कभी 'हरिवंशराय बच्चन', 'रामधारीसिंह दिनकर', और 'शिवमंगल सुमन' आदि जैसे श्रेष्ठ कवियों का कविता पाठ भी होता था। इस सम्बन्ध में बताते हुए केदार जी कहते हैं :-

"नामवार जी उस वक्त कविता न सिर्फ लिखते थे बल्कि गाकर पढ़ते भी थे। कवि नामवर उस समय काफी प्रसिद्ध थे। कविता की ये नई दुनिया मुझे मोंह रही थी। प्राकृतिक चित्रण एक नये संसार की तरह लगता जो बेहद आकर्षित करता था। मुझे वो संसार दूर से दिखाई देता था पर अभी सधा न था। हमारे स्कूल में भी कविता प्रतियोगिता होती थी। मैंने एक बार कविता लिखने की कोशिश की और मंच पर उछाल दी। तरन्नुम में डूबकर पढ़ी तो कुछ लोगों ने कहा- बात बनती सी नजर आ रही है।" [17]

उपर्युक्त साहित्यिक गतिविधियों से प्रभावित हो, केदार जी ने कविता के पथ पर बढ़ना आरम्भ किया। भोजपुरी का प्रभाव होने के कारण इन्हें खड़ी बोली का अच्छा ज्ञान नहीं था जिसके कारण कभी-कभी कविता लिखने और पढ़ने में परेशानी होती थी। इसी बीच केदारनाथ सिंह की मुलाकात कविवर त्रिलोचन से हुई, वे अपने पुत्र से कभी-कभी मिलने आते थे जो कि इसी कॉलेज में पढ़ता था। वहीं पर केदारनाथ सिंह भी उनसे मिलते और कुछ नया सीखते। त्रिलोचन जी के इस सानिध्य से केदारनाथ सिंह को

बहुत कुछ नया मिला । इसी कारणवश केदारनाथ सिंह त्रिलोचन जी को अपना काव्य गुरु भी मानते है । एवं स्वयं स्वीकरते है :-

"इन्ही दिनों एक अच्छी घटना हुई। त्रिलोचन जी से परिचय हुआ । त्रिलोचन जी का बड़ा बेटा मुझसे दो बरस जूनियर था । किसी ने बताया, मैं भी कविता लिखता हूँ। त्रिलोचन जी से परिचय होना सौभाग्य की बात थी । कविता का संस्कार मुझे उनसे ही मिला । मैं उस वक्त सातवीं में पढ़ता था । मैने त्रिलोचन जी को कविता सुनाई तो उन्होंने सलाह देकर कहा, "पहले भाषा को पकड़ो ।" मैं गाँव से आया था । भोजपुरी से खड़ी बोली तक की यात्रा मेरे किशोर मन के लिए एक रचना के समान थी । त्रिलोचन जी ने कहा, "उच्चारण पर ठेठ ध्यान रखो । भाषा बोलने से आती है, किताब से नहीं आती ।" उनसे पता नहीं कितना कुछ सीखा । त्रिलोचन जी कितनी ही भाषाएँ जानते हैं। उनका साहचर्य बहुत कुछ सिखाता था। किशोर मन को साहित्यिक दृष्टि से ऐसा संस्कार देने वाला मिलना बड़े भाग्य से होता है ।" [18]

उदयप्रताप कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् केदारनाथ सिंह ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में आगे की पढ़ाई आरम्भ की । यहाँ आपको साहित्य का और भी अच्छा वातावरण प्राप्त हुआ, क्योंकि इनके गुरुओं में प्रख्यात रचनाकार पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी भी थे, जिनका प्रभाव इनके ऊपर विशेष रुप से पड़ा । जिसको वे स्वयं स्वीकारते है :-

"आरम्भिक संस्थान छोड़ने के बाद मैं बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय में गया । उन दिनों पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी वहाँ हिन्दी के विभागाध्यक्ष थे । वे हमें पढ़ाते थे और उसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे उनका शिष्यत्व मिला । एक घटना

याद आती है। एक छोटी सी काव्य-गोष्ठी थी। वहीं मैंने पहली बार मैथिलीशरण गुप्त जी को देखा। उनके सामने कविता पढ़ते हुए मन में संकोच था, पर उन्होंने ही कविता पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। अपनी पीठ पर उनका स्पर्श अब तक याद है। द्विवेदी जी नई कविता के प्रति वैसी सहानुभूति न रखते थे। मज़ाक में कहते, "नई कविता सूंघने की चीज है।" वे खुले मन के व्यक्ति थे। इन्हीं दिनों नामवर जी अध्यापक होकर वहाँ आ गये थे। उन्होंने मुझे एक बरस पढ़ाया भी था। उस वक्त वे एक उभरते युवा आलोचक थे जो अभी कविता लिखना न भूले थे। आलोचना और कविता एक साथ चल रही थी। उनकी ख्याति एक अद्भुत अध्यापक के रूप में फैल रही थी। नामवर जी से मेरा परिचय बहुत पहले से था। एक कवि के रुप में यहाँ रोज़ शाम को होने वाले जमावड़े में सब मिलते ही थे। हम साथ-साथ टहलते तो कला की, साहित्य की बातें तो होती ही थीं। नामवर जी भयानक पढ़ाकू हैं। वे रोज़ ही कुछ नया पढ़कर आते और शाम को उस पर चर्चा होती। बनारस की वैसे तो सुबह प्रसिद्ध है पर यहाँ हमारी शामें एक अद्भुत रचनात्मकता से भरी थीं। ये शामें अलग ढंग का संस्कार दे गईं जो आज तक हमारे साथ है।" [19]

उस समय बनारस के साहित्यिक माहौल में कुछ खामियों के साथ उनकी अपनी परंपराएं भी थी, जिनका प्रभाव उनकी प्रारम्भिक रचनाओं पर पड़ा। इस संबंध में उनके अधोलिखित विचार इस प्रकार है:-

"जिस बनारस में मैंने पहले पहल अध्ययन के लिए प्रवेश किया वह प्रेमचन्द प्रसाद और रामचन्द्र शुक्ल के बाद का बनारस था, जिसमें रचनात्मक उत्साह तो था, पर कोई शिखर पुरूष मौजूद

नहीं था, जो सम्पूर्ण रचनाशीलता के केन्द्र में हो। यदि सिर्फ कविता के बारे में बात करें तो दो मुख्य परम्पराएं वहाँ मौजूद थीं, जिनमें गीतों की परम्परा थी। इसके सबसे प्रमुख कवि शम्भूनाथसिंह थे और सच्चे अर्थों में कविता की जो दूसरी परम्परा थी जिसे गति और ऊर्जा देने वाला एक ही व्यक्ति था–त्रिलोचन शास्त्री। यह परम्परा एक बहुत क्षीण धारा की तरह बह रही थी, जिसके अस्तित्व के बारे में बनारस का एक बड़ा साहित्यिक समुदाय लगभग अनजान था। उन्हीं दिनों नामवर जी ने एक कवि के रूप में अपनी पहचान बनानी शुरू कर दी, जिनके यहाँ प्रकृति के साथ, बिलकुल एक नयें ढंग के मानवीय सम्बन्ध के विविध रंग दिखाई पड़ते थे। मैंने शुरू किया था गीतों की जमीन से पर जल्दी मुझे लगा कि आज कवि के लिए गीत का ढांचा नाकाफ़ी है, फिर शायद एक कारण यह भी था कि छायावाद के साथ गीत का जो ढांचा विकसित हुआ था, उसमें टेक अर्थात् पहली पंक्ति की स्थिति मुझे हमेशा अधिनायक की तरह लगती थी। और होता यह था कि शेष कविता इसी एक पंक्ति का अनुधावन करने के लिए अभिशप्त होती थी। यह स्थिति मुझे अस्वाभाविक लगी और काफी हद तक आग्रह्य भी।" [20]

कवि केदारनाथ सिंह के व्यक्तित्व पर उनके ग्रामीण जीवन परिवेश की अमिट छाप पड़ी है। जो कि उनकी रचनाओं के माध्यम से व्यक्त हुई है केदारनाथ सिंह की इस सर्जनात्मक प्रतिभा को उभारने में उनके गुरुओं और मित्र मण्डलियों का विशेष योगदान है। जिसकी पुष्टि उनके स्वयं के कथनों और रचनाओं से होती है।

2.3 स्वभाव एवं मित्र मंडली

केदारनाथ सिंह देखने में गम्भीर, शान्त एवं सरल लगते हैं। कम बोलना उनके व्यक्तित्व की एक खास पहचान है। मित्रों के साथ भले ही वे खुलते हों परन्तु अन्यों से उनका व्यवहार एक दूरी लिए हुए होता है। ऐसा मेरा भ्रम था । यह भ्रम मित्था सिद्ध तब हुआ, जब जून 1999 की एक सुबह मैं उनसे मिलने उनके जे.एन.यू. स्थित निवास स्थान पर गया। समय के अभाव के बावजूद मुझे उन्होंने समय दिया। चुस्त एवं फुर्तीले बदन वाले केदारनाथ सिंह जी जीने की सीढ़ियों से जल्दी-जल्दी नीचे उतरे उनकी मेहमान नवाजी, भावुकता एवं दयालुता से मेरा मन ओत-प्रोत हो उठा। उनके साथ बातें करते मुझे लगा कि हम एक दूसरे को वर्षों से जानते हैं। इतनी आत्मीयता, सरलता एवं साधारणता उनके अन्दर विद्यमान है जिसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। केदारनाथ सिंह के अन्दर उनके बचपन के कतिपय ऐसे प्रसंग हैं जिनके माध्यम से उनके मानवीय गुणों की परख आसानी से की जा सकती है। पद्मा सचदेव के साथ एक साक्षात्कार के दौरान उनकी बातचीत के अंश यहाँ प्रस्तुत है – जिसके माध्यम से उनके बचपन के अन्तरंग भावों को जाना जा सकता है :-

"स्कूल में और लड़के भी कविता लिखते थे। एक कवि जो मुझसे बड़ा था उसका नाम था शिवप्रताप राव। मैं कभी-कभी उसकी राय लेने जाता था। उसे बुखार हुआ तो स्कूल के अस्पताल में भरती कर दिया गया। उसे सन्निपात हो गया था, वो बुखार में ही भागकर खेतों में चला गया और गड्ढे में गिर गया। गड्ढे में पानी भरा हुआ था। वो वहीं मर गया। चौबीस घंटे पानी में ही रहा। ज़ब उसकी लाश मिली तो उसकी आँखें विकल आई थीं। कहीं-कहीं

मछली ने खाया भी था। उसका शरीर फूल गया था। उसे देखा तो रात-भर सो न सका।" [21]

एक और दुर्घटना का जिक्र करते हुए वे कहते हैं कि-

"मेरी क्लास में एक और बड़ा प्रतिभाशाली लड़का था। जीवित रहता तो नामी कवि होता। उसका नाम सूर्यप्रताप था। मुझसे दो-तीन बरस बड़ा था। पर मेरी क्लास में ही था। उसकी एक त्रिपदी अभी तक याद है: दुर्भाग्य से उसे तपेदिक हो गया। दिल्ली में बड़े भाई ने उसका इलाज करवाया पर वो बच न सका। उसका जाना मेरे किशोर मन को दुख से भर गया। वो मुझे दिल्ली सैनिटोरियम से खत लिखता था। उसके जाने से मन खाली हो गया।" [22]

केदारनाथ सिंह की सरलता एवं दयालुता को उनके बच्चों ने भी भली भाँति परखा एवं पहचाना। इस विषय में उनकी बेटी संध्या का कथन इस प्रकार है :

"बाजी की सहजता हमें बचपन में बड़ी अच्छी लगती थी। वे जब भी कहीं जाते थे तो कुछ-न-कुछ मिठाई या टॉफी ज़रूर लाते थे। हम सभी बच्चों (पड़ोस के भी) को उनका इन्तज़ार रहता था। आज भी उनके 'प्रसाद' (मिठाई या टॉफी जो कि सबको प्रसाद की तरह बंटता था) की प्रतीक्षा हमारे बच्चों को तो होती ही है, अब एक और सदस्य जुड़ गई है- गिलहरी। बाजी खुद तो सरल मन के हैं ही, उन्हें सरलता और बाल सुलंभ चंचलता उतनी ही अच्छी लगती है। मेरे भाई सुनिल की पत्नी गुंजन शादी के बाद जब घर आई तो घर में अन्य मेहमानों के साथ ढेर सारे बच्चे भी थे। बाजी अपनी आदत के अनुसार बहुत सारी चॉकलेट लाए और आते ही बच्चों से पूछा, "कौन-कौन चॉकलेट लेगा?" सबसे पहले उठने

वाला हाथ गुंजन का था, जो कि वहाँ बैठी हुई थी । बाजी निहाल हो गये । यह बात उन्होंने पता नहीं कितने लोगों से कही होगी ।"[23]

केदारनाथ सिंह स्वभाव से जितने सरल एवं साधारण है उतना ही उनका खान-पान भी साधारण है । जिसका जिक्र उनकी पुत्री संध्या इस प्रकार करती है -

"बाजी को घर का बना सादा और स्वादिष्ट खाना सबसे अधिक प्रिय है । किसी विशेष व्यंजन में उनकी रूचि नहीं है । बाज़ार में चाहे जितनी भी सब्जियां आएँ, लेकिन उनके खाने में लौकी, नेनुआ और पत्तागोभी यह तीन सब्जियाँ शामिल होती हैं ।"[24]

साधारण खान-पान के अतिरिक्त केदारनाथ सिंह को कविता लिखना, संगीत सुनना, और अकेले रहना बेहद प्रिय है । इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं तीसरे सप्तक के वक्तव्य में किया है :-

"कविता, संगीत और अकेलापन तीन चीजें बेहद प्रिय हैं । मित्र बहुत कम बना पाता हूँ क्योंकि एक व्यावहारिक आदमी में जो खुलापन होना चाहिए, उसका मुझमें नितान्त अभाव है ।"[25]

उपर्युक्त वक्तव्य से यह साफ जाहिर होता है कि केदारनाथ सिंह लोगों से मिलना जुलना पसन्द नहीं करते और अकेलेपन से हमेशा लड़ते रहते हैं। सम्भवत: इस स्थिति में वे जीवन-जगत की संवेदनात्मक अनुभूतियों द्वारा अपना आत्म विस्तर करते हैं। केदारनाथ सिंह के इस प्रकार के स्वभाव के कारण लोगों को उनसे मिलने में हिचक महसूस होती है। साहित्यकार भारत यायावर भी इसी भ्रान्ति के शिकार थे लेकिन जब वे उनसे मिले तो उन्हीं के होकर रह गए। अपनी प्रथम मुलाकात का जिक्र करते हुए वे कहते है :-

"केदारनाथ सिंह से मिलने के पहले उनके प्रति एक भ्रम सा मन में था और यह भ्रम उन्हीं के द्वारा रचित था। केदारनाथ सिंह की कविताओं का प्रेमी मैं शुरू से ही था। जब अपनी यात्रा शुरू कर रहा था, तभी 'तीसरा सप्तक' में संकलित केदारनाथ सिंह की कविताएं पहली बार पढ़ी थीं। उन कविताओं के साथ जो केदारनाथ सिंह का आत्म–वक्तव्य था, उसी ने उनके बारे में एक भ्रम का निर्माण किया था।"[26] जिसका उल्लेख मैंने उपर किया है। इसके आगे भारत यायावर कहते है कि : "तीसरे सप्तक का वक्तव्य पढ़कर मैंने केदारनाथ सिंह की अपने मन के पर्दे पर जो छवि बनायी थी, वह एक ऐसे कवि की थी, जो लोगों से मिलना–जुलना, बातचीत करना पसन्द नहीं करता, जो अन्तर्मुखी है, जो अकेलेपन में ही जीवन–रस ग्रहण करता है। ये धारणाएं मेरे मन में बहुत गहरे पैठी हुई थीं। फिर पटना में डा.नन्द किशोर नवल से केदारनाथ सिंह जी के बारें में ढेरों बातें हुई। जब भी पटना जाता, नवल जी से लम्बी साहित्यिक बातचीत हुआ करती और अब भी होती है। इसी क्रम में नवल जी ने एक बार केदारनाथ सिंह जी के श्रेष्ठ प्राध्यापक होने की बात कही। उन्होंने बताया कि यदि मुझे कभी किसी प्रोफेसर का छात्र या विद्यार्थी होना पड़े, तो मैं केदारनाथ सिंह जी का होना पसन्द करूँगा। ---- इस तरह नवल जी ने केदारनाथ सिंह जी के प्रति मेरे मन में बेहद आकर्षण भर दिया, अन्यथा केदारनाथ सिंह जी से शायद कभी नहीं मिलता या मिलने की कोशिश करता।

1980 के अक्तूबर में मैं दिल्ली गया था। उसी समय अनिल जनविजय ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के रूसी भाषा में दाखिला लिया था और वहीं रह रहा था। वहीं एक दिन अपने

विभाग से लौटते हुए केदारनाथ सिंह से अनिल ने मेरा परिचय करवाया। खादी का कुरता-पाजामा पहने, केदारनाथ सिंह ने खड़े-खड़े कुछ मिनट बातें की और अपनी सादगी, सरलता या कहें, अपने व्यक्तित्व के खुलेपन से आश्चर्य में डाल दिया । ठेठ गाँव-कस्बों के औसत पढ़े-लिखे आदमी की तरह, साधारण लिबास में उन्हें देखकर और आत्मीय, तरल व्यक्तितव को पाकर मैंने जो मन के पर्दे पर केदारनाथ सिंह की छवि बना रखी थी, अचानक दरक गयी। उसी दिन केदारनाथ सिंह ने शाम को घर पर बुलाया। शाम को मैंने और अनिल ने केदारनाथ सिंह का लम्बा इण्टरव्यू लिया।" [27]

इस तरह केदारनाथ सिंह के सरल व्यक्तित्व से प्रभावित हो भारत यायावर जी उनके अच्छे मित्र बन गये। और उनके साक्षात्कार को 1980 की शम्भू बादल द्वारा सम्पादित प्रसंग एवं कलावार्ता पत्रिका में छपवाया। अब यायावर जी जब भी दिल्ली जातें है तो केदारनाथ सिंह से सबसे ज्यादा मिलते है । केदारनाथ सिंह के मित्रों की सूची तो बहुत लम्बी है, परन्तु उनमें जो उल्लेखनीय है वे है : नामवर जी, तिलोचन जी, विजयमोहन जी, विश्वनाथ त्रिपाठी, श्री विष्णुचन्द्र शर्मा, चन्द्रवली सिंह, शिवप्रताप सिंह आदि। उनके मित्रों के बारे में विजय मोहन जी बताते है :-

"शायद केदारनाथ सिंह जी वहाँ मेरे कमरे में आने वाले पहले व्यक्ति थे। जब मैं बिरला हॉस्टल में था तो वे गुर्टू हॉस्टल में थे। वहीं शिवप्रसाद सिंह भी रहते थे। वे भी शोध कार्य कर रहे थे। विरला हॉस्टल के कमरे में भी केदारनाथ सिंह जी अक्सर आ जाते थे, प्रायः छुट्टियों के दिन। हम गुर्टू हॉस्टल होते हुए एग्रीकल्चर कॉलेज के खेतों की पगडंडियों पर दूर तक टहलते थे। तब

"अनागत" कविता की धूम थी और केदारनाथ सिंह युवा कवियों के चेहते बन चुके थे।"[28]

केदारनाथ सिंह के हॉस्टल के दिनों एवं मित्रों के बारे में बताते हुए विजयमोहन जी आगे कहते हैं कि –

"रीवाँ कोठी में प्रायः हर सुबह केदारनाथ सिंह नहा-धोकर मेरे कमरे में आ जाते थे और हम अस्सी चौराहे पर 'केदारनाथ सिंह की दुकान" पर चाय पीने जाते थे। वहीं नामवर जी भी आ जाते थे। चाय के साथ मूँगकी दालमोट खाते थे या सामने संकटमोचन वाले महंथ जी की दुकान से पालक की पकौड़ियाँ मँगा लिया करते थे। विश्वविद्यालय जाने के पहले और आने के बाद सुबह शाम का अड्डा वहीं दुकान थी। वहाँ शहर के ही नहीं, बाहर के भी साहित्यकार अक्सर आ जाते थे।"[29]

हॉस्टल में अपनी एवं दोस्तों की दिनचर्या एवं पैसे की तंगी में गुजारे दिनों के बारे विजयमोहन जी वर्णन करते है कि:-

"उन दिनों हम सभी सामान्यतः स्वस्थ ही रहते थे जिसका मुख्य कारण था हमारी विकल्पहीनता में बनी हुई 'सादा जीवन उच्च विचार' वाली दिनचर्या। तब तो गरम पानी से नहाने की अवधारणा भी नहीं बन पाई थी हर मौसम में हम खूब ठंडे पानी से तड़के ही नहा-धोकर तैयार हो जाते थे और नाश्ते के नाम पर चाय में डुबोकर रस्क या स्थानीय बेकरी में बने नमकीन बिस्किट के चंद टुकड़े। खाने में दाल-रोटी, बिना मसाले वाली कोई हरी सब्जी, कभी-कभी चावल भी और वहीं केदारनाथ सिंह जी वाली दही। शाम के भोजन में वह भी नहीं होती थी। पैसों की तंगी सबको और हमेशा रहती थी क्योंकि नियमित रूप से नौकरी करने वाले केवल नामवर सिंह जी थे- वह भी अस्थायी। इसके अलावा वे

घरबारी थे और काशी के अलावा दूसरे भाई रामजी सिंह की पढ़ाई-लिखाई का दायित्व भी उन्हीं पर था। इसलिए उनके यहाँ कभी-कभी चाय की एक प्याली या एक गिलास पानी के साथ गुड़ की एक डली के अतिरिक्त और कुछ मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता था। वैसे भी उन दिनों विश्वविद्यालय के अस्थायी अध्यापक को पौने तीन सौ या उसी के आसपास वेतन प्राप्त होता था।--- केदारनाथ सिंह ने बीच में कुछ दिनो के लिए यू.पी. कॉलेज के इंटर सेक्शन में अध्यापकी जरूर की थी। किन्तु शीघ्र ही वहाँ की जहालत और बेहद थका देने वाली दिनचर्या के कारण उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी।" [30]

जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किंया है कि केदारनाथ सिंह की सर्जनात्मक ऊर्जा उनके मित्रों से मिली। इसके साथ ही आजीविका की तलाश में भी इनके मित्रों का विशेष योगदान रहा है। प्रख्यात समीक्षक परमानंद श्रीवास्तव के बुलावे पर वे गोरखपुर गए और वहीं पर उनके सहयोग से हिंदी प्राध्यापक की नौकरी प्राप्त की।

2.4 आचार्य जीवन बनाम कविजीवन

स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात केदारनाथ सिंह जी वाराणसी के ख्याति प्राप्त यू.पी. कालेज के उच्चतर माध्यमिक विभाग में अस्थायी प्रवक्ता के रूप में अस्थायी पद पर अध्यापन कार्य करने लगे। शोध कार्य में व्यवधान आने के कारण कुछ समय के पश्चात् इन्होंने यह नौकरी छोड़ दी, लेकिन कवि-कर्म से सदैव जुड़े रहे। यह जुड़ाव विद्यार्थी जीवन से ही था, परन्तु समय के साथ-साथ निखार आता गया। केदारनाथ सिंह

के जीवन में भी इन दिनों कई उतार-चढ़ाव आए फिर भी वे इस कार्य में निरत रहे। इनकी आजीविका के बारे में विजय मोहन जी बताते है :-

केदारनाथ सिंह ने बीच में कुछ दिनों के लिए यू.पी. कॉलेज के इंटर सेक्शन में अध्यापकी जरूर की थी। किन्तु शीघ्र ही वहाँ की जहालत और बेहद थका देने वाली दिनचर्या के कारण उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी। उससे उनके शोध कार्य में भी बाधा पहुँचती थी। केदारनाथ सिंह कविता पाठ करने इलाहाबाद रेड़ियो जाते रहते थे। वहाँ साहित्यिक कविताओं का नियमित प्रसारण होता था- 'स्वर बेला' या ऐसे ही किसी कार्यक्रम के अन्तर्गत वहाँ से जो पारिश्रमिक मिलता, उसका भी कुछ हिस्सा फिल्में देखने के लिए व्यय किया जाता था। बनारस के 'आज' अखबार वाले भी बीच-बीच में साहित्यिक विशेषांक निकालते थे- उसके संपादक मोहन लाल गुप्त थे, उसमें भी हम लोग कभी-कभी लिखा करते थे- पारिश्रमिक 10 या 15 रूपये होता था। वह भी फिल्मी मद में जाता था।" [31]

केदारनाथ सिंह अध्यापन के कार्य के साथ-साथ अपना कवि कर्म भी निरन्तर निभाते रहे। उनके इस अथक प्रयास के बारे में बताते हुए परमानन्द श्रीवास्तव जी लिखते हैं :-

"केदारनाथ सिंह को मैं 55-56 से इसी रंग में देख रहा हूँ जबकि उनकी कविता में परिवर्तन के कई स्पष्ट मोड़ दिखाई देते हैं। नामवर जी को मैंने पहले जाना जब वे मेरे अनुरोध पर प्रगतिशील लेखक संघ और शायद स्टुडेंट्स फेडरेशन के संयुक्त आयोजन, प्रेमचन्द जयन्ती में भाषण करने के लिए गोरखपुर आये थे। कहने की जरूरत नहीं कि पहली ही बार उनकी तेजस्वी

वक्तृता के असर में आ गया । उनसे कुछ निकटता बढ़ी, साहित्यिक मार्ग दर्शन मिलने लगा तभी केदारनाथ सिंह के बारे में जाना । उन्हें देखने का पहला ही अवसर था, गोरखपुर नगरपालिका के सारी रात चलने वाले कवि–सम्मेलन में केदारनाथ सिंह का काव्य पाठ । मुझे याद है जब संयोजक ने नाम पुकारा और केदारनाथ सिंह माइक पर पहुँचे । गोपेश ने लपककर माइक संभाल लिया और श्रोताओं को आगाह किया कि वे कुछ नया सुनने के लिए अपने को तैयार कर लें । केदारनाथ सिंह शोधकार्य में लगे– मैं शोधकार्य के लिए लखनऊ जाना चाहता था । विषय की तलाश में नामवर जी से राय लेने बनारस गया । केदारनाथ सिंह तब अधिक निकट आये । घूम फिर कर मैं सेट एण्ड्रयूज कालेज गोरखपुर में पहले अध्यापक और वर्ष बाद विभागाध्यक्ष हुआ । यूनीवर्सिटी में एम.ए. की कक्षाएं स्थानांतरित हुई मुझसे वरिष्ठ अध्यापक विश्वविद्यालय चले गये । केदारनाथ सिंह उदय प्रताप इण्टर कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हुए,साल भर में ही मुक्त । शोध के बहाने बनारस में सक्रिय । 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ । केदारनाथ सिंह को नयी स्वीकृति मिली । अब मैं एक कालेज में विभागाध्यक्ष था, केदारनाथ सिंह बेकार थे । एक अध्यापक का पद खाली था । विज्ञापित हुआ । फार्म लेकर मैं बनारस गया । केदारनाथ सिंह से फार्म भरवाकर मैंने जमा किया । साक्षात्कार के लिए वे गोरखपुर आये । उनका जो कुछ साहित्य तब तक छपा था जमाकर उन्हें दिया कि साक्षात्कार में खाली हाथ न उपस्थित हों । केदारनाथ सिंह चुन लिए गए । अब हम साथ थे । मुक्त सृजनशील आनंद के अद्भुत दिन थे वे ।

कालान्तर में केदारनाथ सिंह की नियुक्ति गोरखपुर

विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में हुई। 1976 में आप जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के भाषा विभाग में आ गए और अन्तत: विभागाध्यक्ष बनने के बाद वहीं से सेवा मुक्त हुए। सेवामुक्त होने के बाद आपकी नियुक्ति पुन: उसी विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विशेष नियमों के अन्तर्गत की गई। जहाँ केदारनाथ सिंह जी 65 वर्ष तक अध्यापन कार्य करते रहे। आज भी अतिथि आचार्य के रुप में आपको बराबर आमंत्रित किया जाता है।

2.5 सम्मान एवं कृतियाँ

कवि कार्य का निर्वाह करते हुए केदारनाथ सिंह दिल्ली एवं देश के अन्य भूभागों में होने वाली विभिन्न संगोष्ठियों, कवि सम्मेलनों और अन्य साहित्यिक कार्यक्रमों में बराबर भाग लेते रहते है। हिंदी विषय के गम्भीर विषयों पर आपके साक्षात्कार एवं समसामायिक विषय की कविताएं विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। आपकी संपादित पुस्तक ताना-बाना चर्चा के केन्द्र में रही। इसके अतिरिक्त आपकी कई अनुदित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। जो कि अंग्रेजी, स्पेनिश, रुसी, जर्मन और हंगेरियन आदि भाषाओं की है।

साहित्य का सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ को छोड़कर आपको कई अन्य साहित्यिक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। जिनमें मुख्यत: 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' (1989) 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान'(मध्यप्रदेश), 'कुमारन आशान पुरस्कार'(केरल), 'दिनकर पुरस्कार' (बिहार), 'जीवनभारती सम्मान'(उड़ीसा) 'दयावती मोदी पुरस्कार' एवं 'निराला

पुरस्कार' (उत्तरप्रदेश) और 'जोशुआ'(आंध्रप्रदेश) आदि पुरस्कार हैं।

*****

संदर्भ ग्रंथ

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	संपादक /रचियता	पृ. संख्या
1.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर राजा खुगशाल	पृ. 44
2.	वही	वही	पृ. 44
3.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 20
4.	वही	वही	पृ. 21
5.	प्रतिनिधि कविताएं	केदारनाथ सिंह	पृ. 105
6.	उत्तर कबीर और अन्य कविताएं	केदारनाथ सिंह	पृ. 42
7.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 21
8.	यहाँ से देखो	केदारनाथ सिंह	पृ. 26
9.	मेरे समय के शब्द	वही	पृ. 187
10.	जमीन पक रही है	वही	पृ. 32
11.	यहाँ से देखो	वही	पृ. 13
12.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर	पृ. 44
13.	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह	पृ. 193
14.	मेरे समय के शब्द	वही	पृ. 192
15.	उत्तर–केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 22
16.	उत्तर–केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 24
17.	वही	वही	पृ. 24
18.	वही	वही	पृ. 26
19.	वही	वही	पृ. 26-27
20.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर	पृ. 46

		राजा खुगशाल	
21.	उत्तर – केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 25
22.	वही	वही	पृ. 26
23.	वही	वही	पृ.37-38
24.	वही	वही	पृ. 38
25.	तीसरा सप्तक	डा.अज्ञेय	पृ.
26.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर	पृ. 9
27.	वही	वही	पृ. 10
28.	उत्तर– केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 41
29.	वही	वही	पृ. 43
30.	वही	वही	पृ. 45
31.	वही	वही	पृ. 46

*****

तृतीय अध्याय

केदारनाथ सिंह : काव्यानुभूति एवं प्रेरणा

तृतीय अध्याय

केदारनाथ सिंह : काव्यानुभूति एवं प्रेरणा

3.1 ग्रामीण परिवेश :

प्रत्येक मनुष्य के जीवन पर उसके जन्म स्थान, प्रकृति, रहन-सहन, माँ-बाप के आचार-विचार, शिक्षा-दीक्षा एवं कार्य क्षेत्र आदि परिवेशगत परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। केदारनाथ सिंह भी उपर्युक्त सभी प्रभावों से प्रभावित हुए। उनके गाँव में लोक गीतों की परम्परा थी, जो विभिन्न तीज त्यौहारों एवं मांगलिक अवसरों पर गाए जाते थे। केदारनाथ सिंह के बाल मन को इन गीतों ने बहुत प्रभावित किया। जैसा कि मैंने प्रथम अध्याय में लिखा है कि केदारनाथ सिंह के गाँव में गोंड़ जाति के लोग रहते थे जो दोहा एवं सोरठा गाकर सुनाया करते थे। उनकी मीठी लय ने केदारनाथ सिंह के मन में संगीत के प्रति प्रेम को जन्म दिया। इन सभी प्रभावों के कारण ही उन्होंने गीतों की दुनिया से अपने कवि जीवन की यात्रा आरम्भ की। उनका आरम्भ के दिनों का एक बहुचर्चित गीत इस प्रकार है :-

"गीतों से भरे दिन फागुन के ये गाये जाने को जी करता।

ये बाँधे नही बंधते, बाहे-
रह जाती खुली की खुली,
ये तोले नहीं तुलते, इस पर
ये आँखे तुली की तुली,
ये कोयल के बोल उड़ा करते, इन्हें थामें हिया रहता।" [1]

गाँव में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् केदारनाथ सिंह वाराणसी आ गये। उदय प्रताप कॉलेज में पढ़ते हुए इन्हें कविता-पाठ एवं सभा-संगोष्ठियों में भाग लेने का अवसर मिला। इसके साथ ही साथ वहाँ के उभरते एवं प्रतिष्ठित कवियों एवं रचनाकारों से मिलने एवं उनकी रचनाओं को सुनने का मौका मिला। प्रारम्भ में ये नामवर जी से काफी प्रभावित हुए और बाद में त्रिलोचन व अज्ञेय जी से। इस प्रकार के माहौल में केदारनाथ सिंह के मन में कविता के अंकुर फूटे, जो कालान्तर में वट वृक्ष का रुप धारण किए। देवेन्द्र चौबे द्वारा लिए गए साक्षात्कार में उन्होंने स्वयं स्वीकारा है :-

"प्राथमिक शिक्षा तक मैं गाँव में था। इसके बाद बनारस के उदय प्रताप कॉलेज में आ गया, जहाँ एक अच्छी-खासी साहित्यिक परम्परा मौजूद थी, कॉलेज में कविता प्रतियोगिताएं होती थीं और समय-समय पर साहित्यकारों के व्याख्यान आदि। इसी कॉलेज में डा.नामवर सिंह भी पढ़ते थे, जो मुझसे पांच या छः वर्ष सीनियर थे। मुझे जो अध्यापक मिले उनमें एक थे स्व. मार्कण्डेय सिंह, जिनकी हिन्दी साहित्य में गहरी पैठ थी, हिन्दी की साहित्यिक विरासत की सही समझ मुझे वहाँ से मिली। मेरे अंग्रेजी के अध्यापक उस समय चन्द्रबली सिंह थे, जो अब जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष हैं। कुल मिलाकर कॉलेज का वातावरण एक विलक्षण रचनाशीलता से भरा हुआ था। मैंने अपनी पहली कविता वहीं लिखी और फिर वहाँ की पत्रिका में पहली बार मेरी आरम्भिक तुकबन्दियां प्रकाशित भी हुई।" [2]

उदय प्रताप कॉलेज के दिनों में ही केदारनाथ सिंह ने गीत लिखना आरम्भ कर दिया था। बनारस में गीतकारों का

अच्छा खासा मंडल था, जिसमें सबसे अच्छे कवि या गीतकार थे- शम्भुनाथ सिंह। शम्भुनाथ सिंह के संपर्क के दौरान ही केदारनाथ सिंह ने गीतों की दुनिया में कदम रखा। वे कवि सम्मेलनों में जाते और महान कवियों को सुनते थे। उन्हीं दिनों में उन्होंने कुछ बड़े अच्छे गीत भी लिखे। उनकी एक बहुत ही लोकप्रिया धुन है :-

"झरने लगे नीम के पत्ते
बढ़ने लगी उदासी मन की।" [3]

बनारस के काव्यमय वातावरण के साथ ग्रामीण जीवन से जुड़ी अधिकांश वस्तुएं जैसे:- चौखट, बरगद, चौराहे, आँगन, पगडंडी, नदी, गेंदा, गगरी, चॉवल, टमाटर, आलू, नीम, सरसों, नदी-नाले इत्यादी सभी विषय उनके काव्य के प्रेरणा स्रोत बने। जिनका कि केदारनाथ सिंह ने अपनी कविताओं में सामान्यत: प्रयोग किया हैं -

1) "मैंने पहली बार/ स्कूल से लौटते हुए
उसकी लाल-लाल ऊँची मेहराबें देखी थीं,
यह सर्दियों के शुरू के दिन थे / जब पूरब के आसमान में
सरसों के झुण्ड की तरह डैने पसारे हुए
धीरे-धीरे उड़ता है माँझी का पुल।" [4]

2) "अब हमारे सामने / दूर तक फैले / पके हुए ज्वार के
सिर्फ खेत ही खेत थे, और रास्ता नहीं था/
क्या हुआ,
किधर गया रास्ता?" [5]

केदारनाथ सिंह की प्रारम्भिक कविताओं में घर आंगन, प्रकृति के नदी-नाले, पेड़-पौधे, खेत-खलिहान, मौसम और

ऋतुएं आदि के प्रसंग जीवन के अभिन्न अंग के रुप में व्यक्त हुए हैं। निश्चित रूप से यही उनकी काव्य प्रेरणा की मुख्य भूमि रहे होगें।

1)"खेत जग पड़े थे /पत्तों से फूट रही थी चैत के शुरू
की/ हल्की-हल्की लाली सोचा, मौसम बढ़िया है /
चलो तोड़ लाएं नीम के दो-चार / हरे-हरे छरके।" [6]

2)"बोझे बाँधे जा रहे हैं /ऊपर आसमान में तप रहा है
सूरज /और यह कितना अद्‌भुत हैं कि जब तप रहा है
सूरज/वे ताबड़तोड़ बाँध रहे है अपने बोझे/
जैसे बोझे चुराये गये हों / सूरज की टाल से।"

3)"नहीं / हम मंडी नहीं जायेंगें / खलियान से उठते
हुए / कहते है दानें,
जायेंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे / जाते-जाते /
कहते जाते हैं दानें।"

नीम के हरे-हरे छरके, बोझे, चुराये, सूरज की टाल, मंडी नहीं जायेगें दाने, इत्यादि, जैसी और अनेक कविताओं में उनके ग्रामीण अंचल के सजीव चित्र देखे जा सकते हैं।

राजनैतिक एवं साहित्यिक अनिश्चितता के समय में भी केदारनाथ सिंह के ये प्रेरणा स्रोत बरकरार रहे। क्योंकि उन्होंने जिस समय में लिखना आरम्भ किया, वह घात-प्रतिघात का दौर था। एक तरफ जहाँ प्रयोगवादी कवि प्रगतिवादी कवियों पर भाषा का दुरूपयोग करने जैसा आरोप लगा रहे थे वहीं दूसरी ओर प्रगतिवादी कवि प्रयोगवादियों पर सीमित वैचारिक क्षमता होने की बात कर रहे थे। उस समय एक खास राजनैतिक गहमागहमी

का वातावरण था। ऐसे उथल-पुथल के माहौल में भी केदारनाथ सिंह ने अपना संतुलन बनाये रखा और उसे बरकार रखने की लगातार कोशिश भी करते रहे। इस प्रकार के परिवेश में प्रकृति और गाँव से संबंधित इनकी कतिपय कविताएँ 'तीसरे सप्तक' में प्रकाशित हुई। उनमें से कुछ निम्नलिखित है:-

"ये कोयल के बोल उठा करते
इन्हें थामे हिया रहता।" [7]

"फूल जैसे अँधेरे में
दूर से ही चीखता हो
इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है
हाथ उसके।" [8]
"झरने लगे नीम के पत्ते
बढ़ने लगी उदासी मन की।" [9]

केदारनाथ सिंह की ये कविताएं उस समूचे दौर की कविता में अपनी एवं अपने कवि की अलग पहचान बनाती नजर आतीं हैं। इसका उल्लेख मैं आगे के अध्याय में करूँगा। जैसा कि मैंने उपर कहा है कि केदारनाथ सिंह ने गीतों की दुनिया के रास्ते कविता के पटल पर कदम रखा। उनके आरम्भ के दिनों के कई गीत, यद्यपि 'तार सप्तक' में प्रकाशित हो चुके थे, परन्तु व्यवस्थित रूप छपने वाला उनका पहला कविता संग्रह "अभी बिलकुल अभी" है जो सन 1960 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह से उनके भविष्य में आने वाली रचनाओं की एक झलक भी मिलती है। जिसका एक उदाहरण है। संग्रह की प्रथम कविता 'प्रक्रिया' :-

"गूंजहीन शब्दों के इस घने अंधकार में
मैं
अर्थ परिवर्तन की
एक अबूझ प्रक्रिया हूँ
जिसके भीतर
ये लोग / झाड़ियां / बत्खें/और भविष्य
हर चीज एक दूसरे में / घुली-मिली है
जड़ें रोशनी में है / रोशनी गंध में/गंध विचारों में/
विचार स्मृतियों में/ स्मृतियाँ रंगों में/ और मैं चुपचाप
इस सम्पूर्ण व्यक्ति क्रम को/ भीतर संभाले हुए/ चलते-
चलते
झुककर रास्ते की धूल से/ एक शब्द उठाता हूँ। और
पाता हूँ कि अरे / गुलाब।" [10]

केदारनाथ सिंह ने अपनी पहली कविता सुभाष की मृत्यु पर लिखी थी। जिसका उल्लेख उन्होंने 'तीसरा सप्तक' के परिचय में किया है :-

"मैं उनकी राजनैतिक सक्रियता तो नहीं ग्रहण कर सका, पर उन के संगीत-प्रेम से भीतर-ही-भीतर प्रभावित होता रहा। जीवन में मैंने जो पहली कविता लिखी उसका विषय था सुभाष की मृत्यु। इस आरम्भिक प्रयास को छोड़कर व्यवस्थित रूप से लिखना आरम्भ किया सन् 1950 से।" [11]

रचना प्रक्रिया के इस आरम्भिक दौर में केदारनाथ सिंह, नामवर जी से बहुत प्रभावित थे, क्योंकि उन दिनों नामवर जी की काफी रचनाएं प्रकाशित हो रही थी। जिन्हें देखकर केदारनाथ

सिंह का मन भी बहुत लालायित हो रहा था, और ऐसे समय में उन्होंने अपनी दूसरी कविता लिखी। यह कविता गाँधी जी के ऊपर लिखी गयी थी, जो छपने वाली इनकी पहली रचना थी। इसकी पुष्टि करते हुए केदारनाथ सिंह स्वयं कहते है :-

"नामवर जी उस वक्त कविता न सिर्फ लिखते थे बल्कि गाकर भी पढ़ते थे। कवि नामवर उस समय काफी प्रसिद्ध कवि थे। कविता की ये नई दुनियां मुझे मोंह रही थी। प्राकृतिक चित्रण एक नये संसार की तरह लगता जो बेहद आकर्षित करता था। मुझे वो संसार दूर से दिखाई देता था, पर अभी सधा न था। हमारे स्कूल में कविता प्रतियोगिता होती थी। मैंने एक बार कविता लिखने की कोशिश की और मंच पर उछाल दी। तरन्नुम में डूबकर पढ़ी तो कुछ लोगों ने कहा -बात बनती-सी नज़र आ रही है। जब गाँधी जी की मृत्यु हुई, मैं छठी कक्षा में था। स्कूल की मैगज़ीन के लिए मैंने गाँधी जी पर कविता लिखी। हमारे अध्यापक की रूचि पुराने ढंग की कविता में थी, उन्होंने छापी ही नहीं। उन्होंने कहा इसमें छंद, लय कुछ भी नहीं है। पर मुझे लगा इसमें छंद भी है, लय भी है फिर ये अगले बरस छपी। ये मेरी छपने वाली पहली कविता थी।" [12]

3.2 प्रतिष्ठित एवं समकालीन रचनाकारों से संपर्क

केदारनाथ सिंह को विद्यार्थी जीवन से ही प्रतिष्ठित रचनाकारों का सानिध्य प्राप्त रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे महान चिंतक, आलोचक एवं साहित्यकार इनके गुरू रहे हैं। द्विवेदी जी का स्नेह इन पर विशेष रुप से रहा। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी से अपनी निकटता का जिक्र केदारनाथ सिंह ने कई

व्याख्यानों एवं वार्तालापों में किया है। पद्मा सचदेव से एक साक्षात्कार के दौरान वे कहते हैं :-

"आरंभिक संस्थान छोड़ने के बाद मैं बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय में गया। उन दिनों पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी वहाँ हिन्दी के विभागाध्यक्ष थे। वो हमें पढ़ाते थे और उसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे उनका शिष्यत्व मिला।" [13]

इसके अतिरिक्त देवेन्द्र चौबे से अपनी बातचीत के समय भी केदारनाथ सिंह ने पंडित जी के साथ अपनी निकटता को स्वीकारा है:

"पड़रौना कॉलेज में पढ़ाते हुए मैंने एक बार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को आमंत्रित किया था और वे वहाँ आये तो उन्हें आस-पास के इलाकों में घुमाने के लिए भी ले गया था। मुझे अब तक याद है कि पुरानी जीप से धूल-भरी सड़क पर चलते हुए द्विवेदी जी ने अचानक भाव-विन्हल होकर एक स्थान पर जीप रुकवा दी थी और कहा था-"केदार, यदि मैं इस अंचल में न आया होता तो हिन्दुस्तान कितना गरीब है, इसका ठीक-ठीक अंदाज न लग पाता।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद केदारनाथ सिंह को यदि किसी महान रचनाकार का आत्मीय सहयोग एवं समर्थन प्राप्त हुआ तो उसमें प्रख्यात् समीक्षक नामवर सिंह का ही नाम आता है। जनवरी 1999 में गोवा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अतिथि आचार्य के रुप में आए आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी से जब हमारी बात-चीत केदारनाथ सिंह के विषय में हुई तो उन्होंने बताया कि केदारनाथ सिंह को नामवर जी का विशेष आशीर्वाद प्राप्त हुआ। नामवर जी अपने व्याख्याओं में केदारनाथ सिंह की

कविताओं का विशेष रुप से उल्लेख किया करते थे । मैं, केदारनाथ सिंह और विश्वनाथ त्रिपाठी आदि साथ ही पढ़ते थे । शिवप्रसाद सिंह, नामवर सिंह आदि मुझसे एकाध दर्जा आगे थे ।

इसके अलावा हिन्दी साहित्य के जिन महान रचनाकारों से केदारनाथ सिंह का सम्पर्क रहा उनमें मैथिली शरण गुप्त, अज्ञेय, त्रिलोचन शास्त्री, नामवर सिंह , स्व. मार्कण्डेय सिंह, शम्भूनासिंह आदि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है । अपने विद्यार्थी जीवन की याद को ताजा करते केदारनाथ सिंह जी बताते है :-

"मेरे कॉलेज में डा.नामवर सिंह भी पढ़ते थे, जो मुझसे पांच या छः वर्ष सीनियर थे । मुझे जो अध्यापक मिले उनमें एक थे स्व. मार्कण्डेय सिंह, जिनकी हिन्दी साहित्य में गहरी पैठ थी, हिन्दी की साहित्यिक विरासत की सही समझ मुझे वहाँ से मिली ।"[14]

केदारनाथ सिंह जी के शैक्षिक जीवन का अधिकांश समय वाराणसी में बीता । जिसे धर्म, काव्य और विद्या की नगरी कहा जाता हैं । हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ प्रतिभाओं का कार्य क्षेत्र वाराणसी ही रहा और साथ ही नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओं ने हिंदी साहित्यकारों को समृद्ध करने में अभूतपूर्व योगदान दिया । विद्यानगरी वाराणसी के संबंध में अपने अनुभवों का जिक्र करते हुए वे स्वयं लिखते है :

"जिस बनारस में मैंने पहले-पहल अध्ययन के लिए प्रवेश किया वह प्रेमचन्द, प्रसाद, और रामचन्द्र शुक्ल के बाद का बनारस था, जिसमें रचनात्मक उत्साह तो था, पर कोई शिखर पुरुष मौजूद नहीं था, जो सम्पूर्ण रचनाशीलता के केन्द्र में हो ।

यदि सिर्फ कविता के बारे में बात करें तो दो मुख्य परम्पराएं वहाँ मौजूद थी, जिनमें एक गीतों की परम्परा थी। इसके सबसे प्रमुख कवि शम्भूनाथसिंह थे और सच्चे अर्थों में कविता की जो दूसरी परम्परा थी जिसे गति और ऊर्जा देने वाला एक ही व्यक्ति था– त्रिलोचन शास्त्री।" [15]

प्रतिष्ठित रचनाकारों में एक और नाम उल्लेखनीय है, जिनसे केदारनाथ सिंह का निकट का संबंध रहा। वे है– अज्ञेय जी। वस्तुत: केदारनाथ सिंह जी को कविताकारों की मुख्य धारा में लाने का श्रेय अज्ञेय जी को ही जाता है। एक नौसीखिया कवि से प्रसिद्ध कवि बनने की यात्रा में अज्ञेय जी की भूमिका को केदारनाथ सिंह अपनी जबानी ब्यान करते हैं :–

"इससे पहले की एक घटना याद आ रही है। अज्ञेय जी से प्रथम साक्षात्कार बनारस से बहुत दूर बिहार के छोटे से शहर देवधर में हुआ था। वहाँ एक साहित्यिक समारोह था। उसके आयोजक थे ठाकुर प्रसादसिंह। उन्होंने स्नेहवश मुझे भी बुलाया था। वहाँ जो प्रमुख व्यक्ति आए उनमें अज्ञेय, प्रभाकर माचवे और नंद दुलारे वाजपेयी की याद है। मैं 'तार सप्तक' से वाक़िफ़ था इस लिए इनको देखना एक रोमांचकारी अनुभव था। वहाँ काव्य–पाठ हुआ। एक नौसिखुआ कवि के रुप में मैंने भी एक कविता पढ़ी। एक सहज जिज्ञासा मन में थी कि मेरी कविता अज्ञेय जी को कैसी लगी होगी। पर उनके चेहरे पर जो सपाट–सा भाव था उससे मन में बड़ी निराशा हुई, जैसे मैं परीक्षा में फेल हो गया। आयोजन समाप्त हुआ तो अज्ञेय जी की चिट मिली, "कविता मुझे अच्छी लगी, क्या इसे 'प्रतीक' में छपने के लिए देंगे। मैंने 'प्रतीक' में छपने की कल्पना भी न की थी। 'प्रतीक' में छपने के बाद लोग बाग जानने

लगे तो अच्छा लगा ।" [16]

कवि केदारनाथ सिंह की प्रतिभा को मुखरित करने में निश्चित रुप से उनके समकालीन प्रतिष्ठित रचनाकारों का महत्वपूर्ण सहयोग उन्हें मिला । वे रचनाकार आज हिंदी साहित्य में युग निर्माता, प्रसिद्ध कवि, कथाकार और समीक्षक माने जाते है ।

3.3 प्रारंभिक काव्य प्रकाशन :

केदारनाथ सिंह ने कविता लिखना तो विद्यार्थी जीवन में ही आरम्भ कर दिया था। लिखने के साथ मंच पर उनका पाठ करना भी उन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही आरम्भ कर दिया था। उनके आरंभिक दिनों के बहुत से गीत व रचनाओं को या तो उचित प्रकाशन के अभाव में प्रकाशित नहीं किया जा सका या वे लिख कर ही भूल गये । लेकिन व्यवस्थित रुप से प्रकाशित होने वाली इनकी तेईस कविताओं का संग्रह सबसे पहले अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित "तीसरे सप्तक" में हुआ । तीसरे सप्तक में प्रकाशित ये कविताएं कई तरह की हैं, लेकिन जिन कविताओं से केदारनाथ सिंह की पहचान बनी, वे लोक भूमि पर रचित कविताएं हैं । इन कविताओं में लोक जीवन का कोई न कोई गूढ़ प्रसंग होने के साथ-साथ इनकी लय व धुन भी लोक गीतों वाली है । उनकी इस संग्रह की कविता 'दुपहरिया' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

"झरने लगे नीम के पत्ते,बढ़ने लगी उदासी मन की,
उड़ने लगी बुझे खेतों से
झुर-झुर सरसों की रंगीनी,
धूसर धूप हुई, मन पर ज्यों
सुधियों की चादर अनबीनी

दिन के इस सुनसान पहर में रूक-सी गयी प्रगति
जीवन की।"[17]

इसी प्रकार की उनकी एक और रचना है, "फागुन का गीत"। इस रचना में भी लोक गीतों की धुन व भावों का सम्मेलन है:-

गीतों से भरे दिन फागुन के ये गाये जाने को जी करता ।
ये बांधे नहीं बंधते, बाहें-
रह जातीं खुली की खुली,
ये तोले नहीं तुलते, इस पर
ये आखें तुली की तुली
ये कोयल के बोल उड़ा करते, इन्हें थामें हिया रहता।"
एवं
"धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरूर।"[18]

जिस समय ये गीत प्रकाशित हुए उस समय छायावादी कविता का वातावरण था, जिसको ये गीत एक ताजे झोंके की तरह लगे। ये गीत लोकगीतों के नये संस्करण के रुप में प्रतीत हुए। इन गीतों में गाँव के जीवन की संवेदनशीलता वहां की प्रकृति की ताजगी एवं लोकगीतों का लचीला पन था।

'तीसरे सप्तक' में प्रकाशित कतिपय प्रेम से संबधित गीत हैं, लेकिन भाव भूमि ग्रामीण धरातल से जुड़ी लोक भावना से ही है। "विदा- गीत" नामक कविता में इनके इस भाव की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है:-

"रुको आँचल में तुम्हारे

यह समीरन बाँध दूँ, यह टूटता प्रन बाँध दूँ
एक जो इन उँगलियों में
कहीं उलझा रह गया है
फूल–सा वह काँपता क्षण बाँध दूँ।"[19]

इसी प्रकार 'नये दिन' के साथ कविता में भी कवि के प्रेम भाव प्रकट हुए हैं। इसी सप्तक की अन्य कविताओं में उनके चिंतन की भाव भूमि एवं बिम्बों और प्रतिकों का सजीव चित्रण मिलता है। "अनागत" कविता में कवि जो अभी घटा नहीं परन्तु घट सकता है अर्थात् भविष्य के बारे में चिंतित प्रतीत होता है! एक उदाहरण द्रष्टव्य है:–

"इस अनागत को करें क्या?
जो कि अक्सर बिना सोचे बिना जाने
सड़क पर चलते अचानक दीख जाताहै।
इस अनागत को करें क्या?
जो न आता है, न जाता है।"[20]

इसी संग्रह की एक और रचना है 'नई ईंट'। इस रचना में भी कवि की भविष्य के प्रति चिंता, कुछ करने की इच्छा एवं प्रगतिवादी विचार धारा खुल कर सामने आयी है। कवि भविष्य के बहुत सारे सपने संवारता है और अन्त में उन सपनों के बिखर जाने से डरता है। कवि कहता है:–

"नई ईट रखूँगा
नये चाँद जोडूँगा
नया घर उठाउँगा,
नई किरन रंग दूँगा

पर इससे क्या होगा।

जबकि साँझ उतरेगी

कुहरा छितरायेगा

ईंटो वाला यह व्यक्तित्त्व बिखर जायेगा।"[21]

यद्यपि कवि भविष्य के प्रति संदिग्ध है, लेकिन उसका यह संदिग्ध होना ही उसे प्रगतिशील कवियों से अलग करता है। जो भविष्य अभी वर्तमान नहीं बना, उसके प्रति संदिग्ध होना स्वभाविक है। यह संदेह मानव-भविष्य में केदारनाथ सिंह की निष्ठा को कम नहीं करता, बल्कि उसे अबोध होने से बचाता है। उनकी एक कविता है 'नये वर्ष के प्रति'। इसमें कवि ने भविष्य में अपनी निष्ठा का प्रमाण भी दिया है कवि कहता है:-

"आज की यह लहर

आज की यह हवा

आज के ये फूल

ये झरती पंखुरियां,

'आज' - इस खामोश मिटते शब्द की

सारी उबलती अर्थक्ता

राह में लेकर खड़ा हूँ

आओंगे। कब आओगे ।" [22]

'दिग्विजय का अश्व' नामक कविता में भी कवि भविष्य के प्रति आशावान दिखाई पड़ता है। वह 'दिग्विजय के अश्व' को जानता है। उसकी ग्रीवा पर बंधे पत्र में जो लिखा है उससे भी कवि परिचित है। कवि कहता है:-

"हॉ, यहीं से-

इसी खिड़की से उसे मैंने पुकारा था:

आह ! ठहरो, दिग्विजय के अश्व,

मैं पहचानता हूँ।

जानता हूँ, क्या लिखा है उस सुनहले पत्र में जो

तुम्हारी ग्रीवा पर बंधा है।" [23]

केदारनाथ सिंह की आरंभिक कविताएं भी भविष्य के प्रति काफी हद तक आशावादी रूख लिए हैं। यद्यपि आज के पटल पर उनका कोई अस्तित्व नहीं है, परन्तु भविष्य में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी, ऐसी कवि की आस्था है, जिसे उन्होंने 'निराकार की पुकार' कविता स्वीकार किया है :-

"कल उगूँगा मैं।

आज तो कुछ भी नहीं हूँ-

धूल, पत्ती, फूल, चिड़िया, घास, फुनगी,

आह,कुछ भी तो नहीं हूँ।

कल उगूँगा मैं।" [24]

एक दूसरा भाव जो इन कविताओं में परिलक्षित होता है वह है, केदारनाथ सिंह की अपनी कल्पना शक्ति, जिसके सहारे वे पूरी कविता को एक बड़े बिंब में बदल देते हैं। ऐसी सर्जनशीलता निश्चय ही पूर्ववर्ती प्रगतिशील कवियों में नहीं थी। 'तीसरा सप्तक' का उनका वक्तव्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने बिम्ब-विधान पर बहुत जोर दिया है। उनका कथन हैं :-

"कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब-विधान पर। बिम्ब-विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय वस्तु से होता है, उतना ही उसके रुप से भी। विषय को मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रुप को संक्षिप्त और दीप्त।" [25]

केदारनाथ सिंह स्पष्टतया यह मानते हैं कि एक

आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की पहचान उसके द्वारा रचित बिम्बों से की जा सकती है। बिम्ब के निर्माण के लिए उन्होंने प्रकृति, मनोविज्ञान, धर्म, लोक साहित्य, तथा इतिहास आदि के क्षेत्रों को अनुकूल माना है। 'अनागत', 'नये वर्ष के प्रति', 'दुपहिया', 'फागुन का गीत', 'धानों का गीत', 'प्रभात', 'शरद प्रात', 'शामें बेचती हैं', 'विदाई गीत', 'कमरे का दानव' आदि कविताओं में उपरोक्त सभी बिम्ब देखने को मिलते हैं। यद्यपि 'तीसरे सप्तक' की कविताएं ग्रामीण धरातल पर जन्मी है, परन्तु उनमें उच्च कोटी के बिम्ब धर्मिता देखने को मिलती हैं। इन कविताओं में कवि भविष्य के प्रति आस्था तो रखता है, परन्तु कहीं-न-कहीं उसमें एक दबी हुई निराशा भी प्रकट होती है। यह संदिग्धता ही कवि को प्रगतिशील कवियों से अलग करती है।

अभी बिलकुल अभी

केदारनाथ सिंह के बहुत सारे गीत एवं कविताएं यद्यपि 'तीसरा सप्तक' में प्रकाशित हो चुके थे, परन्तु 'अभी बिलकुल अभी' इनका अपना पहला काव्य संग्रह था जो एकांकी रुप से प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन के ठीक एक वर्ष बाद सन् 1960 में इलाहाबाद से हुआ। इस संग्रह में कुल तैंतीस कविताएं हैं, जिनमें से आठ 'तीसरा सप्तक' वाली ही हैं। ये कविताएं केदार की आरंभिक कविताओं से भिन्न प्रतीत होती है। यद्यपि ये कविताएं भी गाँव की भाव-भूमि पर टिकी है, परन्तु इनमें स्वच्छंदता कुछ कम हो गयी है। एक और भिन्नता जो इन कविताओं में प्रतीत होती है, वह है, कवि की काव्य यात्रा जो गाँव से शहर की तरफ बढ़ती दिखाई देती है। गाँव, यद्यपि कवि

की चेतना में घुल-मिल गया है लेकिन ध्यान शहरी परिवेश पर है।

'अभी बिलकुल अभी' संग्रह की कविताएं हर्ष एवं उल्लासमय कविताएं है। इसका एक मुख्य कारण यह रहा होगा कि सन् १९६० के दशक का समय आजादी प्राप्ति के बाद का समय था। वह आजादी जो वर्षों की गुलामी के बाद पायी थी। उस समय देश एवं समाज में प्रचलित कुप्रथाएं समाप्ति के कगार पर थीं। देश विकास के पथ पर अग्रसर हो चला था। विश्व में भारत एक नई शक्ति के साथ उभर रहा था। इन सब का प्रभाव समकालीन साहित्य पर भी निश्चित रुप से पड़ा। वही प्रभाव केदारनाथ सिंह के इस प्रथम कविता संग्रह की कविताओं में भी दीख पड़ता है।

"अभी बिलकुल अभी" का दूसरा संस्करण सन् 1980 में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में तीन नई कविताएं 'एक स्वप्न खण्ड', 'एक छोटा सा मौन', तथा 'चुनाव की पूर्व संध्या पर' जोड़ दी गई है, जो क्रमशः सन् 1957,1962,तथा 1967 में लिखी गई थीं।

इस संग्रह में स्वच्छन्दवादिता, हर्षोउल्लास के अतिरिक्त जो मुख्य प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं वे हैं : प्रकृति सौन्दर्य एवं परिवेशगत यथार्थ। इस संग्रह की प्रकृति सौन्दर्य से ओतप्रोत कविताएं इस प्रकार है:-

'पतझड़ की एक शाम', 'सूर्यास्त', 'मार्च की सुबह' 'बादल ओ', 'चाँदनी' तथा 'पपीड़ा-दिन'। इन कविताओं में जहां एक ओर स्वच्छन्द भाव व्यक्त हुए हैं, वहीं दूसरी ओर सौंदर्य का पुट प्रकट हुआ है। इन रचनाओं में कवि के दोनों भावों का मिश्रण है। उदाहरणार्थ, पतझड़ की शाम कविता में कवि को शान्त वातावरण में हर पल समुद्री दस्तक सुनाई पड़ती है :-

"सभी ओर से
अन्तरतम के किसी कोण पर
झुका हुआ - सा
सुनता प्रतिपल
एक समुद्री दस्तक
मन की पर्त-पर्त पर
धीमें-धीमें------ ।" [26]

एक दूसरी रचना 'पपीहा-दिन' में प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन कवि की प्रकृति के प्रति चाहत को प्रकट करता है :-

"हर डगर बरबस
महँक उठेगी ।
धूल, पत्तों, अंघड़ों में
ये तुम्हें भटकाएंगें
दौड़ायेंगे
छिप जाएँगे
इनका ठिकाना क्या?
यहाँ बैठे,
वहाँ गया
उधर जाकर छा गए ।
ये पपीहा-दिन
आ गए ।" [27]

'सूर्यास्त', 'मार्च की एक सुबह', एवं 'बादल ओ' में भी

प्रकृति सौन्दर्य के सुन्दर चित्र मिलते हैं।

परिवेशगत यथार्थ के अन्तर्गत 'दीप-दान', 'दिग्विजय का अश्व', 'रचना की आधी रात', 'कमरे का दानव', 'खोल दूँ आज का दिन', 'नये वर्ष के प्रति' तथा 'चुनाव की पूर्व संध्या' पर आदि कविताएँ आती है।

'कमरे का दानव' कविता में परिवेशगत यथार्थ का हु-ब-हू चित्रण किया गया है। यह कविता कवि की पत्नी की असामयिक मृत्यु के बाद लिखी गई थी। इसमें कवि के अकेलेपन के सम्पूर्ण परिवेशगत एहसास को उजागर किया गया है :-

"लेकिन जब आता हूँ
पाता हूँ उसी तरह
मेरी प्रतीक्षा में द्वार-पर खड़ा है वह
कमरे का दानव
अपलक-उदास।
मेरे हाथों, से संकल्प छूट जाता है
डरता नहीं हूँ
मगर उसे जब देखता हूँ
गुमसुम, अपलक, उदास
देखा नहीं जाता है।" [27]

केदारनाथ सिंह कुछ कविताएं उनके शंकाग्रस्त होने की ओर इशारा करतीं है उनमें मुख्य है 'शंका पुत्र'। इसके बारे में नन्दकिशोर नवल लिखते है :-

"कुछ लोग इस संग्रह की 'शंका-पुत्र' और 'हम जो सोचते है', शीर्षक कविताओं का खास तौर से उल्लेख करना चाहेंगे,

क्योंकि उनकी दृष्टि में इन कविताओं में कवि ने अपने शंकाग्रस्त और निराश चित्त की अभिव्यक्ति की है। उन्हें इन कविताओं की अंतर्वस्तु 'कमरे का दानव' और 'शामें बेच दी है', कविताओं की अंतर्वस्तु से मेल खाती प्रतीत होगी। 'शंका पुत्र' की अंतर्वस्तु नई कविता का प्रसिद्ध संशय नहीं, जिसे उसमें मूल्य की तरह स्थापित करनेकी चेष्टा की जा रही थी, बल्कि यह है कि कवि उसके मन में जो शंका उत्पन्न होती है, उसके लिए अपने को ही दोष देता है, अस्तित्व वादियों की तरह मानव-समाज या मानव-नियति को नहीं। ये पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

"आह,
शंका पुत्र
ठहरो,
तुम न जानोगे,
नम सुबह की यह पिघलती भाप
मैं ही हूँ?
एक अनदेखे कवच-सा
तुम्हें जो घेरे हुए है-
शाप
मैं ही हूँ।" [28]

केदारनाथ सिंह कुछ कविताओं में प्रतीक एवं बिम्ब भी उभर कर सामने आये है। इस संग्रह में प्रतीकात्मकता का जिक्र करती डा. गीता अस्थाना लिखती है :-

"नए वर्ष के प्रति में भी प्रतीक बिम्ब है। 'चुनाव की पूर्व

सन्ध्या पर' आधुनिक परिवेश अच्छी तरह से उभरता है। सामान्यजन का शोषण और उपेक्षा इस कविता की अन्तिम पंक्तियों में व्यक्त होती है:-

'शहर को
भूख या जहरीली गैस से अब भी बचाया जा सकता है
अगर सिर्फ यह पता चल जाय
कि सड़क पर जो पहला आदमी मिलेगा
उसका नाम क्या है ।
या फिर अगले बजट में
कितने विशेषण
और कितने सर्वनाम होंगे ।' [29]

इस तरह से कहा जा सकता है कि अभी बिलकुल अभी कविता संग्रह में कवि प्रकृति सौन्दर्य एवं हर्षोल्लास से आरम्भ कर, परिवेशगत यथार्थ से ऊपर उठ कर समसामयिक प्रगतिशील चिन्तन की तरफ उन्मुख होता है ।

'जमीन पक रही है'

केदारनाथ सिंह का दूसरा काव्य संग्रह 'जमीन पक रही है' । यह पहले कविता संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' के लगभग बीस वर्षों के बाद सन् 1980 में प्रकाशित हुआ । इसके कारणों का उल्लेख मैं आगे आने वाले अध्याय में करुँगा । संक्षिप्त में इतना कहा जा सकता है कि केदारनाथ सिंह इस समय में भी रचना कार्य में निरत तो रहे परन्तु कतिपय कारणों से कोई नया काव्य संग्रह प्रकाशित नहीं कर सके जिसका कारण पारिवारिक संकट एवं निजी मजबूरियाँ ही थीं ।

एक मुख्य बात जो केदारनाथ सिंह के बारे में निश्चित तौर पर कही जा सकती है, वह है, कि उन्होंने नाम के लिए कभी नहीं लिखा। लेखन की क्रिया स्वभावत: बिना किसी दबाव के सम्पन्न होती रही है। इस लम्बे अन्तराल के विषय में कई चिंतकों के भिन्न मत हो सकते हैं। उदाहरणार्थ नन्द किशोर नवल जी का मत है कि:-

"केदारनाथ सिंह का दूसरा कविता संग्रह 'जमीन पक रही है' पहले कविता संग्रह के दो दशकों बाद 1980 में प्रकाशित हुआ। लेकिन इससे यह गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि इस दीर्घ अवधि में वे सृजन की तरफ से उदासीन रहे। ऐसा बिलकुल नहीं है, क्योंकि दूसरे सर्जन की कविताएं प्रमाण हैं कि वे न केवल निरंतर सर्जन-रत रहे, बल्कि अपने सर्जन को प्रौढ़ता के नए धरातल पर पहुँचाते रहे। कुछ व्यक्तिगत कारणों से सृजन की गति अवश्य मंद रही, लेकिन निरंतरता उसमें बनी रही, जिससे उनका दूसरे चरण का काव्य विकास हो सका।"[30]

इस संग्रह की महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें कवि की रचनाशीलता बदली है। स्वच्छन्दतावाद, हर्षोउल्लास, एवं सौन्दर्य-चेतना की जगह जीवनानुभवों ने ले ली है। ज्यादातर कविताओं में व्यवहारिक एवं रोज-मर्रा की जिन्दगी में काम आने वाले विषय हैं, जिनमें कवि के सीधे-सीधे या घुमा-फिरा कर जीवन के अनुभवों की बात कही है। कवि की इस काव्य चेतना के बारे में डा.गीता अस्थाना लिखती है :-

"इस संग्रह में केदारनाथ सिंह की चेतना गहन मानवीय अर्थ की तलाश करती है। इसके संबंध में कहा गया है कि यह संग्रह ऐन्द्रियता को मुख्य रुप से अपना कथ्य मानता है। जो जीवन के

अनुभवों के माध्यम से व्यक्त हुए है, जैसे – कवि सूर्य की बात करता है, तो एक बच्चे के जगने, चाय के लिए दूध खरीदने के लिए नुक्कड़ तक जाने और पतीले गर्म करने की बात करता है :-

"एक पतीली गरम होने लगती है
एक चेहरा लाल होना शुरु होता है
एक खूँखार चमक
तम्बाकू के खेतों से उठती है
और आदमी के खून में टहलने लगती है ।" [31]

इस कविता-संग्रह में पैंतालीस कविताएं है। ये सभी कविताएँ समान रुप से महत्वपूर्ण तो नहीं है, परन्तु प्रौढ़ रचनाएं हैं। इन रचनाओं में काल्पनिकता का समावेश है। इस संग्रह की कविताओं के बारे में विष्णु खरे लिखते हैं :-

"यह नहीं है कि मैंने 'जमीन पक रही है' की सारी कविताएं नहीं पढ़ी हैं – सच तो यह है कि इस संग्रह के एक-एक शब्द को कई बार बढ़ा है किंतु यह कोई शर्त नहीं है कि यदि कोई संकलन आपको महत्वपूर्ण लगा है तो उसकी सारी कविताएं आपको महत्वपूर्ण या समान रुप से उल्लेखनीय लगें। किसी संग्रह की सारी कविताएं पूरी-की-पूरी खराब लगें यह तो संभव है- हिन्दी के ज्यादातर संग्रहों की यही हालत है – किंतु यदि किसी संग्रह में अच्छी कविताएँ है तो स्पष्ट है कि सारी अच्छी नहीं होंगी या समान रुप से अच्छी नहीं होंगी।" [32]

इस संग्रह की कविताएं यद्यपि कोई बड़े दावे नहीं करती है, उनमें निराशा, मोहभंग की अवस्था एवं संसार की अनिश्चितता

प्रतीत होती है। इन कविताओं में कवि ने यथार्थ के साक्षात्कार को स्वीकार नहीं किया है। कवि कहता है :-

"मेरी मुश्किल यह है
कि मैं चीज़ों को जानता हूँ
जानना
चीजों के खिलाफ
आदमी की मांसपेशियों का लगातार हमला है।" [33]

डॉ. गीता अस्थाना के अनुसार इस संकलन की समस्त कविताओं में एन्द्रिय प्रतीतियाँ, व्यावहारिक जीवन के अनुभवों तथा आज के जीवन की यथार्थताएं प्रधान हैं। आज के जीवन की वे स्थितियाँ जो भयावह है, हमें अमानवीयता की ओर भी ले जा रही है। इन कविताओं में आधुनिक जीवन प्रधान है। समूची कविताओं का स्तर एक ही है। विषय की दृष्टि से हम उन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते है :-

(1) वस्तुबोध और (2) क्रिया बोध।

वस्तु बोध वाली कविताओं में 'सूर्य', 'जमीन', 'दुश्मन', 'रोटी', 'टमाटर बेचने वाली बुढ़िया', 'बैल', 'पेड़', 'लड़के', 'दोपहर', 'आधीरात', 'नंगी पीठ', 'जाड़ों के शुरु में आलू', 'सूर्यास्त', 'दीवार', 'मुक्ति', 'बारिश', 'हाथ', 'माझी का पुल' आदि है। क्रियाबोध वाली कविताओं में 'आवाज' 'जब वर्षा शुरू होती है', 'भीड़ के विरुद्ध शब्द', 'धूप में घोड़े पर बहस', 'बीमारी के बाद' आदि हैं।

'जमीन' कविता का अंश निम्नलिखित है :-

"वह उस औरत के पास जायेगा
और कहेगा सब्जी अगर नहीं पकती

तो कोई बात नहीं
जमीन पक रही है
उसके सामने घोड़े की पीठ की तरह
फैली हुई थी जमीन
जमीन सिर्फ जमीन की तरह लग रही थी ।
सिर्फ जमीन थी
और जमीन का पकना था
और बस्ती में गोश्त पक रहा हो ।" [34]

यहाँ जमीन का पकना एक प्रौढ़ता की ओर इशारा करता है, इसमें एक व्यंगार्थ भी है, क्योंकि सब्जी नहीं पकती लेकिन जमीन पक रही है ।

डा.सन्तोष कुमार तिवारी का केदारनाथ सिंह के इस संग्रह के बारे में मत इस प्रकार है :

"केदारनाथ सिंह जी हमें गलत व्यवस्था के उस छद्म से भी आगाह करते हैं जिसमें 'रोटी' पूंजीवादी शोषक के कब्जे में होती है । गोल खूबसूरत, सुर्ख और पकी हुई रोटी आदमी की नींद और विचारों को उत्तेजित करती है । रोटी के लिए आग जरुरी है, भीतरी और बाहरी आग – "मैं सिर्फ आपको आमंत्रित करूँगा । कि आप आयें और मेरे साथ सीधे उस आग तक चलें । उस चूल्हे तक जहाँ वह पक रही है । एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ । समूची आग की गंध में बदलती हुई । दुनिया की सबसे आश्चर्य जनक चीज । वह पक रही है ।" [35]

केदारनाथ सिंह की इस संग्रह की कविताएँ, 'सूर्य', 'जमीन', 'रोटी', 'टमाटर बेचने वाली बुढ़िया' आदि परिपक्वता, उर्वरता एवं संभावना के साथ–साथ सार्थकता एवं यथार्थमयता की

बेजोड़ मिशाल है।

'यहाँ से देखो'

'यहाँ से देखो' केदारनाथ सिंह का तीसरा कविता संग्रह है, जिसके पहले संस्करण में उन्तालीस कविताएं हैं, और इसका प्रकाशन सन् 1983 में हुआ। एक वर्ष के पश्चात् जब इसका दूसरा संग्रह प्रकाशित हुआ तो उसमें 'संयोग', 'झरबेर', एवं 'बुद्ध के बारे में सोचना' ये तीन कविताएं और जोड़ दी गयी। दूसरे कविता-संग्रह के अनुरुप इस संग्रह की कविताएं भी कवि की अपनी लोक भूमि के यथार्थ अनुभवों को संवेदनात्मक रुप में चित्रित करती हैं। ये कविताएं बिल्कुल सीधे एवं साधारण ढंग से लिखी गई हैं।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी इस संग्रह की कविताओं के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं :-

"इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए एक दूसरा ही अनुभव हो रहा है- कविता की सहजशक्ति का अनुभव। कबीर के प्रसंग में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि सीधी लकीर खींचना ज्यादा मुश्किल काम है। केदारनाथ सिंह ने इस मुश्किल को चुनौती के रुप में लिया है और उसकी ताजा कविताएं खास तौर से इस अर्थ में पहले की कविताओं से अलग पहचान बनाने वाली कविताएं हैं। बेहद सीधी सरल-सी दिखने वाली कविताएं लेकिन अपनी पूरी अर्थ-शक्ति से लैस। यह स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं है कि जिस सम्प्रेषण के संकट की चर्चा नयी कविता के जन्म के साथ ही शुरु हुई थी, उस संकट के रू-ब-रू आज भी हमारे समय की कविता पूरी तरह नहीं हो पाई है। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं को देखकर ऐसा लगता है कि कवि ने इस संकट को

महसूस किया है । और उसकी इसी चिन्ता के चलते उसकी भाषा, उसकी बिम्ब–योजना, उसका लहना सब कुछ बहुत आत्मीय और सहज लगता है । कविता को पाठक से ज्यादा नजदीक लाने के लिए इस संग्रह में कवि ने आज के कवि के लिए पुराने पड़ गए छन्दों और तुकों में भी बात–चीत की है ।"[36]

'तिवारी जी' के इस वक्तव्य से यह साफ जाहिर होता है कि इस संग्रह की कविताएं दुरुह न होकर अर्थ बोध की दृष्टि से सरल हैं । बानगी के तौर पर एक उदाहरण द्रष्टव्य है :–

"पानी में घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
वे पूरे विश्वास से देखते है पानी को
और एक दिन
बिना किसी सूचना के
खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर
घर असबाब लादकर
चल देते हैं कहीं और ।"[37]

नन्द किशोर नवल इस संग्रह की कविताओं के बारे में लिखते है:–

"यहाँ से देखो' की कविताओं के साधारण मनुष्य के पार्श्व में ही एक और मनुष्य खड़ा है । वह है आज का मनुष्य अकेला और निर्वासित । 'जानवर' शीर्षक कविता में केदारनाथ सिंह ने उसे जानवरों से यह शिक्षा लेने को कहा है कि अपने अकेलेपन से कैसे छुटकारा पाना चाहिए । वे उससे कहते हैं :–

"तुम क्या करते हो
अपने अकेलेपन का?

जानवर उससे खेलता है

देखो देखो कितनी शान से

अपने अकेलेपन को चीरता–फाड़ता

चला जा रहा है जानवर ।" [38]

इसकी व्यंजना यह है कि सभ्यता के विकास ने यहाँ मनुष्य को अकेला बनाया है, वहाँ उससे बाहर रहने वाले जानवर अकेलेपन से मुक्त है ।

पूँजीवादी भौतिक व्यवस्था के कारण मनुष्य उपभोक्तावादी वस्तुओं को संग्रह करने में इस प्रकार जुट गया है कि उसे अपने पराए का ध्यान ही नहीं रह गया है ।

इसी भाव को शब्दों में बांधा है केदारनाथ सिंह ने उन कविताओं में वस्तुओं पर आधारित है, जैसे 'टूटा हुआ ट्रक', 'नक्शा', 'सीटी', 'छाता', 'झरबेर', 'सुई और तागे के बीच में' आदि । 'टूटा हुआ ट्रक' कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है :–

"शाम हो रही है

टूटा हुआ ट्रक उसी तरह खड़ा है

और मुझे घूर रहा है

मैं सोचता हूँ

अगर इस समय वो वहाँ न होता

तो मेरे लिए कितना मुश्किल था पहचानना

कि यह मेरा शहर है

और ये मेरे लोग

और वो वो

मेरा घर ।" [39]

कवि आशावान प्रतीत होता है जब वह टूटे हुए ट्रक के

धरधरा कर चलने की कामना करता है । दूसरे ही क्षण कवि की विचारधारा बदली है, वह सोचता है कि यह ट्रक जो अपरिवर्तन का प्रतीक बना यहाँ खड़ा है, अगर चला जाता तो उसको कितना कठिन होता अपने शहर व उसके लोगों को पहचानना । एक और कविता 'नक्शा' जो कवि के इसी भाव को प्रदर्शित करता है :

"फिर नक्शा जैसे कोई किला हो
मैं उसमें घुसा
एक किसान का बेटा मैं
सुबह से शाम तक
भटकता रहा नक्शे में ।
अपनी दीवार पर टँगे हुए
दुनिया के उस महान नक्शे में
मुझे नहीं मिला
नहीं मिला अपना घर ।" [40]

इस संग्रह की कुछ कविताएं कवि के यथार्थ के अनुभवों की भूमि पर टिकी है । जैसे 'एक ठेठ देहाती कार्यकर्ता के प्रति', 'दो मिनट का मौन', 'कीड़े की मृत्यु', 'शहर में रात', 'कुछ सवाल अपने आप से', एवं 'सन् 47' को याद करते हुए आदि ।

'एक ठेठ देहाती कार्यकर्ता के प्रति' कविता में कवि उस देहाती कार्यकर्ता को पसंद नहीं करता जो गलत-सलत भाषा का उपयोग करता है तथा कवि के अनुभवों के विपरीत थाने की बात करता है । कवि को थाने से चिड़ है और उसकी धज्जियाँ उड़ा देना चाहता है:-

"उसकी साईकिल में हवा
हमेशा कम होती है

हमेशा उसकी बगल में होता है
एक और कोई चेहरा
जिसे थाने बुलाया गया है
मुझे थाने से चिढ़ है
मैं थाने की धज्जियाँ उड़ाता हूँ
मैं उस तरफ इशारा करता हूँ
जिधर थाना नहीं है ।" [41]

इसी प्रकार दो 'मिनट का मौन' 'जन-हित का काम' 'किड़े की मृत्यु' आदि कविताओं में भी कवि ने अपने अनुभवों को ही चित्रित किया है ।

इसके अतिरिक्त कतिपय कविताएं सामाजिक वातावरण की झांकी प्रस्तुत करती है । जैसे : 'कस्बे की धूल', 'शीत लहरी में एक बूढ़े की प्रार्थना', 'बसन्त', 'सुबह हो रही है', आदि । 'कस्बे की धूल' कविता से एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

"मै जानता हूँ क्योंकि यह धूल
इस क़स्बे की
और मेरे पूरे देश की
सबसे ज़िन्दा और खूबसूरत चीज़ है
सबसे बेचैन / सबसे सक्रिय
पृथ्वी की सबसे ताज़ा
और प्राचीनतम धूल
जो यहाँ दिन-भर
आदमी के साथ-साथ
धुनती है रूई
बनाती है गारा / गरमाती है पानी ।" [42]

इसी प्रकार 'आज की धूप में' 'शीत लहरी में एक बूढ़े की प्रार्थना', आदि कविताएं भी कवि के उन अनुभवों की पहचान कराती है जो कवि गाँव की धूल से उठाता है और अपने साथ शहर ले आता है । तथा उन्हें स्वत: साधारण रुप में संप्रेषित भी करता है । साधारण विचारों के कारण कवि की आस्थावादी दृष्टि अधिक सार्थक हुई है ।

'अकाल में सारस'

'अकाल में सारस' केदारनाथ सिंह का चौथा काव्य संग्रह है, जिसकी अधिकतर कविताएं 1983 से 1987 के बीच लिखी गई है । संग्रह में कुल 64 कविताएं है, जिन्हें सन् 1989 के 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया है। इन कविताओं की रचनाभूमि में कोई खास अन्तर तो नहीं आया है लेकिन इनमें कवि के परिपक्व विचारों की गूंज स्पष्ट दिखाई देती है । साथ ही कहीं-कहीं पर कवि का विश्वास हिला है तो दूसरे ही क्षण उनमें आशा की किरण भी फूटी है । संग्रह की कविताएं विभिन्न भावभूमियों को आधार बनाकर लिखी गई है जिसमें कुछ कवि और कविता, प्रकृति एवं भाषा से संबंधित है । एक कविता मातृभाषा पर लिखी गई हैं । संग्रह के शीर्षक को ध्यान में रख कर इन्होंने इसमें अकाल के विषय में तीन कविताएं लिखी है :-

'अकाल में सारस', 'अकाल में दूब', एवं 'एक और अकाल' ।

संग्रह की चर्चा अनेक विद्धानों एवं रचनाकारों ने की है । इस संबंध में नन्द किशोर नवल का विचार इस प्रकार है :-

"अकाल में सारस" की कविताओं में भी साधारण मनुष्य

मौजूद है । 'अँगूठे का निशान' साधारण मनुष्य का ही है, जो सारे हस्ताक्षरों को अंगूठा दिखाते हुए एक सोख्ते में गायब हो जाता है, जैसा कि गुमनाम साधारण मनुष्य होता है । उपलों को बचाने की कोशिश में बौछारों में धीरे-धीरे घुलने और गलने वाली स्त्री भी 'साधारण मनुष्य' ही है । [43]

'अँगूठे का निशान' कविता एक उदाहरण इस प्रकार है:-

"किसने/आखिर किसने बनाये/ वर्णमाला के अक्षर
मैंने....मैंने-/ सारे हस्ताक्षरों को/ अँगूठा दिखाते हुए
धीरे से बोला / एक अंगूठे का निशान
और एक सोख्ते में/ गायब हो गया" [44]

इस संग्रह के बारे में डा. गीता अस्थाना लिखती है :-

"कवि ने अपनी ओर से अपनी कविताओं के विषय में कुछ भी नहीं कहा है । वह अपने समय, परिवेश, मनुष्य के संघर्ष और प्रकृति में विद्यमान जीवन से सीधे-सीधे जुड़ता है । इस संग्रह में कवि की संवेदन-शीलता प्रधान है । वह अपने जनपदीय अंचल की परती भूमि, खेत, खलिहान, गली, चौराहे, वे हरी, चौखट, नदी, रेत, दूब और सारस सबको कविताओं में जीवन्त कर देता है । इस संग्रह की प्रतीकात्मकता की ओर जाया जाय, तो प्रतीत होगा कि कवि अपने युग की त्रासदी में बेहद बड़ी जीवन शान्ति को पुन: उपलब्ध करना चाहता है ।" [45]

'अकाल में सारस' संग्रह के बारे में 'भगवान सिंह' अपने मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं :-

"इस संग्रह के साथ केदारनाथ सिंह के रचनात्मक आरेख में एक झुकाव आता है और इसके साथ यह सवाल पैदा

होता है कि क्या 'यहाँ से देखो' में कवि में सचमुच किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता उभर रही थी या वहाँ वह मात्र एक-दूसरे स्तर पर प्रयोग कर रहा था? साथ ही यह शंका भी होती है कि क्या केदारनाथ सिंह अपनी अवस्था के कारण चुक चले है । इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'यहाँ से देखो' में भी कवि का जनवादी कारण संदिग्ध है, पर उसकी दृष्टि में एक गुणात्मक परिवर्तन आ रहा था इस विषय में सन्देह का कोई कारण नहीं दीखता ।" [46]

'अकाल में सारस' संग्रह की कविताओं को डा.रेवती रमण ने भी परखा । वे संग्रह एवं कवि दोनों के बारे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करती है :-

"केदारनाथ सिंह के नए संकलन 'अकाल में सारस' की कविताओं मे हमारे समय की बची हुई जिंदगी के जगह-जगह आकर्षण दृश्यालेख हैं । काफी कुछ टूट कर बिखर जाने के बाद भी कवि इतना कुछ बचा हुआ देख लेता है जिससे उसका कविजनोचित आग्रह तुष्ट हो सके । केदारनाथ सिंह शुरू से ही भारतीय कविता की अवधारणा के पोषक रहे हैं और उनकी कविता का वास्तविक जमीन से सीधा सरोकार रहा है । वे एक साथ ही गाँव के भी कवि है और शहर के भी । अनुभवों के दोनों छोर कई बार एक साथ ही और एक ही समय में उनकी कविता में सक्रिय दिखाई देते हैं । लेकिन अकाल में सारस की ज्यादातर कविताएं ग्रामीण संवेदना का प्रतिनिधित्व करती है । इन कविताओं में कवि के लौटने का भाव स्पष्ट है, जातीय जीवन की जड़ों को टटोलने के प्रयत्न में केदारनाथ सिंह समकालीन कविता का विचारों के स्तर पर काफी सुलझा हुआ रुप अर्जित करते है ।" [47]

कवि की इस संग्रह की कविताएं जहाँ सबकुछ नष्ट होने की ओर संकेत करती है, वहीं उम्मीद की किरण भी उनमें झलकती है। 'उम्मीद नहीं छोड़ती' में कवि समय खराब होने के बावजूद भी उम्मीद नहीं छोड़ता:–

"पर मौसम
चाहे जितना खराब हो
उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएं
वे किसी अदृश्य खिड़की से
चुपचाप देखती रहती हैं
हर आते–जाते को
और बुदबुदाती हैं
धन्यवाद! धन्यवाद!" [48]

इस संदर्भ की एक कविता 'मातृ भाषा' पर लिखी गई है। जिसमें कवि अपनी मातृभाषा को अपनाना चाहता है, वह उसकी तह में पहुँचने की कामना करता है और कहता है :

ओ मेरी भाषा
मैं लौटता हूँ तुम में
जब चुप रहते–रहते
अकड़ जाती है मेरी जीभ
दुखने लगती है
मेरी आत्मा । [49]

प्राचीन संस्कृति को जीवन करती कुछ कविताएं जो इस संग्रह में है उनमें मुख्य है : 'ओ मेरी उदास पृथ्वी', 'बालू का स्पर्श', व 'एक मुकुट की तरह' आदि। संवेदनाओं से भरी जो कविता इस संग्रह में है वह हैं 'प्रिय पाठक'। इस कविता में कवि बड़ी

आत्मीयता से कहता है कि मैं आपसे मिलने आया था, आप के न मिलने के कारण, वापस जा रहा हूँ। कवि की सबसे बड़ी दुविधा यह है कि वह चाह कर भी उत्तर मिलने की चाह प्रकट नहीं करता क्योंकि कवि का तो पता कभी स्थिर होता ही नहीं। वह कहता है :-

"कैसे कहूँ
उत्तर दीजियेगा
हमारे समय में
कोई एक पता होता नहीं कवि का
वह जितनी बार साँस लेता है
उतनी बार
बदल जाता है उसका पता
इसलिए डाक घर का संकट
बढ़ाना नहीं चाहता।" [50]

अकाल के उपर लिखी गई तीनों कविताओं में उच्च कोटि की बिम्ब योजना है। 'अकाल में सारस' कविता में तो आरम्भ ही प्रतीकात्मकता से होता है। कवि कहता है :

"तीन बजे दिन में
आ गये वे
जब वे आये
किसी ने सोचा तक नहीं था
कि ऐसे भी आ सकते हैं सारस।" [51]

उपरोक्त सभी उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि केदारनाथ सिंह ग्रामीण भावबोध से अपनी काव्य यात्रा का आरंभ करके अकाल में सारस तक पहुँचते-पहुँचते यथार्थ जीवन से नाता कायम कर लेते है। इनकी रचनाएं अपने

समकालीनों से अलग दिखाई देती है क्योंकि उन्होंने सीधी-साधी ग्रामीण परिवेश की भाषा को, अपनी अद्वितीय बिम्ब योजना शक्ति से, लोक जीवन का विषय बना दिया । केदारनाथ सिंह का यह गुण उनको पूरे काव्य जीवन को एक परिवर्तन के रुप में प्रस्तुत करता है ।

"बाघ"

'बाघ' केदारनाथ सिंह का सबसे नया कविता संग्रह है । जिसे हम बहुचर्चित लम्बी कविता कह सकते हैं । इसका प्रथम संस्करण 1996 में प्रकाशित हुआ । इस कविता के लेखन का समय तो ठीक पता नहीं है । स्वयं केदारनाथ सिंह इसके लेखन के समय को ठीक-ठीक याद नहीं कर पाते और वे कहते हैं कि :

" 'बाघ' का लिखना कब शुरू हुआ-ठीक ठाक याद नहीं । याद है केवल इतना कि नवें दशक के शुरू में कभी हंगरी भाषा के कवि मानोश पिलिंस्की की एक कविता पढ़ी थी और उस कविता में अभिव्यक्ति की जो नई संभावना दिखी थी, उसने मेरे मन में पंचतंत्र को फिर से पढ़ने की इच्छा पैदा कर दी थी । उस कविता में जो एक पशुलोक था- बल्कि एक भोली-भाली पशुगाथा मुझे लगा कि पंचतंत्र में उसका एक बहुत पुराना और अधिक आत्मीय रुप पहले से मौजूद है । पंचतंत्र की संरचना की अपनी कुछ ऐसी खूबियाँ है, जो एतह पर जितनी सरल दिखती हैं, वस्तुतः वे उतनी सरल है नहीं । हर कालजयी कृति की तरह पंचतंत्र का ढाँचा भी अपनी आपात सरलता में अनुकरणीय है । पर मुझे लगा कि पंचतंत्र एक ऐसी कृति है जो एक समकालीन रचनाकार के लिए जितनी चाहे बड़ी चुनौती हो, पर जरा-सा रुककर सोचने पर वह

सृजनात्मक संभावना की बहुत-सी नई और लगभग अनुद्घटित पर्तें खोलती-सी जान पड़ेगी। मुझे यह भी लगा कि एक बार यदि उस ढाँचे की कार्यकारण-बद्ध श्रृंखला को थोड़ा ढीला कर दिया जाय तो इस संभावना को कई गुना और बढ़ाया जा सकता है। वस्तुतः सृजनात्मक सत्य के इसी नए साक्षात्कार से 'बाघ' का जन्म हुआ था-लगभग आड़ी-तिरछी रेखाओं के बीच घिरे एक शिशु की क्रीड़ा की तरह ।"[52]

लम्बी कविता 'बाघ' वस्तुतः इक्कीस खंडो में विभाजित है। ये सभी खण्ड स्वतंत्र होते हुए भी परस्पर जुड़े हुए हैं। कविता को पढ़ने पर प्रतीत होता है कि यह केदारनाथ सिंह के सारे काव्य संग्रहों का निचोड़ है। नन्दकिशोर नवल इस कविता की समीक्षा करते हुए कहते हैं:-

"बाघ की कविताओं में केदारनाथ सिंह की 'बाघ' कविता, जो कि 'प्रतिनिधि कविताएं' के अन्त में संकलित है, निशेष रुप से उल्लेखनीय है। यह एक लम्बी कविता है, लेकिन इसका शिल्प उन लम्बी कविताओं से बिलकुल भिन्न है, जो मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' की नकल में रची गई थीं और इसलिए उनमें से अधिकांश बेमौत मारी गई। 'बाघ' कविता में सोलह छोटे-बड़े खंड है, जो स्वतंत्र भी है और परस्पर संबंद्ध भी, जिसका प्रमाण यह है कि इसका दसवाँ खंड एक स्वतंत्र कविता के रुप में 'अकाल में सारस' संग्रह में 'सड़क पर दिख गए कवि त्रिलोचन' शीर्षक से संकलित है। दूसरी बात यह है कि 'अंधेरे में' की अंतर्वस्तु जहाँ मूलतः राजनीतिक है, वहाँ इस कविता की अंतर्वस्तु अपनी व्यापकता में पूरे काल को समेटते हुए भी सौंदर्य-भावना है। अब तक केदारनाथ सिंह जिस मूल्य को उपलब्ध करने के लिए

काव्य-रचना करते आ रहे थे, यह कविता वस्तुत: उसी को 'बाघ' के रुप में मूर्त या प्रतीकित करती है ।" [53]

'गोपाल राय' ने भी 'समीक्षा' नामक पत्रिका के माध्यम से 'बाघ' को पहचानने की कोशिश की है । वे कहते है :-

"अन्त में मित्रों ! इतना ही कहूँगा कि अन्त महज / एक मुहाविरा है / जिसे शब्द हमेशा / अपने विस्फोट में उड़ा देते हैं / और बच रहता है हर बार / वही एक कच्चा-सा आदिम मिट्टी-जैसा ताजा आरम्भ / जहाँ से हर चीज़ / फिर से शुरू हो सकती है / फिर से खड़िया / ककहरा फिर से / फिर से गिनती सौ से शून्य की तरफ/ सूर्यास्त से धूपधड़ी की तरफ / समय फिर से ।" [54]

उपर्युक्त पंक्तियों के संबंध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए 'गोपाल राय' कहते है कि केदारनाथ सिंह इन पंक्तियों से उनके कहने का अन्दाज भली-भांति प्रकट हो जाता है कि अच्छी कविता अर्थ बताने के पहले बहुत कुछ कह जाती है और अपनी संवेदना से पाठक को अभिभूत कर देती है ।

इस कविता के प्रत्येक खंड में 'बाघ' एक नये प्रतीक के रूप में उपस्थित है । वह किसी एक बिम्ब से बंधा नहीं है । इस कविता के बारहवें खंड में अचानक ही कवि त्रिलोचन का विषय उठता है । एक बच्चे का बाघ जो खिलौना रुपी है टूट जाता है और उसे वही 'बाघ' चाहिए जो टूटने से पहले वह था । हमेशा की तरह यहाँ भी कवि त्रिलोचन ही राह सुझाते है । कवि कहता है :-

"अब क्या किया जाय
मैं सोच ही रहा था
कि मुझे सड़क पर दिख गए
कवि त्रिलोचन

मैंने कहा– 'शास्त्री जी',
बच्चा रो रहा है
कुछ तो करना होगा
बोले 'चलो, ले आते हैं
दूसरा बाघ'
मैंने कहा – 'नहीं, वह ज़िद पर अड़ा है
उसे चाहिए वही
और सिर्फ़ वही बाघ
जो कि टूटने से पहले वह था' ।"[55]

कवि शास्त्री जी की बात मान, आज तक उस बाघ की तलाश में कार्यरत हैं जो टूटने से पहले वह था । यहाँ यह मानना पड़ेगा कि वह कुम्हार । कलाकार और कोई नहीं स्वयं केदारनाथ सिंह है । उन्होंने कविता के अन्तिम खंड में उसी बाघ को मूर्तित किया है । कवि कहता है:–

"मित्रों,
इस तरह ऋतु–चक्र पूरा हुआ
और चक्र में
सिर्फ़ एक गति होती है
जो चलती ही रहती है निरंतर
चक्र के चक्र होने होने के विरुद्ध
अब इसमें बाघ आ गया
तो आ गया
उसका मैं कुछ नहीं कर सकता था
सिवा गोली मार देने के

और वह मुझे मंजूर नहीं था
क्योंकि उसका आना एक सूचना है
कि हवा अभी है
और पानी कहीं उसी तरह
बह रहा हैं ।" [56]

'बाघ' का वापस आना पूर्णता का एक संदेश है । जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि केदारनाथ सिंह कविताओं में जहाँ निराशा एवं अविश्वास पनपा है वहीं दूसरे ही क्षण आशा एवं विश्वास की किरण फूटी है । 'बाघ' कविता के प्रत्येक खंड में 'बाघ' यद्यपि एक अलग रुप में दिखाई पड़ता है, परन्तु बाद में वे सभी रूपक एक में सभाहित होते जाते है ! केदारनाथ सिंह ने स्वयं लिखा है :-

" 'बाघ' कविता के हर टुकड़े में बाघ चाहे एक अलग इकाई के रुप में दिखाई पड़ता हो, पर अंतत: सारे चित्र एक दीर्घ सामूहिक ध्वनि-रुपक में समाहित हो जाते हैं । कविता जिस बड़े फलक पर आकार लेती है, उसमें देश और काल के कई दिक्र और कई आयाम घुले-मिले हैं । परन्तु एक सात अनेक दिशाओं में संक्रमित होने वाली इस कविता की ठोस-भूमि इस ढलती हुई शताब्दी का वह बिंदु है जहाँ उसमें धिरे हुए जीवन की कुछ चुप्पियाँ और कुछ आवाजें साफ सुनाई पड़ेंगी- कई बार अलग और कई बार एक ही जगह और एक ही पंक्ति में ।" [57]

अन्तत: कहा जा सकता है कि समकालीन कविता के दौर में लिखी गई लम्बी कविताओं में 'बाध' अपना विशिष्ट स्थान रखती है । आज की भयावह स्थिति इस रचना की केन्द्रीय धड़कन है, जिसका बड़ा बेवाक चित्रण इस रचना में देखने को मिलता है ।

3.4 काव्य रचना का अनवरत क्रमः-

केदारनाथ सिंह का विधिवत काव्य लेखन 1952-53 से शुरू होकर आज भी अनवरत जारी है। फ्रांसीसी कवि 'पॉल एलुअर' की प्रसिद्ध कविता 'स्वतंत्रता' के अनुवाद से उनका परिचय समकालीन काव्यचेतना से हुआ। प्रारम्भिक दौर में वे कुछ समय तक 'हमारी पीढ़ी' नामक पत्रिका के लिए लिखते रहे। इनका पहला काव्य संग्रह अभी बिलकुल अभी उन दिनों (60)में प्रकाशित हुआ। इससे एक वर्ष पूर्व 1959 में इसकी अधिकांश कविताएं अज्ञेय के 'तीसरा सप्तक' में प्रकाशित हो चुकी थी। इनकी पहली आलोचना पुस्तक 'कल्पना और छायावाद' 1957 में और आधुनिक 'हिंदी कविता में बिम्बविधान' शोध पुस्तक 1964 में प्रकाशित हुई।

सन् 60 के बाद व्यक्तिगत पारिवारिक संकटों के कारण लगभग बीस वर्षों तक इनके काव्य लेखन में जैसे ठहराव सा आ गया। इस बीच जो कुछ लिखा गया वह प्रकाशित कम ही हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कविताएं पढ़ने को मिलती थी। 1980 में 'जमीन पक रही है' दूसरा काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। निश्चित रुप से जमीन पकने की परिपक्वता का आभास इनकी कविताओं में भी देखा जा सकता है। इसके बाद कवि की सर्जनशीलता की धार वस्तु एवं शिल्प के धरातल पर तेज होती गई और प्रकाशन का अनवरत सिलसिला चलता रहा। 1983 में 'यहाँ से देखो' तीसरा काव्य संग्रह और 1988 में चौथा 'अकाल में सारस' प्रकाशित हुआ। इन संग्रहों में समसामयिक विषयों के अतिरिक्त ग्रामीण जीवन के विविध चित्र अपनी पूर्ण संवेदनाओं के साथ

व्यक्त हुए हैं। 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएं' संग्रह की कविताएं इनके गहन चिंतन की भावभूमि पर लिखी गई हैं। प्रगतिशील विचारधारा की सशक्त रचना इनकी लंबी कविता बाघ है। जिसकी तुलना समकालीन रचनाकारों की लम्बी कविताओं से की जाती है।

केदारनाथ सिंह के अभी तक कुल छः काव्य संग्रह और तीन आलोचना की पुस्तकें तथा कई सम्पादित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त आप अनुवाद कार्य से भी जुड़े रहे हैं। कई अनुदित रचनाएं भी प्रकाशित हुई हैं। जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किया है कि केदारनाथ सिंह जी शौकिया रचनाकार हैं। इनके अन्दर प्रकाशन की भूख नहीं है। जबकि पाठक वर्ग नए काव्य संग्रह के इन्तजार में रहते हैं। इनके लेखन का अनवरत क्रम आज भी जारी है। पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं छपती रहती हैं। सभा-संगोष्ठियों में इनकी सक्रिय भागीदारी दर्ज होती है। साखी पत्रिका का संपादन कार्य भी समय-समय पर करते रहते हैं। केदारनाथ सिंह का रचनाकार्य उनके जीवनानुभवों का प्रतिबिंब है। जिसे वे बड़ी संजीदगी से बिंब विधामिनी भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

*****

तृतीय अध्याय : संदर्भ सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	संपादक /रचियता	पृ. संख्या
1.	फागुन का गीत (तीसरा सप्तक)	अज्ञेय	पृ. 124
2.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर राजा खुगशाल	पृ. 46
3.	प्रो.काशीनाथ सिंह के गोवा विश्वविद्यालय में ७मार्च ९९ को दिये गये व्याख्यान से		
4.	प्रतिनिधि कविताएं	केदारनाथ सिंह	पृ. 17
5.	वही	वही	पृ. 21
6.	वही	वही	पृ. 23,33,35
7.	तीसरा सप्तक	सं.अज्ञेय	पृ. 124
8.	वही	वही	पृ. 111
9.	वही	वही	पृ. 123
10.	अभी बिलकुल अभी	केदारनाथ सिंह	पृ. प्रक्रिया
11.	तीसरा सप्तक	डा.अज्ञेय	पृ. 113
12.	उत्तर केदार	सुधीश पचौरी	पृ. 27
13.	वही	वही	पृ. 27
14.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर	पृ. 44
15.	वही	वही	पृ. 45
16.	उत्तर केदार	सुधीश पचौरी	पृ. 27
17.	तीसरा सप्तक	डा.अज्ञेय	पृ. 123
18.	वही	वही	पृ.128,135
19.	वही	वही	पृ. 135

20.	वही	वही	पृ. 118
21.	वही	वही	पृ. 238
22.	वही	वही	पृ. 121
23.	वही	वही	पृ. 140
24.	वही	वही	पृ. 140
25.	वक्तव्य (तीसरा सप्तक)	केदारनाथ सिंह	पृ. 118
26.	अभी बिलकुल अभी	केदारनाथ सिंह	पतझड़ की शाम
27.	वही	वही	पपीहा दिन
28.	~~वही~~ प्रतिनिधि कविताएँ (कमरे का दानव)	वही	पृ. 97
29.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्दकिशोर नवल	पृ.131
30.	केदारनाथ सिंह के काव्य में बिम्ब विधान	डा. गीता अस्थाना	पृ.53
31.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्दकिशोर नवल	पृ.132
32.	केदारनाथ सिंह के काव्य में बिम्ब विधान	डा. गीता अस्थाना	पृ.58
33.	उत्तर केदार	सुधीश पचौरी	पृ.166
34.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 23
35.	वही	वही	पृ.23
36.	नये कवि एक अध्ययन	डा. संतोष कुमार तिवारी	पृ.23
37.	यहा से देखो	केदारनाथ सिंह	पृ.17
38.	कवि केदार	भारत यायावर राजा खुगशाल	पृ.102
39.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्दकिशोर नवल	पृ.149
40.	यहा से देखो	केदारनाथ सिंह	पृ.14

41.	वही	वही	पृ.27
42.	वही	वही	पृ.11-12
43.	वही	वही	पृ.28
44.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्दकिशोर नवल	पृ.149
45.	केदारनाथ सिंह के काव्य में बिम्ब विधान	डा. गीता अस्थाना	
46.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ.12
47.	कवि केदार	भारत यायावर राजा खुगशाल	पृ.71
48.	अकाल में सारस: मौसम चाहे जितना खराब हो, उम्मीद नहीं छोडती कविताएं	डा. रेवती रमण	पृ.141
49.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ.107
50.	वही	वही	पृ.11
51.	वही	वही	पृ.106
52.	वही	वही	पृ.23
53.	बाघ	केदारनाथ सिंह	पृ.5
54.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्दकिशोर नवल	पृ.11
55.	समीक्षा (पत्रिका) जून १९३६	गोपाल राय	पृ.11
56.	बाघ	केदारनाथ सिंह	पृ.39
57.	वही	वही	पृ.59
58.	वही	वही	प्रस्तावना

*****

चतुर्थ अध्याय

तीसरा सप्तक और केदारनाथ सिंह

चतुर्थ अध्याय

तीसरा सप्तक और केदारनाथ सिंह

4.1 सप्तक काव्य की परंपरा :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सप्तक काव्य का अपना विशिष्ट स्थान है। वस्तुत: यह अपने ढंग का पहला संकलन है। सप्तकों में संकलित सभी कवियों ने 'वक्तव्य' एवं पुनश्च के माध्यम से उनमें साहित्य एवं कविता संबंधी अपने विचार व्यक्त किये हैं। सप्तकों की श्रृंखला में प्रथम सप्तक काव्य है 'तार सप्तक'। वैसे तो सप्तकों के सर्वेसर्वा अज्ञेय जी है, परन्तु मूल रुप से इनकी योजना चार मित्रों 'नेमिचंद्र जैन', 'प्रभाकर माचवे', 'प्रयागचंद्र शर्मा' और 'गजानन माधव' मुक्तिबोध ने मिलकर बनाई थी। तार सप्तक एक सहकारी संकल्प था जिसकी शर्त थी कि ये कवि मध्य प्रदेशीय हों और उनका एक भी काव्य-संग्रह प्रकाशित न हुआ हो। इन कवियों का परम्परा से परिचित होना भी आवश्यक था। कवियों की संख्या सात होनी थी, तो वीरेन्द्र कुमार जैन और गिरजाकुमार का नाम जोड़ा गया। और अन्तत: नेमिचन्द्र जी और प्रभाकर जी ने अज्ञेय जी की खोज की। अज्ञेय जी की प्रतिभा एवं वैचारिक क्षमता के कारण 'तार सप्तक' का सेहरा उनके मस्तक पर बंधा। 'तार सप्तक' का प्रकाशन 1643 में हुआ। जिसमें उस समय के प्रतिनिधि रचनाकारों की प्रमुख कविताओं को संकलित किया गया। वे कवि थे 'गजानन माधव', 'मुक्तिबोध', 'नेमिचंद्र जैन', 'भारत भूषण अग्रवाल', 'प्रभाकर माचवे', 'गिरिजाकुमार माथुर', 'रामविलास शर्मा' और 'अज्ञेय'।

'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद सन् 1951,1959, एवं 1979 में क्रमश: दूसरा, तीसरा, और चौथा सप्तक प्रकाशित हुआ। इन सभी सप्तकों में अज्ञेय जी ने सात-सात कवियों की रचनाओं को संकलित किया। 'तार सप्तक' 'दूसरा सप्तक' एवं 'तीसरा सप्तक' को साहित्य जगत ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। यहाँ मैं 'दूसरे सप्तक' एवं सप्तकों की पृष्ठ भूमि की संक्षिप्त चर्चा कर 'तीसरे सप्तक' एवं उसके चौथे कवि केदारनाथ सिंह की कृतियों पर प्रकाश डालूँगा।

'अज्ञेयजी' ने जब कविता के क्षेत्र में कदम रखा, उस समय एक ओर तो छायावाद का छुई-मुई रुप था, और दूसरी ओर प्रगतिवाद की कड़ी धूप। तीसरी व्यक्तिवादी काव्यधारा थी और चौथी ओर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावनाओं को प्रतिष्ठित करने का प्रयास। मध्यवर्गीय रचनाकार परंपरावादी संस्कारों के कारण अपनी वैयक्तिक प्रेमानुभूतियों को व्यक्त नहीं कर पा रहे थे। व्यष्टि के स्थान पर समष्टि को विशेष महत्व दिया जा रहा था। 'अज्ञेय जी' ने 1938-39 में विशाल भारत पत्र के माध्यम से निरी सामाजिक-प्रवृत्तियों का विरोध किया। इस कड़ी में भगवती चरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी और जैनेन्द्र आदि जैसे प्रखर चिंतक आगे आए। जिन्होंने कि मानव मन की गहराइयों में झांकने का प्रयास किया। इसके साथ-साथ ही पाश्चात्य विचारों में फ्रायड और अस्तित्ववाद का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा। ठीक इसी समय प्रतीक और बिंब ने भी अपना प्रभाव जगाया। सुरेशचन्द्र 'निर्मल' का कथन है :-

"द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् छायावाद का सूर्य अस्ताचलगामी होने लगा था। इसके विरूद्ध काव्य-जगत में होने

वाली प्रतिक्रिया दो दिशाओं से प्रस्फुटित हुई – प्रथम मार्क्सवादी विचारधारा का अनुकरण करने के कारण 'प्रगतिवाद' कहलायी, जबकि दूसरी विचार धारा ने किसी निश्चित-पूर्व निर्धारित विचारधारा को ग्रहण नहीं किया और 'वादरहित' बनी रही। उसने परीक्षा, पुन, परिक्षण के द्वारा सत्य के नए आयामों के अन्वेषण पर बल दिया, नये-नये प्रयोगों को स्वीकार्य किया। इसी को 'प्रयोग वाद' की संज्ञा अभिहित की गई।" [1]

वस्तुतः प्रयोग का उद्देश्य था, सत्य की खोज एवं प्रवृत्ति परम्परागत नियमों से आगे बढ़कर नये मूल्यों एवं नई दिशाओं की स्थापना करना। 'अज्ञेय जी' ने उस समय के कवियों को इस प्रयोग की आजादी दी और उन्हें प्रयोगधर्मी कहा। 'अज्ञेय जी' ने तारसप्तक की भूमिका में लिखा है कि :- "प्रयोगवाद किसी एक निश्चित जीवन-दर्शन में विश्वास नहीं करता। कारण ये कवि..... 'किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी.....' काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण इन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है।" [2]

'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण की भूमिका में 'अज्ञेय जी' ने लिखा है कि: "यह महज एक संयोग ही था कि सात कवि मंच पर आ गए, क्योंकि आज बीस वर्षों बाद भी सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग है, जीवन के विषय में, समाज और धर्म, और राजनीति के विषय में काव्य वस्तु और शैली के, छन्द और तुक के कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद परस्पर एक-दूसरे पर, दूसरे की रूचियों, कृतियों और आशाओं, विश्वासों पर और यहाँ तक कि एक दूसरे के मित्रों और

कुत्तों पर भी हंसते हैं।" 3

सम्भवतया, उपरोक्त कारणों की ही वजह से 'नागार्जुन' और 'त्रिलोचन' जैसे महत्वपूर्ण कवियों को सप्तकों की श्रृखंला में नहीं रखा गया। इससे एक बात तो साफ-साफ जाहिर होती है कि 'अज्ञेय जी' ने अपने समर्थकों को ही सप्तकों में स्थान दिया। 'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण के पुनश्च वक्तव्यों में नेमिचन्द्र जैन ने स्वीकार किया है:- 'तार सप्तक' में भ्रम के शिकार हुए कवियों के काल्पनिक प्रयोगवाद की ही चर्चा अधिक हुई, उनकी कविता का उचित आकलन नहीं हो सका।

'तार सप्तक' की भूमिका और अपने वक्तव्यों में 'अज्ञेयजी' ने प्रयोग शब्द का प्रयोग कई बार किया है। प्रयोग शब्द अंग्रेजी कविता में प्रचलित एक्सपेरिमेंट हिन्दी में प्रयोग के नाम से चल पड़ा। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने तारसप्तक की समीक्षा करते हुए कहा कि पिछले कुछ समय से ही हिन्दी काव्यक्षेत्र में कुछ रचनाएं हो रही हैं जिन्हें किसी सुलभ शब्द के अभाव में प्रयोगवादी रचना कहा जा सकता है। बाद में इस शब्द का विरोध भी हुआ, किन्तु विरोध और अस्वीकृत होने के बाद भी यह शब्द प्रचार में आ गया।

'प्रयोगवाद' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए समीक्षक नामवर सिंह कहते हैं :- प्रयोगवाद के पंद्रह वर्षों का इतिहास व्यक्तिवाद के दो सीमान्तों के बीच फैला हुआ है, इनमें एक सीमान्त है मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति कवि का वैयक्ति असन्तोष और दूसरा सीमान्त है जनजागरण से डरे हुए कवि की आत्मरक्षा की भावना। कुल मिलाकर चरम व्यक्तिवाद ही प्रयोगवाद का केन्द्रबिन्दु है, और विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक मान्यताओं के

रुप में यह संकीर्ण व्यक्तिवाद अपने को व्यक्त करता रहता है ।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि 'तार सप्तक' के कवियों ने छायावादी वायवीयता, उत्तर छायावादी अबौद्धिकता और प्रयोगवादी सामाजिक एकांगिकता से अपने को मुक्त कराया । 'नेमिनचन्द्र जैन' ने अपनी एक रचना 'कवि गाता है' । में छायावादी कवियों पर कटाक्ष किया है ।

"देख चांदनी रातें कवि का नाच उठा उर
स्वपन देश की परियों के गायन से उसका गूंज उठा स्वर,
आधी मुंदी हुई पलकों में
मदिरा-सा किस छवि का मीठा भार लिए,
वह बेसुध -सा है; उसके नयनों में झूल रही किस रुप-परी
की सघन याद
सहज गर्व से फूल-फल उठती है तब उस कवि की छाती,
गद्‌गद होकर गा उठता है कवि
तब राजा और सेठ की स्तुति के गायन ।" [4]

'तार सप्तक' की अग्रिम कड़ी के रुप में 'दूसरा सप्तक सन्' 1952 में प्रकाश में आया । इसके सम्पादक भी अज्ञेय जी है परन्तु इसमें उनकी कविताएं नहीं है । इसमें संकलित सातों कवि ऐसे हैं, जिनकी रचनाएं संग्रह के रुप में उस समय तक प्रकाशित नहीं हुई थी । इन रचनाओं में वास्तविकता की समझदारी और कवि की ईमानदारी है ! कवि भवानी प्रसाद मिश्र अपने आदर्श दृष्टिकोण एवं ईमानदारी की परीक्षा देते हुए कहते हैं :-

"ये कमल के फूल

लेकिन मानसर के हैं,

इन्हें हूँ बीच से लाया

न समझे तीर पर के हैं।"[5]

इस सप्तक की कविताएं और उनकी विषय वस्तु सामान्य जिन्दगी से ली गई हैं ! युगानुरूप संवेदना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति इन रचनाओं में पाई जाती है। जीवनानुभव के विविध भाव चित्र जो भाषा के माध्यम से प्रयुक्त हुए हैं वे इन रचनाओं की सृजनात्मकता के साक्ष्य हैं। रचना बोल-चाल की भाषा में रचित हैं। 'भवानी प्रसाद मिश्र', 'शकुन्त माथुर' और 'रघुवीर सहाय' की भाषा लोक भाषा एवं मुहावरों की भाषा है ! मिश्र जी की भाषा जनपदीय भाषा है :-

"जी माल देखिए दाम बताऊँगा

बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा,

कुछ गीत लिखे हैं-मस्ती में मैंने,

कुछ गीत लिखे हैं- पस्ती में मैंने,

यह गीत सख्त सरदर्द भुलाएगा;

यह गीत पिया को पास बुलाएगा।"[6]

लोकभाषा की सादगी शकुन्त माथुर की रचनाओं में भी देखी जा सकती है :-

"पीठ पर लादे वह

जब थक जाता है

हाथों को पांवो को

छोड़ बैठ जाता है---

किन्तु यह जीवन है

घड़ी की सुई भी

कोल्हू का बैल

प्रतिदिन चलता है।" [7]

अन्ततः हम कह सकते है कि 'दूसरा सप्तक' की रचनाओं में मानसिक संघर्ष और वैचारिक तड़पन नहीं दिखाई पड़ता, उनमें 'अज्ञेय जी' की बौद्धिकता की छाया देखी जा सकती है। इस सप्तक की रचनाओं में भाषा की सहजता और विश्वास की सुदृढ़ भूमि है। यही कारण रहा कि जहाँ एक ओर 'तार सप्तक' के कवियों ने बोलचाल की भाषा को रचनाओं में प्रयोग कर इस समस्या का आसानी से समाधान ढूंढ लिया।

4.2 कवि का साहित्य चिंतन (तीसरा सप्तक)

प्रयोगवाद के बाद नई कविता का जन्म हुआ। प्रयोगवाद एवं नई कविता के बीच ठीक-ठीक समय रेखा तो नहीं खींची जा सकती, परन्तु विद्धानों ने अनुमान जरुर लगाया है। डा.कान्ति कुमार इस पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते है :

"हिन्दी के प्रयोगवादी काव्य में प्रयोगों के लिए जो ललक थी, धीरे-धीरे नई कविता के रुप में वह अधिक संयत और अनुशासित हो गई। जब तक प्रयोगवाद और नई कविता के इस संबंध को नहीं समझ लिया जाता तब तक सन् 1940 ई. के आस-पास प्रारंभ होने वाले काव्योन्मेष का वास्तविक महत्व नहीं आंका जा सकता।" [8]

डा. संतोष कुमार तिवारी प्रयोगवाद एवं नई कविता के बीच समय रेखा को साफ़ करने का प्रयास करते हुए कहते है :-

"नई कविता के जन्म के बारें मे विद्धानों में कुछ मतभेद उभर कर सामने आये हैं। कतिपय समीक्षक सन् 1936 के बाद की

समस्त छायावोत्तर काव्य धाराओं को नई कविता का नाम देना चाहते हैं किन्तु कई विचारक प्रयोगवाद के दूसरे चरण को नई कविता के रुप में स्वीकार करते हैं। कुछ प्रमुख रचनाकार और इतिहासकार सन् 1955 के बाद लिखी गई कविताओं को ही नई कविता के अन्तर्गत स्वीकारना चाहते हैं और प्रगति-प्रयोग से उसका कोई नाता नहीं मानते। अधिकांश विद्वान नई कविता को प्रयोगवाद की विरासत मानने के ही पक्षधर दिखलाई देते हैं।"[9]

वास्तव में 'तार सप्तक' और 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के बाद सन् 1956 में जब डा.जगदीश गुप्त के संपादकत्व में 'नई कविता' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ, तब से प्रयोगशील कविता के अग्रिम विकास को 'नई कविता' तक काव्यों की एक श्रृंखला बन गई। जिसके कारण 'अज्ञेय जी' ने भी 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में 'नई कविता' नाम को स्वीकृति दे दी।

'नई कविता' के बारे में डा.केदारनाथ सिंह का मन्तव्य है ;-

" 'नई कविता' से मेरा परिचय 'तार सप्तक' के माध्यम से हुआ था। तब बनारस की कवि गोष्ठियों में शम्भुनाथ सिंह के गीतों की गूँज थी। त्रिलोचन शास्त्री की रचनाएँ कम समझी जाती थीं। नामवर सिंह लिखते थे, पर कम-कम। मेरी आरम्भिक कविताओं पर इन सब का असर था। पर आज उन कवियों की एक-आध पंक्तियाँ ही याद रह गयी है, शेष पता नहीं क्या हुई ? 'तार सप्तक' के बाद मैंने 'अज्ञेय' का 'इत्यलम्' और गिरिजाकुमार का 'नाश और निर्माण' पढ़ा। मेरे भीतर नयी कविता की भूमि धीरे-धीरे उभरने लगी।"[10]

वास्तविकता यह है कि तीसरा सप्तक के प्रकाशन के

बाद सन् 1960 में ही नई कविता की चर्चा ने जोर पकड़ा। उस समय नई कविता को बिम्ब से जोड़ कर देखा जा रहा था। जिसके श्रेष्ठ कवि के रुप में 'तीसरे सप्तक' के चौथे कवि- केदारनाथ सिंह का नाम चर्चा में आ रहा था। इस संदर्भ में केदारनाथ सिंह जी का कथन इस प्रकार है :-

"यह विचित्र बात है कि काव्य में बिंब का अंतरावलंबन उसी प्रकार चलता रहता है, जिस प्रकार जीवन में संस्कृतियों का। सामान्यत: काव्य का आनन्द लेते समय हम इस बात को लक्ष्य नहीं कर पाते, पर थोड़ा रुककर यदि वैज्ञानिक दृष्टि से छान-बीन की जाय तो निश्चय ही किसी बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन हो सकता है, जो सम्भव है हमारी संस्कृति की गुत्थियों को सुलझाने में सहायक हो।" [11]

केदारनाथ सिंह की रचनाओं में बिंबो की अधिकता है। एक से बढ़ कर एक गूढ़ बिंब उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं। यहाँ पर मैं 'तीसरे सप्तक' की ही रचनाओं तक सीमित रहूँगा। एक रचना 'टूटने दो' का बिंबात्मक उदाहरण जो कि उनके आरम्भिक गीतों में जटिल बिंबों की पुष्टि करता है :

"अगर रोती है मेरे तटों पर तुम्हारी लहरें,
अगर जलते हैं मेरी बाहों में तुम्हारे धान,
अगर बन्द है मेरी मुट्ठी में तुम्हारी नदियां
अगर क़ैद हैं मेरी छाती में तुम्हारे गान,
तो ओ रे भाई
ओ रे भाई
मुझे जंग-लगे लोहे की तरह
टूटने दो।" [12]

इस संग्रह की पहली कविता है 'अनागत' जिसमें कवि भविष्य के बारे में चिंतित प्रतीत होता है। इस कविता का बिंब अपने में अनूठा बिंब है। कवि कहता है :-

"आज-कल ठहरा नहीं जाता कहीं भी;
हर घड़ी, हर वक्त, खटका लगा रहता है।
कौन जाने कब, कहाँ वह दीख जाये।
हर नवागन्तुक उसी की उसी की तरह लगता है।
फूल जैसे अंधेरे में दूर से ही चीखता हो;
इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है।
हाथ उस के
हाथ में आकर बिछल जाते
स्पर्श उस का
धमनियों को रौंद जाता है।" [13]

जिस समय 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ उस समय केदारनाथ सिंह उदय प्रताप कॉलेज के छात्र थे। साहित्य एवं संस्कृति की नगरी वाराणसी में आए दिन साहित्यिक गतिविधियाँ होती रहती थी, जिसमें काव्य गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों का अच्छा माहौल था। हजारी प्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन शास्त्री, विश्वनाथ प्रताप मिश्र, शम्भुनाथ सिंह आदि विद्वानों के कारण हिंदी साहित्य का अच्छा वातावरण था। इस दौर में केदारनाथ सिंह कविताएं लिख कर पत्रिकाओं में भेजने लगे थे साथ ही साथ उनको कवि सम्मेलनों में पढ़ने भी लगे थे। यहाँ तक कि उनके सभी मित्रगण भी कविता एवं साहित्य में रुचि रखते थे। अधिकांश समय अध्ययन, मनन व चिंतन में व्यतीत होता था। प्रारम्भिक दौर की कविताओं मे विषय में उनका विचार इस प्रकार है :-

"मैं हाई स्कूल में था। एक कविता लिखी वो त्रिलोचन जी को पसन्द आ गई। पत्रिका 'समाज' में छपने वाली ये मेरी पहली रचना थी। तब मैं छंद में ही लिखता था। त्रिलोचन जी की प्रेरणा से दो पुस्तकें पढ़ीं। पहली कविता की पुस्तक थी 'धरती' और दूसरी 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तार सप्तक'। 'धरती' की कविताएँ सरल थीं, पकड़ में आ गई। पर 'तार सप्तक' की कविता में पकड़ाई न दी।" [14]

केदारनाथ सिंह की प्रारम्भिक कविताओं के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है :-

(१)

"इस अनागत को करें क्या?
जो कि अक्सर बिना सोचे, बिना जाने
सड़क पर चलते अचानक दीख जाता है" [15]

(२)

"ओ अपरिचित
लाओगे। क्या लाओगे।
पूछते है घर-
दिशाएँ
नदी नाले,
गाँव-जंगल
लाओगे। क्या लाओगे।" [16]

(३)

"टहनी के टूसे पतरा गये
पकड़ी को पात नये आ गये।

नया रंग देशों से फूटा

वन भींज गया

दुहरी यह कूक, पवन झूठा–

मन भींज गया

डाली–डाली स्वर छितरा गये ।

पात नये आ गये ।" [17]

अपनी इन आरम्भिक रचनाओं में कवि भविष्य के प्रति आशावान दिखाई पड़ता है । वह भविष्य से प्रश्न की मुद्रा में भी प्रतीत होता है और प्रश्न करता है कि ओ अपरिचित तुम क्या लाओगे, ये नदी–नाले घर–दिशाएं, गाँव जंगल सभी जानना चाहते है । तीसरी कविता जो 'तीसरे सप्तक' से उद्धृत है । पात नये आ गये में भी कवि परिवेश को लेकर काफी उत्साहित एवं उत्सुक है । वह पेड़ों की टहनियों पर नये पत्ते–देख कर प्रसन्न चित्त है । इसी प्रसन्नता की मुद्रा में कवि केदारनाथ सिंह के साहित्य चिंतन का आरम्भ होता है । 'तार सप्तक' के बाद केदारनाथ सिंह के साहित्य चिन्तन ने रचनाओं की एक के बाद एक बड़ी कतार लगा दी । उनकी इन रचनाओं की चर्चा मैं तीसरे अध्याय में कर चुका हूँ ।

सप्तकों के अधिकांश कवि प्रयोगवादी दृष्टि वाले थे, जो आत्मकेन्द्रित ही रहे । यही कारण था कि प्रयोगवादी कविता का सत्य भी आत्म केन्द्रित था, जिसमें उद्देश्यों एवं प्रेरणाओं का अभाव रहा । ऐसी प्रश्नाकूल अवस्था में केदारनाथ सिंह ने कवि और कविता दोनों को एक नई राह दी ।

4.3 कवि का वक्तव्य

आधुनिक कविता के उद्भव एवं विकास में प्रयोगवाद

के अन्तर्गत तार सप्तकों के प्रकाशनों का विशेष महत्व है, जिसके कर्ताधर्ता अज्ञेय थे। सप्तकों की श्रृंखला में केदारनाथ सिंह का नाम तीसरे सप्तक में आता है, जिसका प्रकाशन सन् 1959 में हुआ। सप्तकों की खास बात यह है कि उसमें संकलित कवियों की कविताओं के अतिरिक्त उनके काव्य संबंधी वक्तव्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। केदारनाथ सिंह के अतिरिक्त जिन कवियों की रचनाएं इनमें संकलित है उनमें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, प्रयाग नारायण त्रिपाठी आदि का विशिष्ठ स्थान है।

कवि केदारनाथ सिंह ने तीसरे सप्तक के वक्तव्य में बिंबों की अधिकांश रुप से चर्चा की है, वैसे तो सामान्य रुप से कतिपय रचनाकार पहले भी बिंबों की बात करते हैं, परन्तु केदारनाथ सिंह जी ने बिंब को एक सही पहचान दी और इसे श्रेष्ठ कवि की कसौटी माना। बिंब के संबंध में उनके वक्तव्य इस प्रकार है :-

"कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ, बिम्ब विधान पर। बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय-वस्तु से होता है, उतना ही उस के रुप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है; रुप को संक्षिप्त और दीप्त। चित्रों के प्रति मेरे मन में जो आकर्षण है ; उनके कुछ कारण हैं।" [18]

कवि ने उक्त कारणों का उल्लेख अपने वक्तव्य के दूसरे अंश में किया है :-

"बिना चित्रों, प्रतीकों, रुपकों और बिम्बों की सहायता के मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्राय: असम्भव है, यहाँ तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुँच कर गम्भीर तत्वदर्शन की चर्चा करते हैं तब भी हमारे उपचेतन में कहीं न कहीं उन विचारों के वर्ण-

चित्र उभरते मिटते रहते हैं। बिम्ब-निर्माण की यह प्रक्रिया पूरे मानव-जीवन में फैली हुई है।"

कवि दृष्टि एवं खोज की दिशा एकदम साफ है। प्रकृति को लेकर कवि बेचैन हो उठता है और अनोखे बिम्ब की रचना करता है:-

"हालाँकि जानता हूँ,
बौर अगर आ भी गए
तो बदलेगा कुछ नहीं
मेरा शहर
उसी तरह घिसटता रहेगा
एक भागती हुई बस के पीछे।" [19]

यहाँ कवि बसंत ऋतु के आने पर जहाँ एक ओर आशावान है वही निराशा का पुट भी है कि मेरे इस शहर में बदलेगा कुछ भी नहीं। कविता और उसके मापदंडों को लेकर सर्वेश्वर दयाल सक्सेना साधारण बोलचाल की भाषा को ही उपयुक्त मानते हैं। उनका मत है:-

"साधारण बोलचाल की भाषा में जो कविताएं नहीं लिखी जा सकतीं उन्हें मैं अभी नहीं लिख रहा हूँ। काव्य की भाषा जिस गहनतम अनुभूति की अभिव्यक्ति में साधारण बोलचाल की भाषा से अलग चली जाती है या जाने के लिए विवश है उसका सामना अभी मुझे नहीं करना पड़ा है।" [20]

'कुंवर नारायण' कविता में विचार पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। साथ ही वे उसे बौद्धिक रूखाई से जोड़े जाने के पक्षधर भी नहीं है। रुखाई कविता का दोष माना गया है, जिसकी देने की कोशिश वे स्वयं करते है। उनका मतव्य है :-

"प्रयोग का महत्व किसी वाद से संबंधित करके समझना गलत है।--- प्रयोग वैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक उपप्रमेय है- एक ऐतिहासिक आवश्यकता है।" [21]

'तीसरा सप्तक' के कवियों ने कविता में विषय, छंद, कुंठा, आवेग-प्रधानता, दुरुहता एवं अस्पष्टता, भाषा और बिंब रचना, की बात अपने-अपने वक्तव्यों में उठाई। उपरोक्त सभी में बिम्ब रचना, की बात ही इस सप्तक की महत्वपूर्ण बात कहीं जा सकती है।

विजयदेव नारायण साही ने कविता को आर्ष सत्य या दु:ख कहकर करुणा को विशिष्य स्थान दिया। उनकी सबसे महत्वपूर्ण घोषणा है कि :-

"जो मैंने भोगा है वह सब मेरी कविता का विषय नहीं है। कविता का विषय होता हैजो अब तक की भोगने की प्रणाली में बैठ नहीं पाता। हर कलाकृति ठोस, विशिष्ट अनुभूति से उपजती है और उसका उद्देश्य अनुभूति की सामान्य कोटियों को नये सिरे से परिभाषित करना होता है। परिभाषा विशिष्ट और सामान्य में सामंजस्य का नाम है। बिना सामंजस्य के भोगने में समर्थ होना असंभव है।" [22]

केदारनाथ सिंह की रचनाओं में भी व्यक्तित्व व मानव मूल्यों के संदर्भ मिलते हैं। उनकी एक रचना 'कमरे का दानव' उनके मानसिक संघर्ष का परिचायक है। कवि कहता है :-

"डरता नहीं हूँ,
मगर उसे जब देखता हूँ, देखा नहीं जाता है,
लौटते हुए पथ में निश्चय कर लेता हूँ-
आज उसे चलकर ललकारूंगा,

लड़ूंगा, पछाड़ूंगा,

काले-काले उसके पंख तोड़ डालूंगा

--- मेरी प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ा है वह,

कमरे का दानव, अपलक, उदास-

मेरे हाथों से संकल्प छूट जाता है ।" [23]

कवि का यह अंतर्द्वंद्व उनकी कविता अनागत में आस्था के रुप में परिवर्तित प्रतीत होता है । कवि कहता है :-

"आज-कल ठहरा नहीं जाता कहीं भी;

हर घड़ी, हर वक्त, खटका लगा रहता है ।

कौन जाने कब, कहाँ वह दीख जाये ।

हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है ।

फूल जैसे अंधरे में दूर से ही चीखता हो;

इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है ।" [24]

केदारनाथ सिंह की आरम्भिक रचनाओं का विषय व्यक्तिगत आशंकाओं से भरा था, परन्तु अचानक 'अनागत' कविता में भविष्य के प्रति कवि की आस्था जगी है । इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि उन्होंने व्यक्तिगत सत्यों एवं लोक सत्यों दोनों को अपनी रचनाओं में उचित समय एवं स्थान दिया है ।

'तीसरे सप्तक' के प्रथम कवि प्रयाग नारायण जीवन के संकटों तथा संघर्षो को व्यापक जीवन संदर्भ मान कर प्रस्तुत करते हैं:-

"मैं श्मशान यात्रा पर नहीं निकला हूँ ।

मैं जिन्दगी का मुसाफिर हूँ

उस बेलौस जिन्दगी का

जो अपनी लाश की पसलियों पर पांव रखकर

ठहाके मारती है

और फिर दौड़कर

अपने ही अजात शिशु के कपोलों को चूम लेती है,

और उस सार्थक

आस्थावान, मृदु स्पर्श से वाष्पित हो,

उसके प्राणों में समा जाती है।" [25]

प्रयाग नारायण त्रिपाठी मानव मूल्यों के संदर्भ में जिस व्यक्ति की तलाश करते हैं वह वैयक्तिक यथार्थ के प्रति जागृत और युग जीवन के संकट और संघर्षों को व्यापक जीवन संदर्भ में प्रस्तुत करने वाला है।

कीर्ति चौधरी इस संकलन की दूसरी कवयित्रि हैं। जिन्होंने ऐसे व्यक्तित्व को पाने की कोशिश की है जो साधारण परिवेश में साधारण जिंदगी के छोटे-मोटे दर्द को लेकर आता है :-

"सारा जीवन मेरा साधारण ही बीता

हर सुबह उठा तो काम-काज दफ्तर, फाइल

झिड़की-फटकारें, वही-वही कहना सहना

मैंने कोई भी बड़ा दर्द तो सहा नहीं।" [26]

कवयित्रि ने साधारण सा- जीवन व्यतीत किया, कोई दर्द भी नहीं सहा, इसीलिए उनके अन्दर परिवेश और अभिलाषा का अंतर्द्वंद्व परिलक्षित होता है।

'तीसरे सप्तक' के तीसरे कवि मदन वात्स्यायन हैं। जिनकी मानवीय मूल्यों में गहरी आस्था है। वे कर्तव्य निष्ठा एवं ईमानदारी की घटती हुई साख के प्रति चिन्तित हैं। इनका सम्पूर्ण मानसिक लगाव घोर परिश्रम करने वालों के प्रति है। कार्यालयों में कार्य करने वाले विभिन्न मध्यवर्गीय चरित्रों का इन्होंने बड़ा बेबाक

चित्रण किया है ।

"बातें बड़ी-बड़ी करता है,
ऐंठा-ऐंठा ही फिरता है,
हम सब डटी हुई ड्यूटी पर
पर उस कोने में पाइप पर
ऊँघ रहा था मानव छि: छि:
ऊँघ रहा था मानव तू तो
छि: छि: छि: ------छि: ।" [27]

इस सप्तक के अन्य कवियों में कुंवर नारायण का विशिष्ट स्थान है । काव्य लेखन की एक लम्बी यात्रा तय करते हुए वे आज भी रचनाकर्म में सक्रिय भागीदारी कर रहें है । लेखन के प्रारम्भिक दौर से ही वे मानवीय मूल्यों के प्रति सतर्क रहे हैं । उनका मानना है :-

"सत्य से कहीं अधिक स्वप्न वह गहरा था,
प्राण जिन प्रपंचो में एक नींद ठहरा था ।" [2]

विजय देव नारायण साही स्वीकारते हैं कि व्यक्तित्व का मूल प्रेरक तत्व वेदना है । जो जीवन की विसंगतियों के कारण उत्पन्न हुई है । यही कवि की ईमानदारी है । उनकी कविता 'मानव राम' का एक अंश द्रष्टव्य है :

"वैभव वाले वे राजभवन, जगमग सुख के साधन
ये इंद्रधनुष से रंग-भरे जग के अनमोल रतन,
पड़ कहीं न जाए धूल तृषित अरमानों की मेरे,
मेरे ही सपने आज बचाते हैं मुझसे दामन ।" [29]

शहरों की भीड़ भाड़ व चकाचौंध कर देने वाली जीवन शैली को देख, कवि के सपने भग्न होते दिखाई पड़ते हैं ।

इस सप्तक के सातवें एवं अंतिम कवि है सर्वेश्वर दयाल सक्सेना वे व्यक्तिगत पीड़ा को समाज कल्याण से जोडकर देखते है :-

"एक व्यापक संवेदना, एक दर्द जो व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न हुआ था वह अंततः सामूहिक कल्याण भावना से जुड़ गया।"

इसी संदर्भ में उनकी एक रचना 'आज पहली बार' का अंश द्रष्टव्य है :-

कवि निजी पराजय, भटकन और अटक से परेशान था,
एक शीतल हवा के झोंके ने उसके जलते माथे पर
अपना हाथ रख दिखा और कहा -
"मैं भी पराजित हूँ और पराजय ने मुझे शीतलता दी है और भटकाव ने गति
इसी से सभी मेरे हो गए और मैं स्वयं को बांटती फिरती हूँ।
यह सच है किसी ने मुझको यति नहीं दी है,
लगा मुझको उठाकर कोई खड़ा कर गया
और मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया
आज पहली बार।" [30]

<u>निष्कर्ष</u> : सप्तकों की परंपरा में 'तृतीय सप्तक' के कवियों की खाश बात यह है कि इसके कवियों ने हिन्दी कविता को एक नई पहचान दी और साथ ही अपने वक्तव्यों के माध्यम से कविता के स्वरूप को भी निर्धारित किया। इनमें कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और केदारनाथ

सिंह आदि का विशेष योगदान रहा । आज भी कुंवर नारायण और केदारनाथ सिंह उसी सक्रियता के साथ रचना क्रम में निरत है ।

4.4 काव्य कल्पना

कल्पना एक ऐसी मानस क्रिया का नाम है जो अदृष्ट संबंध-सूत्रों को खोज निकालती है । कल्पना शक्ति से प्रेरित होकर कवि जब रचना करता है तो वह अपनी ओर से कुछ जोड़ता है और उसे पहले से समृद्ध बनाता है । 'कल्पना' शक्ति के बारे केदारनाथ सिंह के विचार इस प्रकार हैं ।

"हिन्दी में 'कल्पना' पर सबसे अधिक काम किया है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने । मैंने प्राय: उन्हीं के विचार-सूत्रों को अपनी स्थापनाओं का आधार बनाया है । कल्पना-सम्बन्धी विचारों का इतिहास और उसकी नई से नई व्याख्याओं को जानने के लिये मुझे अनिवार्यत: पाश्चात्य समीक्षकों की शरण लेनी पड़ी है । मैं उन सभी श्रेष्ठ विचारकों के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनकी स्थापनाओं का इस निबन्ध में उपयोग करने के लिये मैंने अपने को बाध्य पाया है ।" [31]

वास्तव में कल्पना ही वह शक्ति है जो किसी साहित्यिक रचना को कोरा इतिहास बनने से बचाती है । 'अरस्तू' ने भी इस बात को स्वीकारा और कल्पना के मूल में छिपी हुई शक्ति को पहचाना । इसी कल्पना शक्ति के कारण रचना कोरे कथन से 'कुछ अधिक' हो जाती है । यही काव्य का सत्य है जो पाठक को प्रभावित करता है । इसको आज के आलोचक कल्पना-शक्ति का नाम देते हैं ।

भारतवर्ष में कल्पना का आरम्भ बहुत बाद में हुआ ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुन्दर राय, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा डा. नगेंद्र ने कल्पना के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये। डा.केदारनाथ सिंह का मानना है कि :-

"वस्तुत: छायावाद तथा रहस्यवाद का भेद 'सापेक्ष कल्पना' एवं 'निरपेक्ष कल्पना' के आधार पर ही किया जा सकता है। कल्पना जहाँ वस्तु जगत का आश्रय लेकर उड़ाने भरती है वहाँ छायावाद और जहाँ 'शुद्ध अन्तदृष्टि' के द्वारा निर्मित भावलोक में संचरण करती है वहाँ रहस्यवाद ।" [32]

पाश्चात्य कवियों एवं रचनाकारों ने भी कल्पना संबंधी अपने विचारों को समय-समय पर प्रकट किया है। 'प्लेटो' का मानना है कि कल्पना का आधार 'असत्य' है और कल्पना यथार्थ नहीं बल्कि आभास मात्र है। जबकि अरस्तू ने कल्पना को वह शक्ति बताया जो विचारों को एक सामंजस्य रुप देती है। इनके बाद आने वाले विचारकों ने इन दोनों विचारकों के मत के आधार पर ही नई-नई व्याख्याएं दी।

जैसा कि मैंने उपरोक्त कथन में कहा है कि यद्यपि कल्पना का आरम्भ हमारे देश में बहुत बाद में हुआ, परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्याम सुन्दर दास, डा.नगेन्द्र ने कल्पना शक्ति की सीमाओं को छूआ। डा.केदारनाथ सिंह को भी इसी कल्पना शक्ति ने शीर्ष का रचनाकार बनाया। उन्होंने गांव की छवियों को अपनी कल्पना शक्ति से यथार्थ के धरातल पर उतारा। केदारनाथ सिंह एक किसान के घर में जन्मे थे, और कृषक के लिए प्रकृति का आकर्षण, जीवन के सुख-दुख व आशा-निराशा से जुड़ कर उत्पन्न होता है। कवि ने इन्हीं भाव चित्रों को अपनी अनोखी

कल्पना शक्ति से नियोजित किया। यहाँ मैं 'धानों का गीत' और 'बादल ओ' कविता के अंश उद्धृत कर रहा हूँ :-

"धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे / उगेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरुर।
चंदा को बांधेंगे कच्ची कलंगियों / सूरज की सूखी रेत
में / आना जी बादल जरुर" [33]

दूसरा उदाहरण 'बादल ओ' कविता से अद्धृत है :-

"हम नये-नये धानों के बच्चे तुम्हें पुकार रहे हैं
बादल ओ / बादल ओ / बादल ओ / --ओ सुनो,
बीज-वर्षी
बादल ओ सुनो, अन्न वर्षी बादल, हम पंख मांगते हैं।
हम नये फेन के उजले-उजले / शंख मांगते हैं /
हम बस कि मांगते हैं / बादल / बादल /" [34]

'तीसरा सप्तक' के सातों कवियों में से केदारनाथ सिंह ने अपनी इस अनूठी कल्पना शक्ति के बल पर एक अलग पहचान बनायी। उनके इन गीतों की जमीन तो वही है अर्थात प्यार और प्रकृति, परन्तु उनके भावों व अनुभवों की ताजगी एवं कल्पना शक्ति उन्हें समकालीन गीतकारों से अलग करती है। केदारनाथ सिंहकीइस कल्पना शक्ति की पहचान करती, रेवती रमण लिखती है:-

"देखा जाय तो केदारनाथ सिंह का आरम्भ ही है, सुदृढ़ समारम्भ, जब वे गीतों और कविताओं में सबसे अधिक बिम्ब विधान पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे थे। 'तीसरा सप्तक' में उन्होंने लिखा है कि चित्रों के प्रति मेरे मन में जो आकर्षण है, उसके कुछ कारण है। प्रकृति बहुत शुरु से मेरे भावों का आलम्बन रही है।

मेरा घर गंगा और घाघरा के बीच में है । मेरे भीतर भी कहीं गंगा और घाघरा की लहरें बराबर टकराती रहती है ।" [35]

केदारनाथ सिंह का यह दौर प्रयोगवाद के ठीक बाद का 'नई कविता' का दौर था, जब युवा कवि आमतौर पर बुद्धि-विवेक को तिलांजली देकर भावुकता की प्रतिष्ठा करता दिखाई पड़ता था । केदारनाथ सिंह ने ऐसा नहीं किया, शायद इसलिए कि उनका छायावादियों का सा महिमामण्डित अतीत विलुप्त न हो जाये । उदाहरण के लिए उनकी एक कविता दुपहरिया निम्नलिखित है:-

"झरने लगे नीम के पत्ते बढ़ने लगी उदासी मन की ।
उड़ने लगी बुझे खेतों में झुर-झुर सरसों की रंगीनी ।
धूसर धूप हुई मन पर ज्यों सुधियों की चादर
अनबीनी ।"[36]

इन गीतों एवं अन्य छोटी रचनाओं के माध्यम से केदारनाथ सिंह ने अपनी विलक्षण कल्पना शक्ति का प्रमाण दिया है । क्योंकि 'कल्पना' रचनात्मक शक्ति का दूसरा नाम है । इसका सर्वोत्तम आनन्द आत्मस्वीकार की भावना में होता है । ऐसा आनन्द जो अन्य किसी दार्शनिक अथवा रासायनिक प्रक्रिया से नहीं प्राप्त हो सकता । अन्ततः यह कहा जा सकता है कि 'कल्पना' आत्मज्ञान एवं वस्तु ज्ञान दोनों कराती है । वह अनुभूति के सूत्र से 'आत्म' से 'पर' को जोड़ने का काम करती है ।

*****

चतुर्थ अध्याय : संदर्भ सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	संपादक /रचियता	पृ. संख्या
1.	आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि	डा. सुरेशचन्द्र 'निर्मल'	पृ. 37
2.	तार सप्तक (भूमिका)	अज्ञेय	पृ. भूमिका
3.	तार सप्तक (द्वितीय संस्करण)	अज्ञेय	पृ. वही
4.	तार सप्तक नेमिचंद्र जैन	अज्ञेय	पृ. 9-10
5.	दूसरा सप्तक	भवानी प्रसाद मिश्र	पृ. 9
6.	वही	वही	पृ. 25
7.	दूसरा सप्तक	शकुन्त माथुर	पृ. 47
8.	नई कविता	डा. कांति कुमार	पृ. 8
9.	नये कवि: एक अध्ययन	डा. संतोष कुमार भवानी	पृ.
10.	तीसरा सप्तक (वक्तव्य)	केदारनाथ सिंह	पृ. 118
11.	वही	वही	पृ. 114
12.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 132
13.	वही	वही	पृ. 116
14.	उत्तर केदार	सुधीश पचौरी	पृ. 26
15.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 111
16.	वही	वही	पृ. 121
17.	वही	वही	पृ. 127
18.	वही	वही	पृ. 114

19.	वही	वही	पृ. 115
20.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	तीसरा सप्तक	पृ. 210
21.	कुवर नारायण	तीसरा सप्तक	पृ. 150
22.	विजयदेव नारायण साही	तीसरा सप्तक	पृ. 176
23.	तीसरा सप्तक	केदारनाथ सिंह	पृ. 137
24.	अनागत (तीसरा सप्तक)	केदारनाथ सिंह	पृ. 111
25.	प्रयाग नारायण त्रिपाठी	तीसरा सप्तक	पृ. 8-9
26.	कीर्ति चौधरी	तीसरा सप्तक	पृ. 49
27.	मदन वात्स्तायन	तीसरा सप्तक	पृ. 95
28.	कुवंर नारायण सिंह	तीसरा सप्तक	पृ. 137
29.	विजयदेव नारायण साही	तीसरा सप्तक	पृ. 179
30.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	तीसरा सप्तक	पृ. 212
31.	कल्पना और छायावाद	केदारनाथ सिंह	पृ पुरोवाक
32.	वही	वही	पृ. 8
33.	ध्यानों का गीत (तीसरा सप्तक)	अज्ञेय	पृ. 127
34.	बादल ओ (तीसरा सप्तक)	अज्ञेय	पृ. 141
35.	वही	वही	पृ. 114
36.	दुपाहरिया (तीसरा सप्तक)	अज्ञेय	पृ. 123

*****

पंचम अध्याय

कवि के भाव जगत का अध्ययन

पंचम अध्याय

कवि के भाव जगत का अध्ययन

काव्य की आत्मा को साकार शरीर का रुप देने वाले पाँच तत्व होते हैं : शब्द, अर्थ, भाव, कल्पना एवं बुद्धि या विचार। शब्द, अर्थ के अतिरिक्त काव्य में, विशेष रुप से कविता में, भाव तत्व की विशेषता विद्यमान होती है। काव्य में भाव तत्व सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है। भाव कवि की कल्पना का प्रेरक भी होता है, एवं छन्द के स्वरुप का विधायक एवं शब्द प्रवाह के उत्स को खोलने वाला होता है। भाव संक्रामक भी होते हैं तथा उनकी अभिव्यक्ति दूसरों के हृदय में भी उसी प्रकार की अनुभूति जाग्रत करती है। भाव काव्य का ऐसा व्यापक तत्व है जो पाठक एवं श्रोता का संस्कार करता है। भाव को साकार रुप देने वाले शब्द, अर्थ और कल्पना है। भाव काव्य का प्रकृत रुप है। लोकगीतों का भाव-प्रधान रुप सर्वविदित है। भाव संगीतात्मकता का प्रेरक भी है।

सामान्यत: यह देखा गया है कि कवि अपनी कुछ विशिष्ट और प्रबल आवश्यकताओं के अनुसार कुछ विशेष भाव श्रेणियों को ही प्रकट करता है, जो उसके जीवन के स्थायी भाव होते हैं। उन भावों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए वह अथक परिश्रम करता है, उसके उपरान्त ही वे भाव संगठित रुप में प्रकट होते हैं। 'गजानन माधव मुक्तिबोध' भावों के महत्व को प्रकट करते हुए कहते है :-

"रचना प्रक्रिया से अभिभूत कवि जब भावों की प्रवहमान संगति संस्थापित करता चलता है, तब उस संगति की संस्थापना

में उसे भावों का सम्पादन यानी एडीटिंग करना पड़ता है । यदि वह इस प्रकार भावों की काट-छाँट न करे, तो मूल प्रकृति उसे सम्पूर्ण रुप से अपनी बाढ़ में बहा देगी, और उसकी कृति विकृति में परिणत हो जायेगी । अनुभवी कवि अभ्यन्तर भाव-सम्पादन का महत्व जानता है ।"[1]

डॉ. नगेन्द्र ने भी भाव तत्व की महत्ता को स्वीकारा है । इस सम्बन्ध में उनके विचार इस प्रकार है :-

"यह शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित ऐसी मानस-छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रही है ।"[2]

भाव तत्व की उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए; यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि किसी कवि की रचनाओं को समझने से पहले उसके भाव जगत को परखा जाय । कवि केदारनाथ सिंह की सच्चाई यह है कि उन्होंने अपने अध्ययन और अनुभव से जिन आधुनिकताओं को अर्जित किया है उसमें उनकी जड़ों से आयी हुई स्मृतियाँ और भाव भी चुपचाप शामिल हैं । कवि, जब अपनी इन स्मृतियों को टटोलता है, तो उसका भाव जगत उभर आता है । कवि केदारनाथ सिंह कहते हैं :-

"अपनी स्मृतियों को कुरेदता हूँ तो वहाँ इसका एक साँचा पहले से ही मौजूद है । मैंने अपनी बस्ती की जिस पाठशाला में शिक्षा ग्रहण की थी, वहाँ कोई घड़ी नहीं थी । उन दिनों घड़ी के होने का सवाल ही नहीं था । इसलिए दोपहर के खाने की छुट्टी तब होती थी, जब दुपहरिया के फूल खिल जाते थे । ये छोटे-छोटे, लाल-लाल फूल होते थे, जिन्हें इसी नाम से जाना जाता था । खाने की छुट्टी का समय और दुपहरिया के फूल के खिलने में जो रिश्ता था, वह हमारे लिए एक चमत्कार की तरह होता था-मानों

दुपहरिया के फूल दोपहर के समय का सृजन करते हों। मैंने समय को इसी तरह जानना सीखा था और जिस भाषा में सीखा था, वह अजब ढंग से प्रकृति और मनुष्य की मिली-जुली भाषा थी।" [3]

साहित्य निर्माण में तीन मुख्य तत्व होते हैं । जिनका संबंध सीधे-सीधे मनुष्य के परिवेश से होता है । केदारनाथ सिंह का मानना है कि गहरे पैठकर देखने पर साहित्यिक निर्माण में तीन प्रमुख तत्व सामने आते हैं –

१. संवेदना

२. भाव

३. विचार

संवेदना का सम्बन्ध मानव की मौलिक वृत्तियों से है। वह सबसे कम परिवर्तनशील है। इसीलिए उसका प्रभाव सबसे अधिक तीव्र होता है। परिस्थितियों के बदलने के साथ-साथ संभव है कि कुछ पुरानी संवेदनाएं मर जाएं, कुछ नई पैदा हो जाएँ, अथवा कई अस्पष्ट सी संवेदनायें मिलकर एक नई, पहले से अधिक तीव्र संवेदना का रुप धारण कर ले, पर साहित्य में आदिम से आदिम संवेदना का प्रभाव भी अक्षुण्य रहता है।" [4]

भाव ~~विचार~~ को परिभाषित करते हुए केदारनाथ सिंह आगे लिखते हैं:-

"भाव संवेदना की अपेक्षा कम प्रकृत और अधिक परिवर्तनशील है। उनका सम्बन्ध मानव सभ्यता के विकास के साथ है। सभ्यता तथा संस्कृति की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य के अन्तर्जगत में भी विकास होता गया और इसी अल्पन्तर विकास का नाम भाव है।" [5]

वे आगे लिखते हैं कि :-

"विचार, संवेदना और भाव दोनों की अपेक्षा अधिक परिवर्तनशील होते हैं। भौतिक परिवर्तन से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसीलिए एक युग के विचार दूसरे युग को उतना प्रभावित नहीं करते, जितना भाव या संवेदना।"[6]

केदारनाथ सिंह की सर्जन यात्रा 'तीसरे सप्तक' से आरम्भ होकर आज भी अनवरत जारी है। पचास वर्षों के इस लम्बे सफर में उन्होंने कई काव्यान्दोलनों के उतार-चढ़ाव को भी देखा। केदारनाथ सिंह का लेखन मनमौजी की बात को चरितार्थ करता है, यानी जब मन हुआ तो लिखा वरना नहीं। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी रहा कि उन्होंने लेखन को ख्याति का साधन नहीं माना वरन् उसकी साधना की। "जमीन पक रही है" संग्रह की एक रचना 'नाम' में केदारनाथ सिंह के भाव साफ- साफ सामने आये हैं :-

"नाम कमाने की धुन में
जब यहाँ तक आया
तो अचानक पाया
कि हर नाम एक घोंसला है
जिसमें कोई चिड़िया अंड़ा नहीं देती।"[7]

अपने इस मनमौजी लेखन में उन्होंने जीवन-जगत के विविध पक्षों को अपनी कविता का विषय बनाया, चाहे वह राजनीति हो या संस्कृति या कोई दूसरा विषय ही क्यों न हो। लेकिन उनकी आत्मा मूल रुप से गाँव की माटी से ही जुड़ी रही, जिसे वे आज भी नहीं भूलें हैं। सुविधा की दृष्टि से उनके काव्य विषयक विचारों को निम्न रुपों में देखा जा सकता है :

5.1 परिवेशगत यथार्थ

हमारा संदर्भ चाहे अधुनातन हो या प्राचीन-किसी भी युग के साहित्य-सर्जन की व्याख्या करने के लिए परिवेश संबंधी जानकारी का होना अत्यन्त आवश्यक होता है।

सामान्यत: परिवेश का निर्माण देश और काल के योग से होता है किन्तु वह व्यक्ति-विशेष पर निर्भर है कि वह इसमें से किसे अधिक महत्व देता है। महत्व देने की बात व्यक्ति के वश की बात नहीं यह उसकी अन्तरचेतना एवं आन्तरिक प्रवृत्तियों पर निर्भर है कि वह किस ओर अधिक झुकता है। एक ही परिवेश में रहते हुए दो साहित्यकार उससे समान रुप से प्रभावित नहीं होते।

अधुनातन परिवेश मध्यकालीन परिवेश से भिन्न है- कला के मानदण्ड और लक्ष्य ही बदल गये हैं। आज के परिवेश में मित्रता, एकता का भाव एवं स्थिरता के स्थान पर निखराव, उखड़ापन और अस्थिरता अधिक है, इसलिए उस बिखराव और उखड़ेपन को अंकित करने के लिए कलाकार ऐसी ही शैली को अपनाता है। वैसे तो अधुनातन चित्रकार का व्यक्तित्व भी अलग है किन्तु कुल मिलाकर वह अधुनातन परिवेश को प्रकट करने में समर्थ है।

परिवेश का व्युतर्व्यत्त अर्थ है - परि+विश+घञ् । संस्कृत हिन्दी-कोश में परिवेश का अर्थ इस प्रकार दिया गया है : 'कोई वस्तु जो घेरती है या रक्षा करती है।' [8]

'बृहत हिन्दी कोश' के अनुसार परिवेश की परिभाषा इस प्रकार है : "घेरना, बेष्टन, हल्के बादलों की विशेष स्थिति के कारण सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर बन जाने वाला एक प्रकार का मंडल, किरणों का वह मंडल जो कभी-कभी सूर्य या चन्द्रमा के

चारों ओर बन जाता है ;

"परिधि : देवताओं आदि के मुख मंडल के चारों ओर का प्रकाश वृत्त, सभा मंहल; किसी रचनाकार का वह विशिष्ट वातावरण जो उसके लेखन से संसक्त होता है और उसे प्रभावित करता है।"[१]

किसी भी रचनाकार की रचना प्रक्रिया में परिवेश का विशिष्ट स्थान होता है। परिवेश की ऊर्जा से ही वह रचनाकर्म में निरत होता है। केदारनाथ सिंह मूल रुप से ग्रामीण परिवेश से प्रभावित है, जिनमें उनके खेत – खलिहाऩ, बाग-बगीचे और नदी-नाले आदि हैं। इसके साथ ही उनकी पारिवारिक एवं तत्कालीन सामाजिक एवं साहित्यिक विचारधारा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। केदारनाथ सिंह गाँव में पैदा हुए, पले एवं बड़े हुए, अत: उनकी रचनाओं पर इस परिवेश की अमिट छाप पड़ी है। गाँव के समस्त क्रिया-कलाप, रीति-रिवाज रहन-सहन एवं वहाँ की प्रकृति इनके जीवन में रच-पच गई है। पद्मा सचदेव से अपनी बातचीत के दौरान केदारनाथ सिंह अपने ग्रामीण परिवेश की स्मृतियों को याद करते हुए कहते हैं :

"क्या बताएं पद्मा जी उन दिनों नदी में बाढ़ भी आती तो सुन्दर लगती। हमारा गाँव उंचाई पर है। बाढ़ आने पर टापू-सा घिर जाता है। सुरक्षा के लिए साँप,घड़ियाल बैठक तक चले आते हैं। तब वो शत्रु नहीं होते, मेहमान होते हैं, आश्रित होते हैं। प्रकृति का जो प्रभाव मेरे मन में है उसमें सबसे ज्यादा नदी ही मन में घुमड़ती है। नदी और मेरी दादी। दादी के साथ सोता था। दादी बहुत प्यारी थीं। यूँ लगता था-अगर संसार है तो वो दादी के जितना ही है। जाड़े के मौसम में भी स्त्रियां भागड़ नाले में मुँह अँधेरे

नहाने जातीं तो गाती हुई जातीं। अधजरो व्यक्तित्व पर गंगा मैया की स्तुति में गाए जाने वाले वो गीत, वो धुन पूरे वजूद पर छा जाती। जैसे परियाँ कहीं से ऊँ-ऊँ कर रही हों। मैं दादी को पूछता, "ये कौन गाता है ?" दादी बतातीं तो लगता दादी से बड़ा ज्ञानी कोई नहीं हैं। स्वर की शब्द की संगीत की चेतना वहीं से जगी।" [10]

केदारनाथ सिंह आगे कहते हैं :-

"बचपन में मुझे बैल गाड़ी बहुत आकर्षित करती थी। बारिश में जाती बैलगाड़ी हाँकते-हाँकते गाता हुआ गाड़ीवान, मूर्ख की तरह जुगाली करते-करते चल रहे बैल, कभी दुल्हन लेकर ढकी-ढकी जाती बैलगाड़ी-पता नहीं दुल्हन कैसी होगी? बैलगाड़ी का चित्र देखकर बड़ा रोमांच होता था। और नदी तो भीतर ही बहती है, उसी के किनारे-किनारे यादों की बैलगाड़ी धीरे-धीरे निरन्तर चलती ही रहती है।" [2]

उक्त कथन से संबंधित उनकी अनेकों रचनाएं हैं जिनमें कि ग्रामीण परिवेश की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

जैसा कि मैंने प्रथम अध्याय में संकेत किया है कि परमानंद जी ने केदारनाथ सिंह को वाराणसी से बुलाकर गोरखपुर में हिंदी प्रवक्ता के रुप में नियुक्ति कराई और साथ ही परिवार की तरह उनके साथ अपने संबंधों को कायम रखा। गोरखपुर से आने के बाद केदारनाथ सिंह और परमानंद जी के बीच पत्राचार का सिलसिला बराबर चलता रहा। १९८५ के एक पत्र में केदारनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की अमिट छाप का चित्रण किया है। जहाँ से कि उनको लिखने की प्रेरणा मिलती है और साथ ही नगरीय संस्कृति की आपाधापी जिन्दगी से थोड़े दिन के लिए ताजगी। यह पत्र उन सभी भावों को प्रस्तुत करता है जिनको कवि ने दिल की

गहराई से महसूस किया है। केदारनाथ सिंह जी लिखते है :-

"हाँ, अभी दो-चार दिन पहले कुल-सचिव का पत्र मिला है - लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय मुगलसराय में मौखिकी के संबंध में। 30 मई को मौखिकी सम्पन्न करने वहाँ जा रहा हूँ। उसके बाद दो एक दिन बनारस (डा.बच्चनसिंह के निवास पर) रहकर फिर गाँव आऊंगा। कुछ दिन-कम से कम 15-20 दिन हवा पानी बदलने के लिए गाँव रहना चाहता हूँ। मुझे लगता है (और अब गहराई से लगने लगा है) कि गाँव के सात यह जो मेरा लगातार आने-जाने का अटूट रिश्ता है वही मेरे भीतर के कवि को जिलाए हुए है। सिर्फ मेरे ही भीतर के कवि को नहीं - हम सबके भीतर रचनाकार को जो कहीं न कहीं आज भी उस करइठ मिट्टी से जुड़े हुए हैं। दिल्ली में इस जुड़ाव की अहमियत कुछ ज्यादा ही तल्खी के साथ महसूस होती है।" [12]

केदारनाथ सिंह ने अपनी रचनाओं में उस ग्रामीण जीवन परिवेश और जमीन की गंध, धूल-मिट्टी, खेत-खलिहान, नदी-कद्दार, गाँव और गाँव से जुड़े तमाम भावों एवं स्मृतियों को उसी रुप में चित्रित किया है :-

"मेरे गाँव से दिखाई पड़ता है
माझी का पुल
मैंने पहली बार
स्कूल से लौटते हुए
उसकी लाल-लाल ऊँची मेहराबें देखी थीं
यह सर्दियों के शुरु के दिन थे
जब पूरब के आसमान में
सरसों के झुण्ड की तरह डैने पसारे हुए

धीरे-धीरे उड़ता है माँझी का पुल ।" [13]

एक अन्य कविता "चिट्ठी" में कवि ने अपने मूल स्थान अर्थात अपने 'चकिया' से अपने अमिट लगाव का साफ-साफ खुलाशा किया है

निष्कर्ष :- समकालीन कविता का सृजन लगभग तीन-चार पीढ़ियों से लगातार होता आ रहा है। हर एक कवि ने अपने जीवनानुभवों को विविध रुपों में रेखांकित किया है, जिसमें गाँव एवं ग्रामीण परिवेश मुख्य रुप से परिलक्षित हुआ है। केदारनाथ सिंह की अधिकांश रचनाएं ग्रामीण परिवेश से जुड़ी है जिनकी अपनी एक अलग भाव-भूमि है। भावों एवं विचारों को व्यक्त करने का उनका अन्दाज बाकी सभी रचनाकारों से भिन्न हैं। मैं तो उन्हें श्रमिक एवं किसानों का कवि कहना चाहूँगा।

5.2 प्रकृति-सौन्दर्य :-मानव एवं प्रकृति का संबंध चिर काल से रहा है, जिसके सान्निध्य में रहकर उसने जीवन-यापन करना सीखा। इसके साथ ही उसने विभिन्न कलाओं का सर्जन स्वान्तः सुखाय परहिताय और मनोरंजन के लिए किया। इतिहास गवाह है कि प्राचीन काल की सम्पूर्ण कलाओं में भी प्रकृति का चित्रण ही विविध रुपों में किया गया है। इसका कारण है कि उस समय प्रकृति के अतिरिक्त मनुष्य के पास कोई अन्य साधन नहीं थे। अतः विभिन्न कलाओं में प्रकृति को विशेष स्थान दिया गया।

साहित्य में प्रकृति के प्रभाव को विशेष रुप में देखा जा सकता है। प्राचीन काल से लेकर छायावाद तक प्रकृति कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक थी। जिसके प्रभाव को हम समकालीन कविता तक देखते है, लेकिन समय एवं मानवीय मूल्यों के

परिवर्तन के कारण कविता में प्रकृति चित्रण उस रुप में नहीं हो रहा हैं, जिस रुप में कि पहले हुआ है ।

भौतिकता के प्रभाव के कारण मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता गया । फिर भी, अभी भी, उसकी दौड़ अधूरी ही है । भौतिकता का प्रभाव गाँवों की अपेक्षा शहरों पर अधिक हुआ । जिस दौर में केदारनाथ सिंह सर्जन में रत थे उस समय तक गाँव का आदमी प्रकृति से बहुत करीब था । लगभग गाँव की सारी जरूरतें प्रकृति से पूरी हो जाती थी । केदारनाथ सिंह गाँव के जीवन से पूरी तरह जुड़े थे, जैसा कि उन्होंने स्वीकार भी किया है कि दिल्ली जैसे महानगर में रहते हुए भी वे गाँव को नहीं भुला पाये है । इसका उल्लेख मैंने द्वितीय अध्याय में किया है । गाँव के नदी-तालाब, बाग, जंगल, पशु-पक्षी आदि के क्रिया-कलाप केदारनाथ सिंह के जीवन में बस गए थे । जो कि विभिन्न बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं ।

प्रारम्भिक कविताओं में प्रकृति का अनूठा चित्रण किया है । गेयता का गुण होने के कारण इनकी कविता उस समय काफी लोकप्रिय हुई । केदारनाथ सिंह ने कविता की शुरुआत गीतों के माध्यम से की । उनकी निम्न कविताएं जो 'तीसरे सप्तक' में प्रकाशित हुई, अपने समय की बहुचर्चित कविताएं है :- 'दुपहरिया', 'बसन्त गीत', 'धानों का गीत', 'फागुन का गीत', 'शरद प्रात', 'कुहरा उठा', 'बादल ओ', 'दीप-दान', 'पात नये आ गये', 'पतझड़ की एक शाम', 'सूर्यास्त', 'मार्च की सुबह', 'चाँदनी', 'पपीहा दिन' आदि ।

'पतझड़ की एक शाम' कविता में शांत हवा में कवि के मन की पर्तें समुदी दस्तक सुनती हैं कवि कहता है :

"सभी ओर से

अन्तरतम के किसी कोण पर

झुका हुआ-सा

सुनता प्रतिपल

एक समुद्री दस्तक

मन की पर्त-पर्त पर

धीमें-धीमें ।" [14]

समुद्र की लहरें कवि के मन पर एक के बाद दस्तक देती है । यहाँ प्रकृति एवं कवि के बीच एक रिश्ता सा कायम होता है ।

एक और रचना 'सूर्यास्त' में हॉलाकि बिम्ब-विधान की प्रवृत्ति अधिक है परन्तु प्रकृति स्वत: ही मुखरित होती हुई प्रतीत होती है ।

"दिन ढलने के बाद ।

लाल, भूरी

हरी, नीली

पीत,

संख्यातीत

फरफराती

धूप की उल्टी पताकाएं ।" [15]

हिंदी साहित्य में प्रात: और सायंकाल का भरपूर चित्रण हुआ है लेकिन केदारनाथ सिंह के इस वर्णन की अपनी अनूठी कला है । जिसमें धूप को विविध वर्णी रंगों में प्रस्तुत किया है । इसके माध्यम से सायंकाल का एक बिम्ब हमारे सामने खड़ा हो उठा है ।

प्रकृति का सजीव चित्रण करती उनकी एक और कृति

'पपीहा दिन' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"हर डगर बरबस
मँहक उठेगी ।
धूल, पत्तों, अंधड़ों में
ये तुम्हें भयकाएंगे
दौड़ायेंगे
छिप जाएँगे
इनका ठिकाना क्या
यहाँ बैठे, वहाँ गाया,
उधर जाकर छा गए ।
ये पपीहा–दिन, आ गए है ।" [16]

वसंत ऋतु के आगमन पर कवि प्रफुल्लित है, प्रसन्न है । कवि कहता है कि पपीहा के दिन आ गये हैं । सभी डगर, सभी रास्तों पर फूल खिल उठेगे एवं वे महँक उठेगें । ये रास्ते इतने खिल उठेगें कि राही को भटका सकते हैं ।

प्रकृति को नजदीक से निहारती उनकी एक और रचना है "बादल ओ" । इस कविता में कवि ने एक ऐन्द्रिय बिम्ब प्रस्तुत किया है । कवि ने रुप–विधान, वर्ण–चित्रण, एवं उसकी गन्ध को चित्रित करने का पूरा प्रयास किया है । कवि कहता है :

"ओ सुनो रंगवर्षी बादल
ओ सुनो गंधवर्षा बादल
हम तुम्हें माँगते है ।
हम अधजन में धानों के बच्चे
तुम्हें माँगते है ।" [17]

एक और अन्य कविता 'चाँदनी' में प्रकृति एवं बिम्ब के

साथ कवि का अनुभव भी सामने आता है । कवि का कथन है कि

"किसी शिखर पर
एक टूटी नाव–सा
मुझको उठाकर
फेंक देगा
यह पिघलते सितारों का
अन्तहीन बहाव ।" [18]

ये सभी कविताएं न केवल लोकजीवन एवं प्रकृति–चित्रण को ही प्रस्तुत करती है, बल्कि इनकी धुनें भी प्रायः लोक गीतों वाली है । ऐसे गीतों में ग्राम–जीवन और ग्राम–प्रकृति के नए और तीक्ष्ण चित्र अंकित किए गए हैं । पतझड़ जैसी शाम का भी केदारनाथ सिंह ने अनूठा प्रयोग किया है :–

"वह पतझड़ जैसी एक शाम थी
मैं चला जा रहा था अकेला
कि अचानक दृष्टि पड़ी
कांटों से लदा वह खंड़ा है उदास
सड़क के किनारे
बबूल है–– मैंने कांटों से पहचाना
और उसे देखकर ऐसा कुछ हुआ
कि रख दिया प्रस्ताव
चलो, कनॉट प्लेस चलें ।" [19]

इसी प्रकार उनकी 'विदागीत' नामक कविता में भी सायंकाल की प्रकृति और प्रेम की बड़ी सजीव अभिव्यक्ति हुई है :–

"धूप तकिये पर विघल कर
शब्द कोई लिख गयी है,

एक तिनका, एक पत्ती, एक गाना
साँझ मेरे झरोखे की
तीलियों पर सुनो तो
खुले जूड़े में तुम्हारे
बौर पहला बांध दूँ।
हाँ यह निमन्त्रण बाँध दूँ।"[20]

'बिना नाम की नदी', 'सूर्य', 'दोपहर', 'बारिश', 'सूर्यास्त', 'बसन्त', 'शहर में रात', 'बालू का स्पर्श' आदि कविताएं प्रकृति के विभिन्न रुपों पर आधारित है। जिनमें कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है, साथ ही प्रकृति के मनोरम दृश्य भी दर्शाए गए हैं।

'तीसरा सप्तक' एवं 'अभी बिलकुल अभी' संग्रहों की कविताओं में प्रकृति निरन्तर विद्यमान है। अपनी इन रचनाओं में वे प्रकृति सौंदर्य के माध्यम से किसी सांकेतिक अर्थ की तलाश करते प्रतीत होते हैं।

परिवेश और जमीन की गंध एवं धूल-मिट्टी, खेत-खलिहान, नदी-कद्दार तथा गाँव और गाँव से जुड़े तमाम स्मृति बिम्बों को इन्होंने उसी रुप में चित्रित किया है :-

"मेह बरस कर खुल चुका था
खेत जुतने को तैयार थे
एक टूटा हुआ हल पेड़ पर पड़ा था
और एक चिड़िया बार-बार-बार-बार
उसे अपनी चोंच से
उठाने की कोशिश कर रही थी।"[21]

5.3 प्रेमानुभूति

प्रेम प्रकृति का दूसरा रुप है । प्रकृति की गोद में पैदा हुए और पले केदारनाथ सिंह इस भाव से कैसे अछूते रहते । एक समय था जब उग्रता, प्रेम, विद्रोह, आक्रोश एवं विरोध कविता के मुख्य विषय थे । जिस कविता में ये तत्व न हों उसे कविता ही नहीं माना जाता था । ऐसा लगता था जैसे प्रत्येक कवि, कवि होने के साथ-साथ एक योद्धा भी है । हमारे जीवन में इस बात को लेकर सदैव युद्ध चलता रहता है कि कविता के भीतर कुछ बातें निर्धारित कर देनी चाहिए, या नहीं । कविता के भीतर कुछ बातें निश्चित कर देने से चेहरा विहीन कविता का रास्ता साफ एवं सरल होता दिखाई देता है ।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् रीतिवादी कविता में पहला हस्तक्षेप मुक्तिबोध ने किया । जिसे जीवन के सहज भाव (प्रकृति एवं प्रेम)के साथ नई ऊर्जा देकर नागार्जुन, केदारनाथ सिंह व त्रिलोचन जैसे कवियों ने आगे बढ़ाया । इसी परम्परा का विकास आज नए कवियों में दिखाई दे रहा है । जहाँ कविता जीवन का सच्चा एत्तं सुदृढ़ प्रेम रस से युक्त रुप दिखाने को तैयार है ! यहाँ मैं अपने विषय को सीमित रखने की दृष्टि से केवल केदारनाथ सिंह के काव्य में प्रेमानुभूति को मुख्य विषय बनाना चाहूँगा ।

कवि केदारनाथ सिंह को अपने गाँव से बेहद प्यार है और आज जब कि उन्हें शहर में रहते करीब-करीब चालीस वर्ष गुजर चुके हैं, तब भी वे गाँव को तनिक भी नहीं भूले हैं । प्रतिवर्ष नियमित रुप से गाँव जाते हैं और दस-पंद्रह दिन वहाँ रह कर आते है । एक साक्षात्कार के दौरान वीरेश चन्द्र जब उनसे पूछते हैं

कि वह कौन–सी चीज गाँव के जीवन में आजादी रखती है, जो गाँव के साथ इतनी शिद्दत से आपको जोड़ती है, तो केदारनाथ सिंह बताते हैं :–

"ऐसी बहुत–सी चीजें हैं। सिर्फ गाँव की प्रकृति ही नहीं, बल्कि गाँव के लोग, उनकी जिन्दगी का खालीपन और उनके खास तरह के अपने संघर्ष और उनकी अपनी वे विलक्षण समस्याएँ, जिन्हें शहर का आदमी ठीक से समझ भी नहीं सकता– ये सब मुझे रोकते, टोकते हैं। पर ज़ो चीज मुझे सबसे ज्यादा पकड़ती है वह है गाँव की जिन्दगी में अब भी बची हुई एक अजब–सी सामूहिकता, जो टूटते–टूटते भी काफी कुछ बची हुई है।" [22]

गाँव के प्रति कवि का प्रेम उनकी अनेकों कविताओं में स्वत: ही उमड़ आता है। उनकी कविता "चिट्ठी" कवि के इस प्रेम का खुलासा करती है :–

"शहर के
उस सबसे व्यस्त चौराहे पर
सबसे छिपाकर
मैं देर तक पढ़ता रहा
उस खाली–खाली चिट्ठी को
और सारी चिट्ठीमें
गूँजता रहा
चीखता रहा
बस एक ही शब्द
चकिया ! चकिया !" [23]

कवि अपने गाँव से अत्यन्त प्रेम करता है और यही कारण रहा कि शहर के सबसे व्यस्त चौराहे पर कवि बिना किसी

की फ़िक्र किये देर तक उस चिट्ठी को पढ़ता रहा जिसमें सिर्फ एक ही शब्द लिखा था। 'चकिया'।

कवि अपनी दादी से भी बहुत प्यार करता है। दादी एवं माँ के प्रेम की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं :-

"हर समय अपने होने का एहसास कराती, अपने पास बुलाती, हर वक्त काम में लगी हुई होतीं मेरी माँ। किसान-परिवार में अनगिनत काम। फसल आए तो उसे सुखाना, बनाना, सँवरना, सँभलना, माँ को बहुत काम थे। उनके होने का प्रमाण घर के हर कोने में था। इनके बीच मुझे गोद में लिए दादी हुक्का गुड़गुड़ाती रहती। हुक्के के धुएँ में दादी की साँस का सान्निध्य रहता। बड़ा सोंधा लगता था वो धुआँ। रात को दादी कहानियाँ सुनातीं। रात का सबसे बड़ा लालच था।" [24]

पिता का पुत्र के प्रति प्रेम उनकी एक रचना 'कुछ सूत्र जो एक किसान बाप ने बेटे को दिये' में झलकता है। यह कविता इस बात को प्रमाणित करती है कि केदारनाथ सिंह भी अपने पिताजी को अत्यन्त प्यार करते है और अपने पिता द्वारा दी गई हिदायतों को कविता के रुप में पिरो कर रखना चाहते हैं।

"मेरे बेटे
बुध को उत्तर कभी मत जाना
न इतवार को पच्छिम
और सबसे बड़ी बात मेरे बेटे
कि लिख चुकने के बाद
इन शब्दों को पोंछकर साफ़ कर देना
ताकि कल जब सूर्योदय हो

तो तुम्हारी पटिया

रोज की तरह

धुली हुई

स्वच्छ

चमकती रहे ।" [25]

कवि केदारनाथ सिंह पत्नी से बहुत प्यार करते थे। पत्नी को उन्होंने एक एक सांस के लिए तड़पता देखा है। जो उनकी कविता 'अड़ियल' साँस के माध्यम से प्रकट होता है :-

"उसकी हर साँस

हथौड़े की तरह गिर रही थी

सारे सन्नाटे पर

ठक् ठक् बज रहा था सन्नाटा

जिससे हिल उठता था दिया

जो रखा था उसके सिर हाने ।" [26]

पत्नी की असामयिक मृत्यु के कारण केदारनाथ सिंह टूट से गये थे, उन्हें पत्नी की कमी हमेशा खलती रही। यह कमी उनके अपनी पत्नी के प्रेम की द्योतक है।

"अगले बुधवार के बाद

हो सकता है पिछला शनिवार

तुम्हें बिल्कुल न याद रहे

हो सकता है तुम अपने शहर में घुसो

और तुम्हें लगे कि शहर

एक स्त्री की अनुपस्थिति का दूसरा नाम है ।" [27]

केदारनाथ सिंह की प्रेम से संबंधित कविताओं में प्रेम का आधुनिक रुप तो नहीं मिलता, क्योंकि कवि के गूढ़ बिम्बों एवं

प्रतीकों को पकड़ना जटिल कार्य है। फिर भी उनकी निम्न कविताओं को इस श्रेणी में रखा जा सकता है :– 'नये वर्ष के प्रति', 'एक प्रेम कविता को पढ़कर' 'जो एक स्त्री को जानता है', 'सादा पन्ना', 'अपनी छोटी बच्ची के लिए एक नाम', 'कुछ सूत्र जो एक किसान बाप ने अपने बेटे को दिये', आदि–आदि।

"एक प्रेम कविता को पढ़कर" कविता में कवि एक स्त्री के प्रेम से वंचित हो जाने का वर्णन करता है। स्त्री प्रेम–कविता से धीरे–धीरे बाहर हो जाती है। उसे लेकर कवि जो मोहक वितान रचता है, वह धीरे–धीरे छिन्न भिन्न हो जाता है। कवि कहता है :

"उसके आगे कोई पंक्ति नहीं थी
कोई शब्द नहीं था कविता में उसके आगे
सिर्फ स्त्री थी
सिर्फ उसके कंधे
उसकी पीठ
उसकी आवाज–सिर्फ स्त्री थी
जो पूरी की पूरी
अब कविता के बाहर खड़ी थी
और कविता को ध्वस्त कर रही थी।" [28]

आधुनिक हिंदी कवियों में केदारनाथ सिंह सबसे अधिक तीक्ष्ण संवेदना के कवि हैं। उनकी एक छोटी सी प्रेम कविता है "जाना"। जिसमें कवि की तीक्ष्ण संवेदना प्रकृट हुई है। "जाना" को कवि ने प्रेमिका के जाने की त्रासद पीड़ा बता कर सबसे खौफ़नाक क्रिया का नाम दिया है। कवि कहता है :

मैं जा रही हूँ–उसने कहा
जाओ मैंने उत्तर दिया

यह जानते हुए कि जाना

हिंदी की सबसे खौफ़नाक क्रिया है ।

यहाँ पर अगर कवि की संवेदना ध्यान से देखे तो पायेंगे कि जो तीक्ष्णता केदारनाथ सिंह में है वह हिन्दी की प्रेम-कविता में उनसे पहले कहीं नहीं दिखलाई पड़ी ।

हर मानवतावादी कवि जैसे मनुष्य को प्यार करता है, वैसे ही प्रकृति को भी, क्योंकि वह जानता है कि प्रकृति के बिना मनुष्य अधूरा है। केदारनाथ सिंह ने प्रकृति-प्रेम की अनेकों कविताएं एवं गीत लिखे है । जिनका जिक्र मै इस अध्याय में कर चुका हूँ ।

केदारनाथ सिंह अपनी कविताओं में उस दुनियां के लोगों से बेहद प्यार करते हैं । वह दुनिया जो गाँव और शहर दोनों के मेल से बनी है । कवि की प्रेम संबंधी कविताओं से यह पता चलता है कि वे कोमल संवेदनाओं के कवि है । उन्होंने अपनी इन कविताओं के माध्यम से पाठक के मन में भी कोमल भावना जगाई है ।

5.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन

समकालीन कविता का सृजन तीन चार दशकों से लगातार होता आ रहा है। जिसका संबंध विविध रुपों में हमारे जीवन, समाज एवं संस्कृति से रहा है। जीवन संबंधों में बहुस्तरीयता एवं जटिलता होने के कारण बड़े से बड़े कवि से भी जीवन एवं समाज का कोई न कोई पक्ष छूटता रहा है। जैसे मुक्तिबोध किसान-जीवन को व्यक्त नहीं कर पाए, तो नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन युग की जटिलताओं में गहरे नहीं

पैठ सके, जो व्यक्ति एवं सामाजिक मन के भीतर उलझती सुलझती रहती है।

केदारनाथ सिंह के अन्त:करण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का रचाव कुछ विशिष्ट ढंग से हुआ। जिसमें लगाव की कसक तो बहुत अधिक है लेकिन सम्प्रेषण की दुरूहता है। यही कारण है कि वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के चितेरे होते हुए भी आम पाठक के हृदय के कवि नहीं बन सके।

आजादी के बाद हमारी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हुए। जिनका जिक्र कवि ने स्वयं किया है :-

"सामाजिक क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए हैं उनकी गति बहुत धीमी रही है और पिछले दिनों इनमें कई उलझनें भी पैदा हुई हैं। इन उलझनों का संबंध कहीं जाति से है तो कहीं किसी विशेष समुदाय से। ये समुदाय किसी एक जाति या संप्रदाय के नहीं बल्कि पूरे समाज में अलग-अलग ढंग से कभी राजनीति की आड़ लेकर तो कभी किसी अन्य प्रकार की ओट बनाकर उसके पीछे सक्रिय रहे हैं। मुझ जैसा व्यक्ति, जिसने स्वाधीनता का प्रथम सूर्योदय अपने किशोर नेत्रों से देखा था, इस पूरी स्थिति में अपने आप को एक अजब ढंग से विचलित और निरुपाय पाता है। मेरा खयाल है कि इस बीच समाज का जो तबका लगातार सबसे ज्यादा प्रभाव हीन होता गया है, वह है बुद्धिजीवी वर्ग यानी जो किसी न किसी स्तर पर शब्द कर्म से जुड़ा है।" [29]

समाज के समग्र विकास की अवधारणा उससे जुड़ी हुई प्रक्रिया से बलवती होती है। पर यह इस बात पर निर्भर करता है कि सामाजिक परिवर्तन की कारक शक्तियाँ कौन सी दिशा लेती

हैं। हाँ, एक रूकावट है कि भाषायी समाज, में शब्द और श्रोता के बीच का संबंध ज्यादा समीप का होता है। जहाँ साहित्य और कला उस समाज के अस्तित्व से जुड़े होते हैं।

'तार सप्तक', 'दूसरे सप्तक' एवं सप्तक के बाहर के कवियों ने अपने-अपने ढंग से सामाजिक एवं संस्कृतिक जीवन को चित्रित किया है। जिसमें मुख्यत: त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध, शमशेर, रघुवीर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि है। कवि त्रिलोचन को केदारनाथ सिंह अपना काव्य गुरु मानते हैं। और अन्य रचनाकारों से भी केदारनाथ सिंह कहीं न कहीं प्रभावित दिखाई देते हैं। नागार्जुन त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल जमीनी रचनाकार माने जाते है। इसमें केदारनाथ सिंह जनपद की धरती के कवि त्रिलोचन से विशेष रुप से एवं ग्रामीण जीवन के चितेरे नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल से सामान्तया प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में कहे तो "जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख" की पक्तियाँ कवि त्रिलोचन के उपर चरितार्थ होती है :-

"उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला-नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है, कब सूखा है
उसके जीवन का सोता इतिहास ही बता
सकता है, वह उदासीन बिलकुल अपने से।" [30]

जिस ग्रामीण अंचल की दशा का चित्रण त्रिलोचन सीधे सरल शब्दों में करते हैं उसी को केदारनाथ सिंह बिम्बों के माध्यम से वाणी देते हैं। दोनों का दर्द एक है लेकिन अभिव्यक्ति का

माध्यम अलग है । 'न होने की गन्ध' कविता में कवि केदारनाथ सिंह ने गाँव की गरीबी का चित्रण बिम्बों के द्धारा किया है :-

"यों हम हो गये शुद्ध
यों हम लौट आये
जीवितों की लम्बी उदास बिरादरी में
कुछ नहीं था
सिर्फ़ कच्ची दिवारों
और भीगी खपरैलों से
किसी एक के न होने की
गंध आ रही थी ।" [31]

त्रिलोचन और केदारनाथ सिंह के संबंधों एवं काव्य सर्जन संबंधी प्रेरणाओं आदि का जिक्र मैं इससे पूर्व के अध्यायों में कर चुका हूँ। यहाँ मैं नागार्जुन और मुक्तिबोध के काव्य बोध की चर्चा करना ही तर्क संगत समझता हूँ।

'नागार्जुन' की अधिकांश कविताएँ मध्यवर्गीय समाज के निचले स्तर को चित्रित करती हैं। वे उपेक्षित, असहाय जिन्दगी के चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते है :

"फटी दरी पर बैठा है चिर रोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ भार से अलस शिथिल है अंग-अंग
मुँह पर उसके मटमैली आभा
छप्पर पर बैठी है बिल्ली
किसके घर के जाने क्या कुछ खा आयी है
चला चलाकर जीभ स्वाद लेती होंटो का ।" [32]

मुक्तिबोध तीखे सामाजिक अनुभवों के कवि है, जिन्हें

कि मनुष्य की अदम्य जीवन शक्ति एवं उसकी ऊर्जा पर पूर्ण विश्वास है। जहाँ मुक्तिबोध अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को कल्पना के माध्यम से व्यक्त करते है वहीं पर नागार्जुन सीधे लोक जीवन से जुड़ते है। इनकी रचनाओं में आम आदमी की रोजमर्रा के जीवन की पीड़ा व्यक्त हुई है :-

"भले ही उजाड़ और
चाहे जितनी जन-हीन
लगे यह पूरी भूमि
कुशल व चाहे जितना बलवान
वह यातुधान हो,
लोग अभी जिन्दा हैं जिन्दा।" [33]

गांधीवादी विचारक भवानी प्रसाद मिश्र दूसरे सप्तक के कवियों में आते हैं। विशुद्ध रुप से व्यक्तिगत चेतना से न जुड़कर लोकजीवन की व्यथा कथा व्यक्त करते है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को भवानी प्रसाद मिश्र ने भी अपनी रचनाओं का प्रमुख विषय बनाया। लोक-सम्पृक्ति उनकी रचनाओं की विशेषता रही है। वे बिना किसी नारेबाजी के सामान्य जन का चित्रण करते है :-

तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं
लाल हैं पर भाग पत्थर से लड़े हैं
धूल के हीरे नहीं अब धूल हैं ये
फूल जंगल के नहीं अब शूल है ये।

'दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में वे लिखते है :-

"छोटी सी जगह में रहता था, छोटी-सी नदी नर्मदा के किनारे, छोटे से पहाड़ विन्ध्याचल के आँचल में, छोटे-छोटे

साधारण लोगों के बीच। एकदम घटना–विहीन, अविचित्र मेरे जीवन की कथा है। साधारण मध्यवित्त के परिवार में पैदा हुआ, साधारण पढा–लिखा और काम जो किये वे भी असाधारण से अछूते।" [34]

'दूसरे सप्तक' के ही रघुवीर सहाय मूलत: राजनीतिक चेतना के कवि माने जाते हैं। वे सामाजिक व्यवस्था के मूल में राजनीति को महत्व देते हैं। उनका मानना है कि राजनीति ही सामाजिक व्यवस्था को बदल सकती है। वे अपनी रचनाओं में भीड़, संसद, चुनाव, मतदान, जुलूस, नारा, सड़क, बाजार आदि की बात करते हैं। आज के मनुष्य एवं सामाजिक संबंधों का तानाबाना बुनते वे कहते हैं :–

"मरते मनुष्य के बारे में क्या करूँ, क्या करूँ मरते मनुष्य का

इस महान देश में क्या करें, कहाँ जायें
घबराते लड़के गदरती औरत लेकर

क्या तोडूँ क्या तोडूँ जो मुझे अपनापा मिले समुदाय में।" [35]

'तीसरे सप्तक' के कवियों में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का महत्वपूर्ण स्थान है। पत्रकारिता से जुड़ने के कारण इनकी काव्यदृष्टि यथार्थ पर आधारित है। इनकी रचनाओं में प्रेम, प्रकृति, राजनीति और लोकजीवन का अद्भुत समन्वय पाया

जाता है । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में लोकजीवन के एक-से-एक चित्र मिलते हैं । उनका लगाव ग्राम्य जीवन के प्रति लगातार बना हुआ है । सामाजिक एवं सांस्कृतिक चित्रों के लिए उनकी कविता अपने समकालीनों में विशेष रुप से उल्लेखनीय समझी जाती है । 'सुहागिन का गीत', 'गाँव की शाम का सफर', 'नये साल पर', व 'बाँस गाँव' आदि कविताएं समाजिकता का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं । शरणार्थी कविता में कवि को याद करने की कोशिश के बाद भी याद के नाम पर अपना सामाजिक परिवेश ही याद आता है । कवि कहता है :-

"मेरा जूता
जगह-जगह से फट गया है
धरती चुभ रही है
मैं रूक गया हूँ
जूते से पूछता हूँ
आगे क्यों नहीं चलते?
जूता पलकर जबाब देता है-
'मैं अब भी तैयार हूँ
यदि तुम चलो ।'
मैं चुप रह जाता हूँ
कैसे कहूँ कि मैं भी
जगह-जगह से फट गया हूँ ।" [36]

दु:ख और सुख मानव जीवन की संस्कृति के अभिन्न तत्व हैं । सर्वेश्वर दु:ख का स्वागत करते हुए कहते है :-

"दुख है मेरा
सफेद चादर की तरह निर्मल

उसे बिछाकर सो रहता हूँ।

दुख है मेरा

सूरज की तरह प्रखर

उसकी रोशनी में

सारे चेहरे देख लेता हूँ।" [37]

समकालीन कवियों में केदारनाथ सिंह ने अन्य कवियों की अपेक्षा कम लिखा है, परन्तु जितना भी लिखा है, वह सभी ग्राम्य सामाजिकता एवं सांस्कृतिक चेतना की नींव पर खड़ा है। जैसा कि मैंने पहले भी जिक्र किया है कि केदारनाथ सिंह का उदय 'तीसरे सप्तक' से गीतकार के रुप में हुआ। इस सप्तक में अधिकांश गीत संकलित है। जिनमें अनुभवों की ताजंगी के साथ-साथ सामाजिकता देखते ही बनती है। 'दुपहरिया', 'फागुन का गीत', 'बसन्त गीत', 'पात नये आ गये', 'धानों का गीत', 'रात', आदि कविताएं कवि की भाषा, लय और प्रकृति के साथ-साथ मानव-संस्कृति की विभिन्न परिस्थितियों को परखती हैं। 'तीसरा सप्तक' के तुरन्त बाद १९६० में उनका पहला काव्य संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' प्रकाशित हुआ एवं उसके बीस वर्षों के पश्चात् सन् १९८० में दूसरा काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इन दोनों काव्य संग्रहों के बीच समय के लम्बे अन्तराल के साथ-साथ काव्य-भाषा एवं काव्यानुभूति में भी फर्क देखा जा सकता है। उपरोक्त दोनों संग्रहों में विचारों की परिपक्वता एवं कैई अन्य विभिन्नताओं के पश्चात उनकी पृष्टभूमि सामाजिकता एवं सांस्कृतिक चेतना में समानता देखी जा सकती है। उनकी एक प्रारम्भिक रचना 'एक पारिवारिक प्रश्न' में कवि एक सामाजिक प्रश्न प्रस्तुत करता है :-

"छोटे से आँगन में

माँ ने लगाये हैं
तुलसी के बिरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार
मैं अपना नन्हा
गुलाब कहाँ रोप दूँ।" [38]

कवि की दृष्टि उन अछूते विषयों को तरासती है जिन तक अन्य कवियों की दृष्टि नहीं पहुँच पाई है। सांस्कृतिक जीवन की भीनी गन्ध इन बिम्बों को पार कर लोकजीवन के संघर्षों की कहानी कहती है:–

"हाथ
जिसने द्वार खोला
क्षितिज खोले
दिशाएं खोलीं
न जाने क्यों इस महकते
मूक, हल्दी–रँगे, ताजे
किरण–मुद्रित सन्देशे को
खोलने में कॉपता है।" [39]

केदारनाथ सिंह की कविताओं में ऐसा कुछ अक्सर मिलता है जो अदृश्य है, अस्पष्ट है, गुजर रहा है, और जिसकी झिलमिलाहट महसूस की जा सकती है :–

"एक दिया
उस पगडण्डी पर
जो अनजान कुहरों के पार
डूब जाती है।" [40]

'दीप दान' नामक इस कविता में कवि ने एक आत्मीय घरेलू चित्र प्रस्तुत किया है । कवि घर के अत्यन्त निजी स्थानों पर दीप जलाने की बात करता है । अत्यन्त निजी वातावरण में कवि उस पगडन्डी को नहीं भूलता जो अनजान कुहरों के पार कहीं डूब जाती है ।

जमीन पक रही हैं संग्रह की कविताएं आरम्भिक कविताओं से भिन्न है । इन कविताओं की जड़े मानवीय संस्कृति की जडों तक जाती है । उनकी ये कविताएं 'आदमी', 'बच्चा', 'स्त्री', और 'चेहरा' अर्थात संपूर्ण मनुष्य की कविताएं है । मैदान में बच्चे कितना अर्थ देने वाली कविता है :-

"मैने देखा वे धीरे-धीरे
कुएँ से झाड़ी की ओर बढ़ रहे हैं
झाड़ी से शहर की ओर
उनके मुक्के तने हुए थे
आखिर गेंद-गेंद कहाँ है
वे चिल्ला रहे थे?" [41]

इस संग्रह की अन्य कविताओं में 'भूख', 'रोटी', 'नमक', 'दाना', 'कुल्हाड़ी', 'पतीली', 'चूल्हा', 'तवा', 'आलू', 'आटा', आदि शब्द आते हैं, जो सामाजिकता को अत्यन्त नजदीक से निहारते हैं ।

'नए वर्ष के प्रति' कविता में भी सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण मिलता है । इसके अतिरिक्त 'चुनाव की पूर्व सन्ध्या' पर कविता में चुनाव के समय होने वाली सामाजिक हलचल को व्यक्त किया गया है:-

"शहर को

भूख या जहरीली गैस से अब भी बचाया जा सकता है
अगर सिर्फ यह पता चल जाय
कि सड़क पर जो पहला आदमी मिलेगा
उसका नाम क्या है ?
या फिर अगले बजट में
कितने विशेषण
और कितने सर्वनाम होंगें।" [42]

उपरोक्त रचना में कवि ने एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति का चित्रण किया है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अनिश्चितता का माहौल है। सड़क पर जो पहले व्यक्ति मिलेगा, अगर उसका नाम पता चल जाए तो समाज को जहरीली गैस से बचाया जा सकता है। यह एक ऐसे समाज का बिम्ब है जहाँ संदिग्धता भरी है।

'अकाल में सारस' संग्रह की दो कविताओं 'छोटे शहर की एक दोपहर' एवं एक 'छोटा सा अनुरोध' में भी सामाजिक यथार्थ परिलक्षित होता है।

'छोटे शहर की एक दोपहर' कविता में कवि कहता है :-

"पूछता है एक चेहरा दूसरे से मौन
बचा हो साबूत-ऐसा कहाँ है वह कौन?
सिर्फ़ कौआ एक मडराता हुआ-सा व्यर्थ
समूचे माहौल को कुछ दे रहा है अर्थ।" [43]

उपरोक्त कविता के माध्यम से कवि ने एक ऐसे गर्मी से तप्त परिवेश का चित्रण किया है जिसमें कि सम्पूर्ण माहौल में नीरवता विद्यमान है। इसमें कहीं अगर कुछ अशान्त सी स्थिति है तो कौए के आकाश में मडराने में है अन्यथा सब कुछ शान्त है।

इसी प्रकार 'एक छोटा-सा अनुरोध' कविता में कवि ने

एक ऐसे ग्रामीण परिवेश को दर्शाया है। जिसमें हमारी कृषि संस्कृति की ताजगी विद्यमान है।

"आज की शाम
जो बाजार जा रहे हैं
उनसे मेरा अनुरोध है
एक छोटा-सा अनुरोध
क्यो न ऐसा हो कि आज शाम
हम अपने थैले और डोलचियाँ
रख दें एक तरफ
और सीधे धान की मंजरियों तक चले।" [44]

उपरोक्त पंक्तियों में सामाजिक यथार्थ की एक सच्चाई उभर कर आयी है। वह है कि मण्डियों में धान पैदा नहीं होता। यहाँ समाज को पथ प्रदर्शित करते हुए कवि कहता है कि सच्चाई को पहचानो, उसकी ही आवश्यकता आज समाज को है। मण्डी रूपी वह बाजार तो दिखावा है, वास्तविकता तो यह है कि खेतों में धान उपजता है, वहीं हमारी जड़ें है उन्हीं को पहचानने की आवश्यकता है।

केदारनाथ सिंह को ग्रामीण संस्कृति अत्यन्त प्रिय है। वे उसमें जीकर रचनाओं को जन्म देते हैं। एक साक्षात्कार के दौरान वीरेशचंद्र उनसे प्रश्न करते हैं "गाँव के लिए कितना समय दे पाते हैं?" तो केदारनाथ सिंह उत्तर देते हुए कहते है :-

"यह अच्छा सवाल पूछा आपने। मेरे मित्रों को हैरानी होती है कि मैं अब भी बार-बार गाँव जाता हूँ और जब भी जाता हूँ तो पन्द्रह-बीस दिन कम-से-कम अपने ठेठ गाँव के परिवेश में व्यतीत करता हूँ। दिल्ली के बहुत-से लेखक मित्रों ने इस बात पर

आश्चर्य व्यक्त किया कि कोई पन्द्रह-बीस दिन गाँव में कैसे रह सकता है? पर सच कहूँ तो मुझे यह प्रश्न ही हैरान करता है। मैं ठेठ गाँव में पैदा हुआ और अपने आरम्भिक जीवन का काफी हिस्सा मैंने गाँव में ही बिताया है और मेरे भीतर जो एक स्मृति-लोक है, वह बहुत कुछ गाँव के दृश्यों, लोगों और घटनाओं से मिलकर बना है। इसलिए गाँव में जाना मेरे लिए अपनी जानी-पहचानी दुनिया में लौटने की तरह है। इसे एक तरह की घर वापसी कह सकते है।" [45]

पद्‌मा सचदेव के साथ अपनी बात-चीत के दौरान कवि अपने अन्दर बसी उन गाँव की सांस्कृति चेतना को ताजा करते हुए कहा है कि –

"चकिया गाँव में बहुत कुछ छूट गया। पर सबसे ज्यादा जो आँखों में भर-भर आती है वो है वहाँ की नदी। गाँव से तीन किमी. दूर दक्षिण में गंगा और तीन किमी. दूर उत्तर में सरयू बहती है। बीच में दोनों को जोड़ने वाला है भागड़ नाला। बस, इसी भागड़ नाले के किनारे ही अपना घर है। घर जो साथ-साथ चलता है जो एहसास में रहता है, प्राण में बसता है।" [46]

चकिया गाँव केदारनाथ सिंह की कविताओं में भी जहाँ-तहाँ देखने को मिलता है। यह वह गाँव है, जहाँ केदारनाथ सिंह जन्मे जहाँ की मिट्टी में उन्होंने घुटनों रेंघना सीखा, जहाँ प्राकृतिक हवा में उन्होंने पहली सांस ली। एक बार जब चकिया से चिठ्ठी आई तो कवि की संवेदनाओं में घर कर गई। 'अकाल में सारस' संग्रह में उनकी एक रचना में कवि ने गाँव से आई इस चिठ्ठी के द्वारा अपनी संवेदनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया है:-

"कल गाँव से

एक चिट्ठी आई

बहुत दिनों बाद

शायद नदी ने भेजी थी

न दिन

न तारिख

न सिरनामा

बस ऊपर कोने में

एक बूँद की तरह

टँका था

छोटा सा प्यारा-सा

गाँव का नाम

'चकिया' ।" [47]

इसके अतिरिक्त इस संग्रह की कविताओं 'चेहरा', 'रास्ता', 'ओ मेरी उदास पृथ्वी', 'गलते हुए' 'नये शहर में बरगद', 'पशुमेला', 'पाँच पिल्ले' आदि में कवि ने गाँव की उन परिस्थितियों एवं स्थितियों का संवेदनात्मक चित्रण किया है, जिन्होंने कवि की स्मृतियों पर अमिट छाप छोड़ी है। 'जमीन पक रही है' संग्रह में भी गाँव घर की गूँजे सबसे अधिक सुनाई पड़ती है। केदारनाथ सिंह की अत्यन्त प्रिय स्मृतियाँ है, 'टमाटर बेचने वाली बुढ़िया', 'बैल', 'बढ़ई और चिड़िया' 'दो लोग', 'रोटी' आदि

केदारनाथ सिंह की एक अमिट स्मृति जो आज भी उनके विचारों में ताजा है, 'बिना नाम की नदी है'। कवि उस परिदृश्य को याद करते हुए कहता है :-

"मेरे गाँव को चीरती हुई

पहले आदमी से भी बहुत पहले से
चुपचाप बह रही है वह पतली-सी नदी
जिसका कोई नाम नहीं
तुमने कभी देखा है
कैसी लगती है बिना नाम की नदी?
कीचड़ सिवार और जलकुंभियों से भरी
वह इसी तरह बह रही है पिछले कई सौ सालों से
एक नाम की तलाश में
मेरे गाँव की नदी ।" [48]

ऐसे अनेकों चित्र केदारनाथ सिंह के जहन में बिलकुल ज्यों के त्यों रखें है, जनका वर्णन करते वे कभी थकते नहीं। केदारनाथ सिंह के अतिरिक्त उनके समकालीनों ने भी गाँव की प्रकृति को चित्रित करने का अटूट प्रयास किया है। 'तीसरे सप्तक' के तीसरे कवि मदन वात्स्यायन जी ने अपने युग की एक ऐसी प्रामाणिक अनुभूति को अभिव्यक्त किया है जिसमें एक आम आदमी को संकटों एवं संघर्षों से जूझता हुआ दिखाया गया है :-

"विलय में / रुदन का दम घुट गया है
थका अक्रांत भी चुप है
यही सच है ।" [49]

<u>निष्कर्ष</u> :- कवि केदारनाथ सिंह अपनी परंपरा, संस्कृति और संवेदनाओं से पूर्ण रुप में जुड़े हैं। उन्होंने एक छोटे से ग्रामीण परिवेश से निकल कर मानव की उपलब्धियों एवं सफलताओं को अपने अनुभवों में पिरोया हैं। कवि की मन:स्थिति आज भी उन ग्रामीण अनुभवों को बार-बार कुरेदती है एवं उन्हें सुंदर एवं ताजे रुप में देखती है। सामाजिकता के अनेकों उदाहरण

मैंने पिछले अध्यायों में भी प्रस्तुत किए हैं। जहाँ कवि की पैनी दृष्टि उन अनछुए बिम्बों को तरासती है जिन तक उनके समकालीनों की दृष्टि नहीं पहुँच पाई। सम्भवतः यह केदारनाथ सिंह की अलग पहचान का मुख्य कारण बनी। इनकी अनेकों कविताएं सामाजिक जीवन की वस्तुओं पर लिखी गई है। जैसे कि 'रोटी', 'बैल', 'दीवार', 'बारिश' आदि-आदि। कहीं कहीं पर कवि ने भावावेश में आकर अपने समय का अतिक्रमण करके सामाजिक बदसूरती का चित्र भी खींचा है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि कवि केदारनाथ सिंह का लगाव अपने ग्रामीण सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से विशेष रुप से रहा है।

*****

संदर्भ ग्रंथ

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	संपादक /रचियता	पृ. संख्या
1.	मुक्तिबोध रचनावली	नेमिचन्द्र जैन	पृ. 210
2.	'काव्य बिम्ब'	नगेन्द्र	पृ. 5
3.	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह	पृ. 17
4.	कल्पना और छायावाद	वही	पृ. 34
5.	वही	वही	पृ. 35
6.	वही	वही	पृ. 35
7.	जमीन पक रही है	वही	पृ. 56
8.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	पृ. 590
9.	बृहत हिन्दी कोश	कालिका प्रसाद	पृ. 656
10.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ.19-20
11.	वही	वही	पृ. 24
12	केदारनाथ सिंह के पत्र परमानंद श्रीवास्तव के नाम	भारत यायावर	पृ. 31
13.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 10
14.	अभी बिलकुल अभी	वही	पृ. 25
15.	वही	वही	पृ. 59
16.	वही	वही	पृ. 75
17.	तीसरा सप्तक	वही	पृ. 141
18.	अभी बिलकुल अभी	वही	पृ. 73
19.	इंडिया टूडे	साहित्य वार्षिकी (पत्रिका)	पृ.132
20.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 136

21.	यहाँ से देखो	केदारनाथ सिंह	पृ. 48
22.	मेरे समय के शब्द	वही	पृ. 187
23.	अकाल में सारस	वही	पृ. 99
24.	उत्तर – केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 20
25.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ. 19
26.	वही	वही	पृ. 43
27.	जमीन पक रही है	वही	पृ. 60
28.	वही	वही	पृ. 50
29.	नया पथ (पत्रिका)	शिव वर्मा	पृ.
30.	उस जनपद का कवि हूँ	त्रिलोचन	पृ. 17
31.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ. 46
32.	तालाब की मछलियाँ	नागार्जुन	पृ. 158
33.	चाँद का मुँह टेढ़ा	मुक्तिबोध	पृ. 224
34.	दूसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 3
35.	आत्म हत्या के विरुद्ध	रघुवीर सहाय	पृ. 22,46,57
36.	खुँटियों पर टँगे लोग	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	पृ. 32
37.	वही	वही	पृ. 77
38.	प्रतिनिधि कविताएं	केदारनाथ सिंह	पृ. 99
39.	वही	वही	पृ. 106-107
40.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 138
41.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 81
42	प्रतिनिधि कविताएँ अभि बिलकुल अभी	वही	पृ. 88-89
43.	अकाल में सारस	वही	पृ. 76
44.	वही	वही	पृ. 13

45.	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह	पृ. 187
46.	उत्तर केदार	सुधीर पचौरी	पृ. 19
47.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ. 99
48.	जमीन पक रही है	वही	पृ. 16
49.	तीसरा सप्तक	मदन वात्स्यान	पृ. 107

*****

षष्ठ अध्याय

केदारनाथ सिंह की काव्यगत विचारधारा

षष्ठ अध्याय

केदारनाथ सिंह की काव्यगत विचारधारा

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, इसीलिए युगीन परिस्थितियां निरन्तर बदलती रहती है। जिसके कारण भावबोध एवं मानसिकता में भी बदलाव आते रहते हैं। उसे अधिक से अधिक संप्रेषित एवं ग्राह्य बनाने के लिए शिल्प के नये-नये प्रयोग रचनाकार समय-समय पर करते रहते हैं, ताकि जटिल भावबोध के लिए उपयुक्त अभिव्यक्ति के माध्यम का अन्वेषण कर सकें।

नये कवियों ने भी स्वीकारा है कि युगीन परिस्थितियों में बदलाव के कारण कविता और उसकी मानसिकता दोनों में बदलाव आए हैं। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन जो कविता के क्षेत्र में हुआ, वह था कविता एवं रचना प्रक्रिया के संबंध में कवियों के स्पष्टीकरण। नये कवि का मानना है कि कविता को ही कवि का परम वक्तव्य माना जाए। इस नई विचार-धारा के साथ अपने द्वारा अन्वेषित अभिव्यक्ति रुपों को सार्थक सिद्ध करने के प्रयास हुए। कवियों द्वारा कविता पर लिखने की विचारधारा का मखौल भी बनाया गया। किन्तु नया कवि कविता पर अपने विचार प्रकट करने की विचारधारा पर अड़िग रहा। और अपने द्वारा प्रतिपादित मूल्यों के आधार पर अपनी कविता को समझने का आग्रह भी करता रहा।

इन सभी कवियों ने समय-समय पर काव्य के क्षेत्र में विभिन्न विषयों पर अपनी अपनी मान्यताएं प्रस्तुत की है। केदारनाथ सिंह ने भी 'तीसरे सप्तक' के अपने वक्तव्य में कई ऐसी

बातें कहीं है जो उनकी काव्य संबंधी विचार धारा को समझने में सहायक होंगी । नयी कविता की श्रेष्ठता की परख के मानदण्डों के बारे में उनका मानना है :-

"नयी कविता की विशिष्टता की परीक्षा न तो चरित्र चित्रण की पूर्व प्रचलित पद्धति पर हो सकती है, न प्राचीन रसवाद के नियमों के आधार पर; यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि रस की सत्ता से इनकार करना काव्य की सत्ता से ही इनकार करने के समान है । पर आधुनिक कविता में रस की धारणा बदल गयी है । रसवाद के लक्षणों के अनुसार आज की अधिकांश बौद्धिक कविताएँ अवरकोष्टि में आयेगी । परन्तु फिर भी वे हमें प्रभावित करती है; यह उन के श्रेष्ठ काव्य होने का सब से बड़ा प्रमाण है ।" [1]

अपने वक्तव्य के अगले भाग में कवि कहता है:- "कविता अपने अनावृत रुप में केवल मात्र एक विचार, एक भावना, एक अनुभूति, एक दृश्य, इन सब का कलात्मक संगठन अथवा इन सब के 'अभाव' की एक तीखी पकड़ होती है । यह 'पकड़' जितनी ही वास्तविक होगी, कवि का संवेद्य उतना ही गहरा और प्रभावशाली होगा । इस के लिए उस में वास्तविकता के विभिन्न स्तरों की प्रत्यक्ष जानकारी होनी चाहिए और यह जानकारी सोलहों आनें उस की अपनी होनी चाहिए । नयी कविता की एक यह भी उपलब्धि है कि उस में कवियों का अपनापन अधिक से अधिक सुरक्षित है ।"[2]

अपने इस वक्तव्य के अन्त में कवि नें अपनी मान्यताओं एवं विचार धाराओं का खुलासा करते हुए कहा है:- "ऊपर जो बातें कही गयी है उन्हें ज्यों-का-त्यों मेरी कविताओं पर घटाना मेरे साथ अन्याय करना होगा । वस्तुत: वे मेरे संकल्प है, जिन की ओर

मुझे क्रमश: बढ़ते जाना है । अधिक-से-अधिक मेरी रचनाओं में मेरी इस विचार - प्रक्रिया की छाप यत्र-तत्र देखी जा सकती है, बस ।"[3]

केदारनाथ सिंह की काव्य संबंधी मान्यताओं की परख उनकी कविताओं के माध्यम से करना ही तर्क संगत होगा ।

6.1 गीत रचना का क्रमिक विकास

गीतों की रचना का इतिहास मानव सभ्यता के प्रभात के साथ से आरम्भ होकर, आज तक अनवरत जारी है । वस्तुत: गीत साहित्य की अन्य विधाओं की तरह अत्यन्त प्राचीन एवं सर्वस्वीकृत विधा है । गीतों के प्रारम्भ के बारे में विभिन्न रचनाकारों के मत क्रमश: इस प्रकार है:-

"गीतों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन एवं समुज्वल है ।"[4]

"गीत-काव्य का इतिहास स्वयं वेदों से प्रारम्भ होता है ।"[5]

"दर असल, गीतों की रचना का प्रारम्भ मानव, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभात से हो चुका था यानी गीत-परम्परा वेदों से भी पहले की है ।"[6]

"हिन्दी में गीत काव्य के प्रथम दर्शन संत कवियों की वाणी में होते है ।"[7]

हम नि:सन्देह कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में, कबीर सेलेकर विद्यापति तक, सूर और तुलसी से मीराबाई तक के गीत साहित्य की अमूल्य निधि हैं । वस्तुत: खड़ी बोली में गीतों का जन्म प्रथम महायुद्ध के बाद माना जाता है, एवं प्रथम सृष्टिकर्ता जयशंकर प्रसाद को माना जाता है । गीत संरचना के बारे में

डा.हरदयाल का मत है :-

"गीतों का मूल ढांचा द्विवेदी युग में ही तैयार हो गया था। इस ढांचे में एक स्थायी और उसके साथ कई अंतरों को जोड़ कर गीत के रुप का निर्माण हुआ।" [8]

निष्कर्ष यह है कि गेय कविताओं के अवधी और ब्रजभाषा वाले प्राचीन रुप को हम 'पद' कहते हैं और छायावादी और उसके बाद के नवीन रुप को 'गीत'।

डा. नगेन्द्र के मतानुसार :-

"पद या गीत गेय रचना है जिसमें हृदय की कोमल भावनाएं संगीत में द्रवित होती रहती हैं। इसका रुप तरल एवं गत्यात्मक होता है। इन दोनों के संयोग से आगे चलकर गेय मुक्तक का विकास हुआ।" [9]

केदारनाथ अग्रवाल मानते हैं कि नया कवि गीत का कोई स्थायी स्वरुप निर्धारित करने में खुद को अक्षम पाते है। वे आगे कहते है :-

"गीत अब भी तुकान्त हो सकते हैं - अतुकान्त हो सकते हैं- नपी-तुली पंक्तियों में हो सकते हैं, बे-नाप की पंक्तियों में हो सकते हैं- टेकदार हो सकते हैं और बेटेक हो सकते हैं।" [10]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'गीत' अपनी शैलियों में इतना वैविधपूर्ण है कि उसका कोई एक विधान निर्धारित करना अत्यन्त दुर्लभ कार्य है। तो भी कुछ नये कवि जैसे गिरिजा कुमार माथुर एवं केदारनाथ सिंह ने गीत के को स्पष्ट करने का काफ़ी हद तक सफल प्रयास किया उन्होंने कम मात्रा में लिखा फिर भी वह 'छोटी क कविता' एवं 'नवगीत' जैसी विधाओं को समझ

महत्वपूर्ण है ।

केदारनाथ सिंह ने जब स्कूली शिक्षा समाप्त कर बनारस के उदयप्रताप कॉलेज आए तो वहाँ उन्हें एक अच्छा-खाशा साहित्यिक माहौल मिला । साहित्यिक गोष्ठियां एवं कविता की प्रतियोगिताएं देखी । उस समय बनारस में शम्भुनाथ सिंह के गीतों की धूम मची थी । उसी वातावरण से प्रभावित होकर केदारनाथ सिंह ने भी अपने रचना कर्म का आरम्भ गीतों के माध्यम से किया । जिसे बाद में उन्होंने धीरे-धीरे छोड़ दिया । अपनी आरम्भिक रचनाओं के बारे में वे स्वयं बताते है:-

"मैंने शुरु किया था गीतों की जमीन से पर जल्दी मुझे लगा कि आज कवि के लिए गीता का ढांचा नाकाफी है फिर शायद एक कारण यह भी था कि छायावाद के साथ गीतों का जो ढांचा विकसित हुआ था, उसमें टेक अर्थात, पहली पंक्ति की स्थिति मुझे हमेशा अधिनायक कीतरह लगती थी । और होता यह था कि शेष कविता इसी एक पंक्ति का अनुधावन करने के लिए अभिशप्त होती थी । यह स्थिति मुझे अस्वाभाविक लगी और काफी हद तक अग्राह्य भी । मेरे जो गीत 'तीसरा सप्तक' में संग्रहीत हैं । वे मेरे आरम्भिक गीत हैं, जिन्हें मैंने इंटरमीडिएट में पढ़ते हुए लिखा था, उसके बाद फिर शायद एक या दो गीत लिखे थे, फिर गीत जो छूटा तो छूट ही गया । "[11]

केदारनाथ सिंह के सारे आरम्भिक गीत 'तीसरे सप्तक' में संकलित हैं । वस्तुत: 'तीसरे सप्तक' में संकलित उनकी 23 रचनाओं में 19 गीत हैं । ये गीत छायावादोत्तर हिन्दी कविता के बासीपन से भरे वातावरण में एक ताजी हवा के झोंके की तरह लगे । इन गीतों में केदारनाथ सिंह की लोक भूमि की भीनी-भीनी

गंध है। लोक-चित्रण एवं लोक संगीत है, प्यार है, हर्षोल्लास है। इन गीतों में उनकी स्वच्छान्दवादी विचार धारा भी झलकती है। और प्रकृति इन गीतों में घुली-मिली है। उनकी इस काव्य विविधता के कुछ उदाहरण क्रमश: इस प्रकार हैं :-

"झरने लगे नीम के पत्ते- बढ़ने लगी उदासी मन की" [12]

"यह कैसा वातास-
कि मन को नयन-नयन कर दिया
गीत को चुप्पी से भर दिया,
भर दिया- यह कैसा वातास।" [13]

"गीतों से भरे दिन फागुन के ये गाये जाने को जी करता।" [14]

"धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में
आना जी बादल जरुर।" [15]

जैसा कि केदारनाथ सिंह ने स्वयं स्वीकारा है कि गीतों का ढांचा उन्हें अपर्याप्त लगा, तो उन्होंने नई कविता की शुरुआत की। 'तीसरे सप्तक' के अपने वक्तव्य में केदारनाथ सिंह कहते हैं :-

" 'तार सप्तक' के बाद मैंने 'अज्ञेय' का 'इत्यलम्' और गिरिजाकुमार माथुर का "नाश और निर्माण' पढ़ा मेरे भीतर नई कविता की भूमि धीरे-धीरे उभरने लगी। विश्वविद्यालय-जीवन में प्रवेश करने पर मेरा रुझान बँगला की ओर हुआ और रवीन्द्रनाथ

के गीतों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। फिर धीरे-धीरे अंग्रेजी की आधुनिक कविता का सौन्दर्य भी मेरे निकट खुलने लगा और उस के माध्यम से कुछ अन्य भाषाओं की कविताओं से परिचय हुआ।"[16]

इस प्रकार केदारनाथ सिंह की काव्य यात्रा जो गीतों से आरम्भ हुई। बाद में नई कविता की ओर मुड़ गई। उन्होंने गीत लिखना भले ही बन्द कर दिया हो, परन्तु गीतों की सी भावुकता, लयबद्धता, एवं एंद्रियता आज भी उनकी अनेकों कविताओं में देखी जा सकती है।

6.2 अभी बिलकुल अभी एवं नई कविता

सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्य परिस्थितियों के बदलाव के कारण मानव सभ्यता की पौराणिक गीत रचना पद्धति में भी बदलाव आया। यह गीत से नव गीत और नवगीत से नई कविता में परिवर्तित हो गया। इस परिवर्तन के समय का ठीक-ठीक अनुमान तो नहीं लगाया जा सकता परन्तु कुछ रचनाकार एवं साहित्यकार इसका उदय आजादी के बाद मानते हैं कुछ सन् १९५५ के आस पास। कुछ अन्य रचनाकार सन् १९६० के बाद की कविता को नई कविता मानते हैं। डा. जीवनप्रकाश जोशी का मानना है :-

"सन् १९५५ के बाद नयी कविता के बोध ने गीत-काव्य को करारी चोट दी। यहाँ तक की बच्चन ने भी गीत-पथ को धीरे-धीरे त्याग दिया। सन् १९५५ के उपरान्त और सन् साठ तक, गीतकाव्य में गतिरोध अवश्य रहा।"[17]

नयी कविता का काल नवीन परिस्थितियों, नवीन उद्‌भावनाओं, नूतन चेतना और प्रयोगों का काल रहा है। कवियों की सोच उनकी विचारधाराएं एवं शिल्प संबंधी मान्यताएं उनकी रचनाओं में प्रकट हुई है। नयी कविता के कवियों ने शिल्प को व्यापक रुप में ग्रहण किया।

नयी कविता में छायावादी संस्कारों की झलक मिलती है परन्तु परम्परा का अन्धानुकरण नहीं है। नयी कविता में आधुनिक पश्चिमी काव्य-चिन्तन के प्रभावस्वरुप प्रतीक और बिम्ब को एक महत्वपूर्ण स्थान मिला। सामान्यत: नये कवियों ने प्रतीकों एवं बिम्बों के प्रयोग पर बल दिया। जगदीश गुप्त, गिरिजाकुमार माथुर एवं केदारनाथ सिंह ने बिम्ब के अनेक पक्षों पर सूक्ष्मता से विचार किया और उसके महत्व को स्वीकारा। तीसरे सप्तक के अपने वक्तव्य में केदारनाथ सिंह ने अपनी बिम्ब संबंधी मान्यताओं का खुलासा किया है। बिम्ब की महत्ता संबंधी उनके विचार क्रमश: इस प्रकार है :-

"बिना चित्रों, प्रतीकों, रुपकों और बिम्ब की सहायता के मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्राय: असम्भव है, यहाँ तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुँच कर गम्भीर तत्व-दर्शन की चर्चा करते हैं, तब भी हमारे उपचेतन में कहीं न कहीं उन विचारों के वर्ण-चित्र उभरते मिटते रहते हैं। बिम्ब निर्माण की यह प्रक्रिया पूरे मानव-जीवन में फैली हुई है।" [18]

"एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा अविष्कृत बिम्बों के आधार पर ही की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उस की आधुनिकता सब से अधिक उस के बिम्बों में ही व्यक्त होती है।" [19]

"मैं बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया पर जोर इस लिए दे रहा हूँ कि आज काव्य के मूल्यांकन का प्रतिमान लगभग वही मान लिया गया है। एक अंग्रेज आलोचक का तो यहाँ तक कहना है कि आधुनिक कवि नये-नये बिम्बों की योजना के द्वारा ही अपनी नागरिकता का शुल्क अदा करता है। तात्पर्य यह है कि प्राचीन काव्य में जो स्थान 'चरित्र' का था, आज की कविता में वही स्थान बिम्ब अथवा इमेज का है।" [20]

"कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब विधान पर। बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय-वस्तु से होता है, उतना ही उस के रुप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है; रुप को संक्षिप्त और दीप्त।" [21]

केदारनाथ सिंह के कविता संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' की अभिव्यक्ति को उनके उपरोक्त कथनों से मिलाकर देखना होगा। इस संग्रह का प्रकाशन 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन के सिर्फ एक वर्ष बाद ही हुआ था। केदारनाथ सिंह की आरम्भिक कविताओं और इस संग्रह की कविताओं की भाव-भूमि तो एक ही है, हर्ष और उल्लास लेकिन रचना प्रक्रिया एवं विचार धारा में फर्क आया है। स्वच्छन्दता कम हुई है और संवेदना विस्तृत। इस संग्रह की कविताओं की एक खास बात यह है कि लोकभूमि कवि से छूटती प्रतीत होती है। ऐसा लगता है जैसे कवि गाँव से शहर आ गया हो। और गाँव जो कि उसकी चेतना में घुला-मिला है उसे वह भूल नहीं सकता।

'अभी बिलकुल अभी' संग्रह की कविताओं में जो हर्षोल्लास की प्रवृत्ति है उसका एक कारण देश को कुछ समय पहले मिली आजादी एवं देशी राज्यों, जमींदारी प्रथा आदि का खात्मा

है । ये सभी परिवर्तन उनकी कविताओं में भी देखे जा सकते हैं :-

"चलते- चलते
झुक कर
रास्ते की धूल से
एक शब्द उठाता हूँ
और पाता हूँ कि अरे
गुलाब ।"[22]

केदारनाथ सिंह को जनता से जुड़ जाने के बाद धूल में पड़े हुए शब्द गुलाब हो जाते है । एक अन्य रचना 'नीला पत्थर' में 'नीला पत्थर' जनता का प्रतीक है जो कवि जब अकेला होता है तो लुड़ककर उसके पास चला आता है । उसका अकेलापन दूर करने । ऐसी वस्तु जो संपूर्ण सृजनात्मकता का स्रोत है, वह जनता के अलावा और क्या हो सकती है । कवि कहता है:-

"अब वह नीला पत्थर
मेरे साथ-साथ रहता है ।
सोता हूँ तो सिरहाने है
उठता हूँ
तो कब से जगा रहा है
गाने की कोशिश करता हूँ
तो हर शिरा उपशिरा में
छटपटा रहा है नीला पत्थर
खाली पत्थर ।"[23]

'रचना की आधी रात' इस संग्रह की एक अन्य कविता है । इस तरह की कविताओं की एक खाश बात यह है कि काव्य की स्वभाविक प्रक्रिया भी बृहत्तर समाज के भीतर चलने वाली सृजन

प्रक्रिया जैसे धधकती हुई भट्टी पर काम करता हुआ मजदूर और उसका काम, एवं शहतूत के पेड़ पर कीड़े का धागा बनाने का काम, से जुड़कर चलती है । एक सहज प्रक्रिया की तरह। यह रचनाकार की एकांकी स्थिति को तोड़ने की कोशिश है जो इस संग्रह की अन्य कविताओं में भी प्रदर्शित हुई है :-

"मुझे लगता है
जुड़ा हुआ इन सारी
नींदहीन ध्वनियों से
खोए इतिहासों के
अनगिनत ध्रुवांतों पर
मैं भी रचना-रत हूँ
झुका हुआ घंटों
इस कोरे कागज़ की भट्टी पर
लगातार।"[24]

कवि को सामने का कोरा कागज भट्टी के रुप मे प्रतीत होता है यह मात्र संयोग नहीं है बल्कि कवि का श्रमिक-वर्ग के साथ एकता का परिणाम है ।

वस्तुत: 'अभी बिलकुल अभी' संग्रह की रचनाएं प्रचलित शैली से हट कर एक अलग ढंग से अपनी कविता का स्वरुप निर्मित करने का प्रयास था। कवि की कोशिश थी कि कविता में लय तत्व और बिम्बात्मकता दोनों नए ढंग से सामने आये। रचनाकारों ने केदारनाथ सिंह के इस प्रयास की सफलता की बात कही। नन्दकिशोर नवल इस सफलता का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहते है :-

"नई कविता को एक खास लय प्रदान करने वाली यह

कविता केदारनाथ सिंह जी के इस चिंतन का प्रमाण है कि जीवन सिर्फ़ विराट नहीं होता, उसमें लघुता भी होती है; उसमें सिर्फ़ उदात्तता नहीं होती, माधुर्य भी होता है और उसमें सिर्फ़ सार्थक प्रसंग ही नहीं होते, कुछ निरर्थक बातें भी होती है, जो जीवन को पूर्णता प्रदान करती हैं।" [25]

केदारनाथ सिंह को इस सफलता से काफी लोकप्रियता मिली। इस संग्रह के प्रकाशन के बाद नामवर जी ने विस्तृत समीक्षा लिखी और कहा "केदारनाथ सिंह का युग-बोध अनिश्चय वादियों से भिन्न है।"

6.3 जमीन पक रही है : एक महत्व पूर्ण प्रस्थान बिन्दु

'जमीन पक रही है' संग्रह की कविताओं को एक प्रस्थान बिन्दु माना गया है। कुछ आलोचकों जैसे अशोक वाजपेई एवं नेमिचन्द्र जैन ने उसी समय कविता की वापसी की बात अपने लेखों में उठाई। लेकिन केदारनाथ सिंह का कथन है कि व्यक्तिगत स्तर पर मैं ऐसा नहीं मानता कि "जमीन पक रही है' की कविताओं के साथ कुछ ऐसा हुआ जिसे कविता की वापसी कहा जाय। कविता पहले भी मौजूद थी और बड़े सशक्त ढंग से मौजूद थी।" [26]

इस संग्रह का प्रकाशन पहले संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' के प्रकाशन के एक लम्बे अंतराल (बीस वर्षों) के बाद हुआ। इस दीर्घ अन्तराल के कारण आलोचकों को सम्भवत: यह गलतफ़हमी हुई होगी कि इस अवधि के दौरान केदारनाथ सिंह जी सर्जन की तरफ से उदासीन थे। वस्तुत: वे निरंतर सृजन रत रहे। हाँ, यह सच है कि उनके सर्जन की गति मंद अवश्य रही, जिसके व्यक्तिगत कारण थे। इस संग्रह की रचनाओं में सर्जन की प्रौढ़ता

देखी जा सकती है। सन् ६० के बाद आजादी के प्रति भारतीय जनमानस का मोहभंग विभिन्न स्तरों पर शुरु हो गया था। इसके साथ ही पाश्चात्य विचारों से प्रभाव, पूंजीवादी व्यवस्था एवं मशीनीकरण से लोगों के मन में असन्तोष कुंठा और निराशा की भावना बढ़ने लगी थी।

इस संग्रह की कविताओं के सन्दर्भ में नन्द किशोर नवल जी के विचार इस प्रकार है :-

"'जमीन पक रही है' की कविताएं जिस चीज की तरफ हमारा ध्यान सर्वप्रथम आकृष्ट करती हैं, वह है इनमें पाई जाने वाली मोहभंग की स्थिति। अकेलापन, निराशा और संशय की अभिव्यक्ति कवि ने पहले भी की थी, जैसा कि हमने देखा है लेकिन इस संग्रह की कविताओं में आकर तो पूरी सामाजिक-राष्ट्रीय स्थिति से उसका मोहभंग होता है। १९६० के बाद के वर्षों में चीनी आक्रमण से न केवल देश की प्रतिरक्षा-संबंधी लापरवाही का राज खुल जाता है, बल्कि भारत की गुटनिरपेक्षता, पड़ोसी राष्ट्रों के साथ मित्रता और पंचशील की नीति के प्रति भी जनता में व्यापक संदेह की भावना फैल जाती है।" [27]

केदारनाथ सिंह के इस संग्रह की कविताओं से एक ओर ऐसा भाव प्रकट होता है जैसा कि जमीन जब अपने कपड़े यानी हरियाली उतार कर सूखकर कत्थई रंग की हो जाती है तो तब कवि महसूस करता है कि जमीन पक रही है। और कवि को लगता है कि पकते हुए दानों के अन्दर शब्द के होने की पूरी संभावना है:-

"यह दोपहर का समय था
और शब्द पौधों की जड़ों में सो रहे थे

खुशबू यहीं से आ रही थीं – मैंने कहा
यहीं–यहीं शब्द यहीं हो सकता है
जड़ो में
पकते हुए दाने के भीतर
शब्द के होने की पूरी संभावना थी ।" [28]

'जमीन' इस संग्रह की श्रेष्ठतम कविता है। प्रस्तुत कविता में कवि का जमीन के प्रति अगाध प्रेम प्रकट हुआ है। प्रेम से ओतप्रोत अपने तरह की यह एक मात्र कविता है। कविता में कवि की जमीन जो बसंत की जमीन है जो खुश्क मौसम के आने पर खुश्क और कत्थई हो गई है। इसी को कवि ने कहा है "जमीन पक रही है" :–

"जमीन अपने कपड़े उतार रही थी
हवा में एक अजीब–सी ठंड थी
जिसमें ज़मीन का कत्थईपन मिला हुआ था
जमीन पक रही है– उसने कहा
और उसे लगा यह एक ऐसी खबर है
जो खरहों की मांद तक पहुँचा देनी चाहिये ।" [29]

'आवाज' कविता में कवि एक ऐसी आवाज देना चाहता है जो ज़मीन से जुड़ी हुई हो, ऐसी आवाज जो दानों के चक्की में पिसने से पैदा होती है ।

'रोटी' इस संग्रह की एक लाजवाब कविता है। कुछ आलोचक इसे क्रन्तिकारी कविता भी मानते है क्योंकि इस कविता में 'आग', 'भूख', 'बयान' और 'दीवार' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है :–

"आप विश्वास करें

मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ़ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
वह पक रही है
और आप देखेंगे – यह भूख के बारे में
आग का बयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है
आप देखेंगे
दीवारें धीरे-धीरे
स्वाद में बदल रही हैं।" [30]

सच्चाई यह है कि रोटी का भूख और स्वाद से गहरा संबंध है। यह भूख के बारे में आग का बयान है। आग ने यह बयान दिवारों पर लिखा है, यहाँ रोटी ही दीवार है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में दो अन्य प्रिय विषय है घर और बाहर। "बाजार से लौटकर" कविता में कवि कहता है :-

"अब तुम बैठ सकते हो
या फिर खड़े रह सकते हो
जितनी देर चाहो।" [31]

और "बिमारी के बाद" में कविता में कवि कहता है :-

"कई दिनों बाद मैंने बाहर देखा
(बाहर इस शब्द में कितनी आँच है, कितनी उत्तेजना!)
क्या धूप को 'बाहर' कहते हैं ?
पानी को ?
आसमान को ?
चोंच में कीड़ा दबाये हुए चिड़िया को ?
फिर क्या है क्या है बाहर

अगर इस समय मैं खुद बाहर नहीं हूँ

अपने अंदर की सारी छटपटा हट के साथ ।" [32]

'जाड़ों के शुरु में आलू' इस संग्रह की एक विशिष्ट कविता है । केदारनाथ सिंह की कविताओं में जहाँ एक ओर तोड़ने का भाव है वही दूसरी तरफ उसमें बचा लेने , जोड़ने और संरक्षण की भी क्षमता भी है कवि.... कहता है :-

"वह जमीन से निकलता है और सीधे

बाजार में चला जाता हैं

x x x

जहाँ बहुत सारी चीजें लगातार टूट रहीं हैं

वह हर बार आता है

और पिछले मौसम के स्वाद से जुड़ जाता है ।" [33]

इस कविता में तोड़ने एवं जोड़ने बात विशिष्ट है ।

उनकी एक कविता है 'दीवार', जिसमें उनका भाव जगत कुछ बदला-बदला लगता है । यद्यपि साधारण मनुष्य का संघर्ष मुख्य रुप से सामने आया है परन्तु भाव की गहराई में विरोधात्मकता या प्रतिरोधात्मकता नहीं है । कवि कहता है:-

"मुझे नहीं लगता

मैं उसे देख रहा हूँ

मुझे हमेशा यही लगता है

मैं उसे खा रहा हूँ

सिर्फ उसके स्वाद के बारे में

कुछ नहीं कहा जा सकता"

और अंत में कवि कहता है :-

"एक फ़ावड़े की तरह उससे पीठ टिकाकर

एक समूची उम्र काट देने के बाद

मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ

कि लोहा नहीं

सिर्फ़ आदमी का सिर उसे तोड़ सकता है ।" [34]

दीवार यहाँ उन चीजों का प्रतीक है जिनसे मनुष्य संघर्ष करता रहता है ।

'जमीन पक रही है' संग्रह की कविताओं में गाँव कवि के लिए महत्वपूर्ण हो गया है । क्योंकि गाँव में वे कुछ वस्तुएं आज भी सुरक्षित है या मिल जाती हैं जो आज शहरों में तेजी से समाप्त होती जा रहीं हैं । ऐसी वस्तुएं को कवि महत्वपूर्ण मानता है, उनसे प्रेम करता है और उन्हें भविष्य के लिए बचाकर भी रखना चाहता है । भविष्य के लिए बचाकर रखने वाला भाव कवि को अन्य प्रगतिशील कवियों से अलग करता है । कवि के काव्य-बोध के पकने के साथ-साथ गाँव उनकी कविताओं में पुन: पनपता है । क्योंकि वे गाँव की दरिद्रता और शोषण की बात नहीं रखते वरन वहाँ की रोज-मर्रा के जीवन कीवस्तुओं से नाता जोड़ते हैं । 'माँझी का पुल', व 'बिना नाम की नदी' ऐसे ही सरल ग्रामीण भाव-बोध की कविताएं हैं । 'मांझी का पुल' गाँव के अनेक चित्र अंकित करता है । एक चित्र द्रष्टव्य है :-

"लाल मोहर हल चलाता है

और ऐन उसी वक्त

जब उसे खैनी की जरूरत महसूस होती है

बैलों के सीगों के बीच से दिख जाता है

माँझी का पुल ।" [35]

'जमीन पक रही हैं' संग्रह की कविताओं ने जिन संदर्भों

से अनुभव एवं संवेदना अर्जित की वे सामान्य जीवन की छोटी-छोटी घटनाएं, परिस्थितियां एवं छोटी-छोटी चीजें थी। लघुता के प्रति एक नया दृष्टिपात इन कविताओं की विशेषता रही है। इन रचनाओं में कवि का ध्यान 'लघुता' के बजाय 'लघु' की सत्ता पर अधिक था, यानि रोजमर्रा की परिस्थितियों एवं वस्तुओं को इन कविताओं में खास तौर पर देखा जा सकता है।

6.4 यहाँ से देखो एवं सामाजिक दृष्टि

'यहाँ से देखो' काव्य संग्रह तक आते-आते केदारनाथ सिंह की सामाजिक दृष्टि में काफी हद तक परिपक्वता आ गई थी। इस विषय का प्रारंभ मैं उनके इस वक्तव्य के सांथ करना चाहूँगा जो उन्होंने 'तीसरे सप्तक' के वक्तव्य के अन्त में कहा है :-

"समाज के प्रगतिशील तत्वों और मानव के उच्चतर मूल्यों की परख मेरी रचनाओं में आ सकी या नहीं, मैं नहीं जानता। पर उनके प्रति मेरे भीतर एक विश्वास, एक लालसा, एक लपट, जरूर है, जिसे मैं हर प्रतिकूल झोंके से बचाने की कोशिश करता हूँ, करता रहूँगा।" [36]

'तीसरे सप्तक' से 'यहाँ से देखो' तक के सफर में कवि के भाव बोध में कई परिवर्तन देखे जा सकते हैं। इस दृष्टि से 'यहाँ से देखो' की कविताएं विभिन्न नए आयामों से जुड़ती है। कवि की दृष्टि मनुष्य और समाज के यथार्थ जीवन से जुड़ती दिखाई देती है। सामाजिक अन्त: संबंधों, एवं अन्तर्विरोधों की गहरी पड़ताल और उसके बहाने मौजूदा व्यवस्था की राजनीति से एक लम्बी जिरह भी है। इस जिरह में केदारनाथ सिंह अकेले है यानि उनकी पीढ़ी का कोई अन्य कवि इसमें शामिल है मुझे नहीं लगता।

केदारनाथ सिंह के मतानुसार :- "इस संग्रह की कविता ओं में स्थानीयता पर विशेष जोर है। यानि कवि अपने स्थान से होकर अपने समय में जाता है। स्थानिकता यहाँ एक महत्वपूर्ण तत्व के रुप में आई है। जैसे 'पानी से घिरे हुए लोग'। पानी से घिरे लोग किस तरह बाढ़ से संघर्ष करते हैं। यह समाज का एक व्यापक संघर्ष है। समाज में मनुष्य उसी तरह लड़ता है जैसे बाढ़ से लोग लड़ते है।" (परिशिष्ट - 3)

"यह कितना अद्भुत है
कि बाढ़ चाहे कितनी भयानक हो
उन्हें पानी में
थोड़ी-सी जगह ज़रुर मिल जाती है
थोड़ी-सी धूप
थोड़ा सा आसमान
मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं
थोड़ी-सी आग।" [37]

ये कविताएं प्रकृति और मनुष्य के बीच रिस्ते की पहचान करती हैं एवं उसका विकास भी कराती हैं। इन कविताओं के साधारण मनुष्य के पार्श्व में एक और मनुष्य खड़ा है। वह है आज का मनुष्य- अकेला और निर्वासित। 'जानवर' नामक कविता में केदारनाथ सिंह मनुष्य को यह सलाह देते प्रतीत होते हैं कि अकेलेपन से कैसे छुटकारा पाया जाए। कवि जानवर का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि वह अकेलेपन से कैसे जूझता है।

कवि कहता है:-

"तुम क्या करते हो
अपने अकेलेपन का?
जानवर उससे खेलता है
देखो-देखो कितनी शान से
अपने अकेलेपन को चीरता-फाड़ता
चला जा रहा है जानवर
वहाँ अकेलापन
एक जबडा है
मसूढ़ा और दाँत है अकेलापन
अकेलापन उसके पुट्ठों में
गर्म खून की तरह भरा है।"[38]

कवि की विड़म्बना यह है कि सामाजिक विकास ने जहाँ मनुष्य को अकेला बनाया है, वहीं उससे बाहर रहने वाले जानवर को अकेलेपन से मुक्त रखा है। 'शहर में रात' नामक कविता में कवि ने शहरी सभ्यता पर अपनी दृष्टि डाली है:-

"बिजली चमकी, पानी गिरने का डर है
वे क्यों भागे जाते हैं जिनके घर है
वे क्यों चुप हैं जिनको आती है भाषा
वह क्या है जो दिखता है धुआँ-धुआँ सा
वह क्या है हरा-हरा सा जिसके आगे
है उलझ गये जीने के सारे धागे
यह शहर कि जिसमें रहती है इच्छाएँ
कुत्ते भुनगे आदमी गिलहरी गाएँ
यह शहर कि जिसकी ज़िद है सीधी-सादी

ज्यादा-से-ज्यादा सुविधा सुख आज़ादी
तुम कभी देखना इसे सुलगते क्षण में
यह अलग-अलग दिखता है हर दर्पण में।" [39]

तात्पर्य यह है कि जिनके पास घर है, उन्हें भी घर की पर्याप्त सुरक्षा प्राप्त नहीं है। शहर में कुछ ऐसा भी है जिसने मनुष्य को दृष्टि भंग एवं दिशा हीन कर दिया है उसके जीने की इच्छाएं उलझ कर रह गई है, वह सम्भवत: इस वजह से कि शहर के आदमी को ज्यादा-से-ज्यादा सुख-सुविधाएं एवं आजादी की चाहत है। यही कारण है कि शहरी ज़ीवन हर पल और हर दर्पण में भिन्न दिखाई देता है। शायद यह कवि की इच्छा के खिलाफ़ है इसीलिए वह इसमें सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन (टोटल चेन्ज) की मांग करता है: 'बुनने का समय' कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

"उठो
झाड़न में
मोज़ों में
टाट में
दरियों में दबे हुए धागो उठो
उठो कि कहीं कुछ ग़लत हो गया है
उठो कि इस दुनिया का सारा कपड़ा
फिर से बुनना होगा
उठो मेरे टूटे हुए धागो
और मेरे उलझे हुए धागो उठो
उठो
कि बुनने का समय हो रहा है।" [40]

यहाँ यह पंक्ति कि दुनिया का सारा कपड़ा फिर से बुनना होगा, एक सामाजिक परिवर्तन की मांग करती है। एक अन्य कविता 'वापसी' में कवि ने आज सामाजिक मनुष्य के निर्वासित होने की बात कही है।

"क्या नाम है उसका
खंजर
नीलकंठ
मुझे कुछ भी याद नहीं
मैं कितनी आसानी से भूलता जा रहा हूँ
पक्षियों के नाम
मुझे सोचकर डर लगा।" [41]

कवि इस बात से परेशान है कि वह पक्षियों के नाम भूलता जा रहा है। परन्तु भूलते जाना आज के व्यावसायिक बन गए शहरी जीवन की सच्चाई है।

इस संग्रह में केदारनाथ सिंह ने भारतीय सामाजिक परिवेश से जुड़कर वहाँ के लोगों के संघर्षरत जीवन एवं कटु अनुभवों को कविता का विषय बनाया है। ये कविताएं सीधे-सरल जीवन से जुड़ी हैं। उस सामाजिकता से जुड़ी है जहाँ मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बनकर रहना चाहता है और उसके लिए संघर्षरत है। कवि ने अपने सामाजिक अनुभवों को कविता का रुप दिया है। इसलिए संसार का सहज यथार्थ उनकी कविताओं का विषय बना है। 'टूटा हुआ ट्रक', 'बनारस', 'बसंत', 'नक्शा', 'कस्बे की धूल', 'जानवर', 'सीटी', 'बाजार' आदि कविताओं में कवि का यह संसार सरल रुप मे परिलक्षित हुआ है।

कवि नगर की अपेक्षा ग्रामीण सामाजिक जीवन के

यथार्थ चित्रण के प्रति अधिक सजग है ।

6.5 अकाल में सारस एवं बाघ कविता का विश्लेषण

केदारनाथ सिंह 'तीसरा सप्तक' के साथ अपनी मिट्टी, अपने अंचल और सामाजिक-सांस्कृतिक स्मृति का गंभीर सृजनात्मक आग्रह लेकर आगे बढ़े। 'अभी बिलकुल अभी' से लेकर 'यहाँ से देखो' तक की काव्य-यात्रा में उन्होंने अपने इस आग्रह का सृजनात्मक एवं शिल्पगत विकास किया। साथ ही, बाह्यजीवन और यथार्थ की जटिलता से अधिक सूझ-बूझ एवं परिष्कृत कला रुचि से जूझने की अपनी क्षमता को विकसित किया । 'कविता की वापसी' वाली जो विचार-धारा उनके संबंध में जन्मी, वह 'अकाल में सारस' की कविताओं में एक खुली जिन्दगी की ओर इशारा करती हुई देखी जा सकती हैं ।'अकाल में सारस' इनका बहुचर्चित संग्रह रहा है ।इस संग्रह की कविताओं की विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं :-

" केदारनाथ सिंह के नए संकलन 'अकाल में सारस' की कविताओं में हमारे समय की बची हुई जिंदगी के जगह-जगह आकर्षण दृश्यालेख हैं। काफी कुछ टूट-बिखर जाने के बाद भी कवि का इतना कुछ बचा हुआ देख लेता है जिससे उसका कविजनोचित आग्रह तुष्ट हो सके । केदारनाथ सिंह शुरू से ही भारतीय कविता की अवधारणा के पोषक रहे हैं औरउनकी कविता का वास्तविक जमीन से सीधा सरोकार रहा है । वे एक साथ ही गाँव के भी कवि है और शहर के भी । अनुभव के दोनों छोर कई बार एक साथ ही और एक ही समय में उनकी कविता में सक्रिय दिखाई देते

हैं।" [42]

यह वास्तविकता है कि केदारनाथ सिंह गाँव व शहर दोनों के कवि हैं, परन्तु 'अकाल में सारस' संग्रह की अधिकांश कविताएं ग्रामीण संवेदना का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन कविताओं में जातीय जीवन की जड़ों को टटोलने के प्रयत्न, एवं कविता का विचारों के स्तर पर सुलझापन देखने को मिलता है।

संग्रह की कविताओं के बारे में स्वयं केदारनाथ सिंह के विचार इस प्रकार है:-

"इस संग्रह में मेरी कोशिश रही है कि कविता को सरलीकृत होने से बचाते हुए अपेक्षाकृत सरल और ग्राही कैसे बनाया जाय। इस संग्रह में चरित्र ज्यादा ही स्थानिक है, ग्राम्य परिवेश बहुत सारी कवितओं में छाया हुआ है। ग्राम्य चरित्र की एक विशेषता की ओर इस संग्रह की कई कविताएं संकेत करती हैं कि किस तरह संघर्ष करता हुआ आदमी कठिन से कठिन क्षणों में भी उदास नहीं होता बल्कि संघर्षों को अपने ढंग से जारी रखता है।" 43

'अड़िमल सांस' कविता में मृत्यु से संघर्ष करती एक औरत का चित्र प्रस्तुत किया है। अन्तिम पंक्तियों में एवं स्वयं कविता का शीर्षक भी इस बात को बड़ी गहराई से सामने रखते हैं:-

'किसी ने उसकी देह छुई
कहा- 'अभी गर्म है'
लेकिन असल में देह याकि दिया
कहाँ से आ रही थी जीने की आँच
यह जाँचने का कोई उपाय नहीं था
क्योंकि डाक्टर जा चुका था
और अब खाली चारपाई पर

सिर्फ़ एक लम्बी
और अकेली साँस थी
जो उठ रही थी
गिर रही थी
गिर रही थी
उठ रही थी---- ।" [43]

केदारनाथ सिंह एक कवि के रुप में वे स्वान्त: सुखाय रचनारत है। लोकहित और सामाजिक यथार्थवाद अब उन्हें प्रमाणित करने की जरुरत नहीं है । अब वे पाठकों को सीधे वहाँ चलने का निमन्त्रण दे रहें है, जहाँ चावल दाना बनने से पहले सुगंध की पीड़ा से छटपटा रहा है :-

"चावल ज़रुरी है
ज़रूरी है आटा दाल नमक पुदीना
पर क्यों न ऐसा हो कि आज शाम
हम सीधे वहीं पहुँचे
एकदम वहीं
जहाँ चावल
दाना बनने से पहले
सुगन्ध की पीड़ा से छटपटा रहा हो ।" [44]

'अकाल में सारस' संग्रह की कविताओं को मोटे तौर पर तीन विषयों के अन्तर्गत देखा जा सकता है ।

(१) गाँव के जीवन का नवीन चित्रण
(२) जीवन-मृत्यु का संघर्ष
(३) कवि के एकांकी जीवन संघर्ष

यह संग्रह त्रिलोचन जी को समर्पित है, यह कोई संयोग

नहीं है। ग्रामीण जीवन को सहज एवं सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकृट करना उन्होंने शायद त्रिलोचन जी से ही सीखा। गाँव पर लिखी कविताएं प्राय: आंचलिक हो जाती है और स्वयं भी 'ग्रामीण' लगने लगती हैं। केदारनाथ सिंह ने इन कविताओं के माध्यम से गाँव को नए ढंग से देखने की कोशिश की है। संभवत: उनकी यह कोशिश एक महत्वपूर्ण कोशिश है, क्योंकि उनके गाँव पुराने पारंपरिक गाँव नहीं है। वस्तुत: इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है- आंचलिकता से मुक्ति। इन कविताओं में एक गहरी आत्मीयता और जीवन के नए अर्थ देखने को मिलते है। 'बोझे', 'पशु-मेला', 'कुछ सूत्र जो किसान बाप ने बेटे को दिए', 'अकाल में दूब', आदि कविताएं इसका प्रमाण हैं। 'कुछ सूत्र जो एक किसान बाप बेटे को दिए' ठेठ ग्रामीण होते हुए भी जीवन के बृहत्तर अर्थ प्रस्तुत: करते है:-

> 'मेरे बेटे
> बिजली की तरह कभी मत गिरना
> और कभी गिर भी पड़ो
> तो दूब की तरह उठ पड़ने के लिए
> हमेशा तैयार रहना
> कभी अंधेरे में
> अगर भूल जाना रास्ता / तो ध्रुवतारा पर नहीं
> सिर्फ़ दूर से आनेवाली
> कुत्तों के भूँकने की आवाज पर
> भरोसा करना।'[45]

ध्रुवतारा जो पथ प्रदर्शक माना जाता रहा है, कवि उस पर विश्वास न करके कुत्तों के भौंकने की आवाज पर विश्वास करता है

क्योंकि उससे वहाँ गॉव होने का अंदाज मिलता है। यह एक सामाजिक प्राणी का भाव-बोध है।

एक बहुत महत्वपूर्ण भाव-बोध जो इस संग्रह की कविताओं में उभर आया है वह है जीवन -मृत्यु के द्धन्द का बोध। जीवन और मृत्यु का द्धन्द प्रायः कवियों मे किसी -न - किसी स्तर पर किसी-न-किसी समय अवश्य व्यक्त होता है। केदारनाथसिंह के पूरे जीवन में यह एक बड़े परिवर्तन को लक्षित है। उन्होंने जीवन-मृत्यु को एक साथ रख इसके विभिन्न संयोगों को एक साथ देखने की कोशिश की है। 'आड़ियल सांस', 'जन्मदिन की धूप में', 'डण्ड से नहीं मरते शब्द', 'पर्वस्नान', 'न होने की गन्ध' आदि कविताओं इस प्रकार भाव प्रकट हुए हैं।

प्रस्तुत संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण कविताएं, कवि और कविता को विषय बना कर लिखी गई है। प्रथम कविता 'मातृ भाषा' से लेकर अंतिम 'प्रिय पाठक' तक कविता और कवि इस संकलन का मुख्य विषय रहा है।

वस्तुतः भाषा ही कवि का घर और अंतिम शरण-स्थली है, जैसे चींटियों के लिए बिल और हवाई जहाज के लिए हवाई अड्डा। संग्रह की ये कविताएं एक ऐसे मूल स्वप्न की खोज है जो वस्तु में बदल जाने से पहले था :-

"तब से कितना समय बीता
हम अब भी चल रहें है
आगे आगे कवि त्रिलोचन
पीछे पीछे मैं
एक ऐसे बाघ की तलाश में
जो एक सुबह

धरती पर गिरकर टूट जाने से पहले

वह था।'[46]

मातृभाषा के बिना कविता को सामान्य पाठक तक पहुँचाना असभंव है। और वर्तमान समाज में जहाँ पाठक की रुचि भ्रष्ट होती जा रही है कविता का पाठक तक पहुँचना एक दुलर्भ कार्य है। लेकिन केदारनाथ सिंह की तृष्णा पाठक तक पहुँचना है चाहे अलगे जन्म में ही क्यों न पहुँचे:-

'वर्ना कौन कवि होता है इतना भाग्यशाली

जो अपने घर से चले

और सीधे पहुँच जाए

उस दुर्लभ-अदृश्य द्वार पर

जो हमेशा एक पाठक का होता है।'[47]

वर्तमान समय में कवि का जीवन व्यक्तिवादी संवेदनशीलता के कारण खतरे में दिखता है। यह संवेदनशीलता कवि को अकेला एवं व्याकुल बना देती है। ऐसी स्थिति में कवि अपनी संवेदनाओं को प्रयत्नपूर्वक समाजोन्मुख बनाता है। तब वह अपने दु:खों का रोना न रो कर उसे समाज के दु:खो से जोड़कर देखता है। तब सभ्यता-समीक्षा की जगह वह आत्मालोचन के स्तर पर उतरता है। 'अकाल में सारस' की कविताओं में भी केदारनाथ सिंह चीजों घटनाओं और देश काल के आर पार 'उन रंगों' को देखने लगे हैं, जिनके बारे में दावे के साथ तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परन्तु वे हमेशा गहरी पीड़ा से पैदा हुए हैं और मिट्टी और धूप की खुशबू में बदल गए है।

केदारनाथ सिंह पहले की तुलना में अब संकेतों से ज्यादा काम लेते हैं। कम बोलकर वे कई बार वैसा कुछ भी सफाई

से कह जाते हैं जो विवरण की प्रचुरता के बाद भी दूसरे कवियों के लिए कठिन कार्य है ।

'बाघ' कविता का विश्लेषण

'बाघ' केदारनाथसिंह के अब तक प्रकाशित काव्य संग्रहो में नवप्रकाशित है । इसका प्रकाशन १९९६ में हुआ । 'बाघ' यद्यपि एक लम्बी कविता है परन्तु इसका शिल्प उन लम्बी कविताओं के शिल्प से भिन्न है जो 'मुक्तिबोध' की कविता अंधेरे में की नकल करके रची गई थीं । बाघ केदारनाथसिंह की एक मात्र लम्बी कविता है जो इसलिए छोटे –बड़े खंडों से मिलकर बनी है, ये खंड परस्पर संबंद्ध भी है और स्वतंत्र भी । इस कविता की प्ररेणा एवं आरम्भ के बारे में केदारनाथसिंह का कथन है:–

" 'बाघ' का लिखना कब शुरू हुआ – ठीक ठाक याद नहीं । याद है केवल इतना कि नवें दशक के शुरू में कभी हंगरी भाषा के कवि यानोश पिलिंस्की की एक कविता पढ़ी थी और उस कविता में अभिव्यक्ति की जो एक नई संभावना दिखी थी, उसने मेरे मन में पंचतंत्र को फिर से पढ़ने की इच्छा पैदा कर दी थी । उस कविता में जो एक पशु लोक था बल्कि एक भोली भाली पशुगाथा– मुझे लगा कि पंचतंत्र में उसका एक बहुत पुराना और अधिक आत्मीय रुप पहले से मौजूद है ।

कवि अपने वक्तव्य के अगले भाग में कहता है कि:–

"मुझे लगा कि पंचतंत्र एक ऐसी कृति है जो एक समकालीन रचनाकार के लिए जितनी चाहे बड़ी चुनौती हो, पर जरा–सा रुककर सोचने पर वह सृजनात्मक संभावना की बहुत–सी नई और लगभग अनुद्घाटित पर्तें खोलती–सी जान पड़ेगी ।

मुझे यह भी लगा कि एक बार यदि उस ढाँचे की कार्यकारण-बद्ध श्रृंखला को थोड़ा ढीला कर दिया जाय तो इस संभावना की कई गुना और बढ़ाया जा सकता है। वस्तुत: सृजनात्मक सत्य के इसी नए साक्षात्कार से 'बाघ' का जन्म हुआ था- लगभग आड़ी-तिरछी रेखाओं के बीच घिरे एक शिशु की क्रीड़ा की तरह।" [48]

आज तक केदारनाथ सिंह ने अपनी रचनाओं में जिस मूल्य को अर्जित करने की कोशिश की, 'बाघ' सम्भत: उसी के रुप में प्रतीकित है। उदाहरण के लिए 'जमीन पक रही है' संग्रह की 'सादा पन्ना' कविता में 'बाघ' आया है, कवि कहता है :-

'गौर से देखो / वहाँ दो भूरी आँखें चमक रही हैं / एक खूबसूरत बाघ के बालों की लहक।' इसी प्रकार 'यहाँ से देखो' संग्रह की 'जानवर' कविता का जानवर भी 'बाघ' ही है। कुँवर नारायण के कविता संग्रह 'अपने अपने' की 'पूरा जंगल' शीर्षक कविता में 'बाघ' को उसकी सुन्दरता एवं भयानकता के साथ चित्रित किया है। संभवत: केदारनाथ सिंह की इस कविता के पीछे यह भी एक प्रेरणा रही हो। क्योंकि 'बाघ' एक प्रतीक के रुप में इंसान-पन और सुन्दरतम रुप में आया है।

गोपालराय समीक्षा पत्रिका में 'बाघ' का मूल्यांकन करते हुए लिखते है कि :- "अच्छी कविता अर्थ बताने के पहले ही बहुत कुछ कह जाती है, अपनी संवेदना से पाठक या श्रोता को वशिभूत कर देती है। केदार जी की इस कविता पर यह बात पूरी तरह से लागू होती है। 'बाघ' के विभिन्न अनुषंगों को पढ़ते समय कविता पढ़ने का 'सुख' सहज ही उपलब्ध हो जाता है। यह जिज्ञासा हमें शब्दों से जूझने को विवश करती है और जिसके पास कविता को दोबारा-तिबारा पढ़ने का धैर्य या फुर्सत नहीं है, वह

केवल इस रहस्यमय सुख का अनुभव कर आगे बढ़ जाता है ।" [49]

'बाघ' कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कविता का 'बाघ' कुछ और होने से पहले बाघ है । क्योंकि कवि कहता है :-

"वह अपने शिकार का खून
पी चुकने के बाद आराम से बैठा होता है ।
किसी कथा की ओट में ।'

इसी तरह कवि लोमड़ी, की आँखो के द्धारा 'बाघ' को देखता है :-

"एकटक देखती रही बाध के जबड़ों कों
जिनसे अब भी ताजा खून की गंध आ रही थी ।"[50]

'बाघ' कविता के अधिकांश अनुषंगों की बुनावट में नाटकीयता घुली-मिली है । अनुषंग दो में 'बाघ' शहर में चुपचाप आता है और उसे कोई देख नहीं पाता । केवल सुबह के अखबार के माध्यम से उसके आने की खबर मिलती है । खबर के साथ 'बाघ' सुबह की चर्चा का विषय बनता है :-

"सुबह की धूप में
अपनी-अपनी चौखट पर
सब चुप हैं
पर मैं सुन रहा हूँ
कि सब बोल रहे हैं
पैरों से पूँछ रहे हैं बाल
नखों से पूँछ रहे हैं कंधे
बदन से पूछ रही है खाल
कि कब आएगा
फिर कब आएगा बाघ ? ।" [51]

नाटकीयता के कारण यह कविता ज्यादा प्रभाव शाली बन गई है। इस कविता की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि है इसकी बोल-चाल की भाषा, जिसके अनेकों उदाहरण हैं। जैसे :-

"उस दिन बाघ
रोता रहा रात-भर
सबसे पहले एक लोमड़ी आई
और उसने पूछा
रोने का कारण
फिर खरगोश आया
भालू आया
साँप आया
तितली आई
सब आए
और सब पूछते रहे
रोने का कारण
पर बाघ हिला न डुला
बस रोता रहा
रात-भर।" [52]

उपरोक्त उदाहरण में सीधी एवं सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। ऐसी भाषा जो जन साधारण की, रोज-मर्रा की बोल-चाल की भाषा है।

यह कविता प्रथम वाचन का सुख देती है। यद्यपि भाषा सरल है जैसी बाहर से दिखती है परन्तु अर्थ की दृष्टि से गूढ़ है जो प्रथम वाचन के बाद की चीज है। बिम्ब धर्मी कविता होने के कारण हमें कवि की मूल संवेदनाओं में झाँकने पर विवश करती है। इसके

लिए कवि के कथ्य महत्वपूर्ण है जो उनकी संवेदनाओं से भिन्न नहीं है। 'बाघ' के बारे में कवि का कथन है :-

"आज का मनुष्य बाघ की प्रत्यक्ष वास्तविकता से इतनी दूर आ गया है कि जाने-अनजाने बाघ उसके लिए एक मिथकीय सत्ता में बदल गया हैं। पर इस मिथकीय सत्ता से बाहर बाघ हमारे लिए आज भी हवा-पानी की तरह एक प्राकृतिक सत्ता है, जिसके होने के साथ हमारे अपने होने का भवितव्य जुड़ा हुआ है।"[53]

वस्तुत: 'बाघ' और मनुष्य के सह अस्तित्व की समस्या कवि की उत्तर आधुनिक सोच एवं संवेदना का प्रमाण है। केदारनाथ सिंह बाघ को मिथकीय रुप में समकालीन मानते है। उनके इस कथन से नवें दशक का आरम्भ प्रतीत होता है। क्योंकि बाघ के आने की खबर से उत्पन्न कौतूहल और डर के बारे में कवि कहता है :-

'सच्चाई यह है कि हम शक नहीं कर सकते
बाघ के आने पर
मौसम जैसा है
और हवा जैसी बह रही है
उसमें कभी भी और कहीं भी
आ सकता है बाघ।"[54]

नवें दशक के आरम्भ में हिंसा और आंतक की जो आपातकालीन स्थिति बनी थी, सम्भवत: उसी ने कवि की इन नई संवेदनओं को जन्म दिया। क्योंकि कविता का बाघ मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा प्रतीत होता है। वह लोमड़ी से पूछता है:-

'ये आदमी लोग
इतने चुप क्यों रहते हैं आजकल?

एक दिन बाघ ने लोमड़ी से पूछा
लोमड़ी की समझ में कुछ नहीं आया
पर उसने समर्थन में सिर हिलाया
और एकटक देखती रही बाघ के जबड़ों को
जिनसे अब भी ताज़ा खून की गंध आ रही थी
फिर कुछ देर बाद कुछ सोचते हुए बोली
कोई दुख होगा उन्हें ।'[55]

एक अन्य प्रसंग में हम बाघ को एक नये मानवीय बोध से खुश होता पाते है जब वह खरगोश के मुलायम एवं सफेद बाल छूता है:

'फिर उसी तरह उन नरम-नरम रोंओ में
अपने नखों को फिराता रहा
और उस मुलायम सी देह को
इस तरह सहलाता रहा
जैसे उसकी जीभ
उस अद्भुत कोमलता का
स्वाद ले रही हो ।'[56]

इस अनुषंग में भी मानवीय संवेदनाओं को बहुत ही मार्मिक एवं उत्तम ढंग से उजागर किया गया है । स्वाद और नींद से लदी बैलगाड़ियों को देखकर बाघ को उनसे प्यार हो जाता है ।

केदारनाथसिंह ने बाघ को वहाँ पहुँचा दिया है जहाँ उसका सारा डरावनापन सौंदर्य भावना में बदल गया है। 'त्रिलोचन' संबंधी खण्ड में वर्णित मिट्टी का बाघ यही बाघ है जो बच्चों के लिए सौंदर्य और आनंद का प्रतीक बना है। 'बाघ' को खिलौने के रूप में खोजना उनकी एक अद्भुत खोज है।

आश्चर्यजनक सी बात है कि केदारनाथसिंह कहते हैं:–

'तब से कितना समय बीता
हम अब भी चल रहे हैं
आगे– आगे कवि त्रिलोचन
पीछे–पीछे मैं
एक ऐसे बाघ की तलाश में
जो एक सुबह धरती पर गिरकर
टूट जाने से पहले
वह था।'[57]

ऐसी प्रतिभा किसी कलाकर के पास ही होगी। और कहना न होगा, वह कलाकर केदारनाथ सिंह ही है जिन्होंने कविता में बाघ को मूर्तित किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि कवि ने किसी सुन्दर पक्षी या जानवर को क्यों नहीं चुना? वह सम्भवत: इसलिए कि आधुनिक परिस्थितियों में जहाँ मनुष्य पूर्णत: स्वर्थी एवं हिंसक बन गया है उसका सटीक प्रतीक 'बाघ' ही हो सकता था।

'बाघ' कविता का फलक बहुत विस्तृत है, इसके एक खण्ड में कवि संसार के विनाश की कल्पना से काँप उठता है। उसे यह डर भी है कि एक दिन दुनिया के सारे बाघ समाप्त हो जायेगे। लेकिन उसके नष्ट होने के बाद भी कवि जीवन से विमुख होने को तैयार नहीं है क्योंकि उसे विश्वास है कि मनुष्य बचा रहा तो कला और साहित्य के साथ वह 'बाघ' की सृष्टि कर लेगा ।

इस पूरी कविता में केदारनाथ सिंह की कोशिश रही है कि बाघ को किसी एक, बिन्दु पर इस तरह कीलित न किया जाए कि वह अपनी ऐन्द्रिय मूर्तिमत्ता को छोड़कर किसी एक विशेष

प्रतीक में बदल जाय। इसलिए श्रृंखला की हर कड़ी में बाघ एक नयेपन, एक नये अनुषंग के साथ आता है। और कवि अपने इस प्रयास में पूरी तरह सफल है। यद्यपि भूमिका में वह थोड़ा आशंकित प्रतीत होता है। कविता में बाघ हमें प्रत्येक उपस्थिति में चौंकाता है और सोचने पर विवश करता है। कभी वह रात में चुपचाप शहर में चला आता है तो कभी शिकार करने के बाद किसी कथा की ओट में छिप जाता है। कभी वह भगवान बुद्ध के सामने दिखाई देता है तो कभी आदमी को दु:खी देख हैरतमन्द दिखता है। इस तरंह वह प्रत्येक अनुषंग में नये-नये सवाल और अर्थ-बोध की समस्याओं का खुलाशा करता है।

6.6 उत्तर कबीर और आख्यान की परंपरा

केदारनाथ सिंह नयी कविता के एक ऐसे सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनकी काव्य - उपस्थिति, सम्पूर्ण समकालीन काव्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। 'तीसरे सप्तक' के गीतों से लेकर 'अकाल में सारस' तक की कविताओं ने प्रकृति एवं संस्कृति के बीच के रिश्ते की एक पहचान बनाई। 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएं' संग्रह के माध्यम से कवि ने आश्चर्य जनक रुप से काव्य-संवेदना में एक नये सिरे से, एक नए दौर की शुरूआत की। इन कविताओं में कवि ने प्रकृति, मनुष्य और समाज को यथार्थ के धरातल पर खड़ा कर उनके बीच अन्त संबंधों एवं अन्तविरोधों की गहरी जांच पड़ताल की है। इस कोशिश में उनके साथ समकालीन कविता का कोई और कवि नहीं है बल्कि परवर्ती पीढ़ी के कवियों के लिए यह संग्रह एक चुनौती की तरह है।

आज केदारनाथ सिंह के कवि कर्म के लिए सबसे बड़ी

चुनौती को जानने के लिए उनके इस संग्रह 'उत्तर-कबीर एवं अन्य कविताएं' की कविताओं से गुजरना होगा। इस संग्रह को केदारनाथ सिंह की काव्य-यात्रा के तीसरे पड़ाव के रुप में देखा जा सकता है। यहाँ यथार्थवाद का पाट चौड़ा नहीं बल्कि ज्यादा साफ़ और निर्मम हुआ है।

केदारनाथ सिंह से आलोचकों की शिकायत रही कि यथार्थ से सीधा साक्षात्कार नहीं करते बल्कि आड़े-तिरछे ढंग से उस पर चोट करते हैं। तथा इस समय की कविताएं स्मृति विहीन कविताएं हैं। इस विषय पर केदारनाथ सिंह का ब्यान इस प्रकार – " उत्तर कबीर और अन्य कविताएं" संग्रह की कविताओं में मेरी एक कोशिश रही है कि महत्वपूर्ण सांस्कृतिक स्मृतियाँ कैसे उभर -कर आएं क्योंकि इस समय की कविताओं पर यह आरोप रहा है कि वे स्मृति विहीन कविताएं हैं। ऐसी कई कविताएं इस संग्रह में है जहाँ इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है।" [58]

उनकी कविताओं को देखकर भी लगता है कि वे चीजों की पुन: व्याख्या कर रहे हैं। उनकी कविता का अधिकांश क्षेत्र गाँव है, परन्तु आज की कविताओं में गाँव वह गाँव नहीं रह गया है जो सन् साठ के दशक में था। 'गाँव आने पर' उनकी यह कविता इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है :-

"अब आ तो गया हूँ
पर क्या करूँ मैं ?
एक बूढ़े पक्षी की तरह लौट-लौटकर
मैं क्यों यहाँ चला आता हूँ बार-बार ?
पृथ्वी पर ऊब
क्या उतनी ही पुरानी है

जितनी दूब?

x x x

जो मेरे नहीं है

आख़िर वे भी तो मेरे ही हैं

चाहे जहाँ भी रहते हों

फिर क्यों यह ज़िद

कि यही-यही

सिर्फ़ यही मेरा घर है?

x x x

छू लूँ किसी को ?

लिपट जाऊँ किसी से?

मिलूँ

पर किस तरह मिलूँ

कि बस मैं ही मिलूँ

और दिल्ली न आए बीच में।" [59]

पूरी कविता का अर्थ 'और दिल्ली न आए बीच में' के माध्यम से खुलता है। केदारनाथ सिंह जैसे निपट गाँव से आए कवि की विडम्बना यही है कि वे शहरी बन नहीं पाते क्योंकि उन्हें शहर की अमानवीयता तोड़ देती है। 'गाँव आने पर' कविता का अन्तर्द्वन्द यही है- विस्थापन-बोध। आत्म-निर्वासन के बजाय यह विस्थापन-बोध की क्रूर विडम्बना की एक अत्यन्त प्रभाव शाली कविता है।

वस्तुत: केदारनाथ सिंह की कविताएं त्रिलोचन जी की तरह ठेठ जीवन का विशुद्ध बोध न होकर गाँव और शहर का मिला-जुला संसार हैं। और प्रस्तुत संकलन में दोनों ही तरह की

कविताएं देखी जा सकती हैं। ये कविताएं समय, समाज, संस्कृति और राजनीति की परस्पर टकहराटें प्रकट करतीं हैं। विस्मय की बात है कि कवि को चीजों के गायब हो जाने या खो देने की चिन्ता अधिक हैं। जैसे 'गाँव आने पर' कविता में बेघर होने का डर है। 'गूँज' एवं 'घर का विचार' कविताओं में बेघर होने की विवशता। 'कुदाल' एवं 'कुएं' जैसी कविता ओं में श्रम बेकार एवं अर्थहीन तथा लोकजीवन लुप्त है। 'लोरी' और भिखारी ठाकुर कविताओं में लोक-संस्कृति उपेक्षित दिखाई देती है। 'विकास-कथा' और 'खुलेपन में पहिया' कविताओं में अर्थव्यवस्था डगमगाई प्रतीत होती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की लोक-संस्कृति में भिखारी ठाकुर जैसे कवि का विशेष योगदान है तथा केदारनाथ सिंह ने इस विरल कवि की करुणा भरी वाणी को पहली बार सार्थक ढंग से पकड़ने की कोशिश की है। सच्चे अर्थों में भिखारी ठाकुर जैसे कवि आज के लोक जीवन में एक मिथ हैं। वास्तव में यह कविता संस्कृत और उसके सच्चे कवि (लोक कवि) की ट्रेजेडी की कविता है।

यहाँ पर केदारनाथ सिंह की जिन दो और कविताओं का जिक्र करना मैं जरूरी समझता हूँ वे हैं 'नमक' और 'रोहतांग के दर्रे में एक बर्फीली चट्टान के समाने रूककर'। इन दोनो कविताओं में आख्यानपरकता और बिम्ब मौजूद हैं। बिम्ब इन कविताओं को चित्रण की ओर ले जाता है तथा आख्यान वर्णन की ओर। ये तत्व उनकी अन्य कविताओं में भी मिलते है। ये दोनों काव्य-वस्तु की आंतरिक संरचना की निर्मिती को आयाम देने वाले तत्व है।

'नमक' कविता में आरम्भ से अन्त तक एक नाटकीय

अन्दाज हैं । इस कविता में नमक स्त्री की निमति का प्रतीक है, जो दाल के फीकी रह जाने के कारण पति समेत सारे-परिवार के ताने सहती है । दूसरी कविता ऐन्द्रिय सौन्दर्य वाली गहरे अर्थ विन्यास की, बिम्बों एवं प्रतीकों की कविता है। नाटकीय स्थितियों को अनुक्रम में बांधते संवादों में आख्यानपरकता रीढ़ की हड्डी की तरह है । कुल मिलाकर इस संग्रह की कविताएं एक नई परम्परा की कविताएं हैं जो नए अर्थ स्थापित करती हैं और नये कवियां कें पौराणिक आख्यानों की परम्परा से हटकर है जो मिथ और प्रतीक को अलग-अलग देखती है । स्वयं केदारनाथ सिंह जी का कथन है कि-

"उत्तर कबीर एवं अन्य कविताएं' विशेष रुप से ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि जहाँ एक ओर कबीर को लेकर पूरे हिन्दी समाज में उत्साह है वहीं दूसरी ओर यह भी सच है कि कबीर को धीरे-धीरे हमने मिथक में बदल दिया है। इस संग्रह की 'उत्तर कबीर' कविता में स्वयं कबीर के मुँह से कहलवाया है कि :-

"वो देखो--- वो देखो
कबीर सूत मिल
कोई धीरे से हँसकर कहता है
मेरे कान में,
कबीर सूत मिल ।
भई वाह / मगर यह मिल क्या है?
यह कबीर कौन है कबीर सूत मिल में
सोचता हूँ मैं
इस नाम ने
जैसे हर नाम ने

मुझे चक्कर में डाल दिया है ।

यह नाम क्या होता है?

कोई ठप्पा?

कोई चीख?

कोई चुभन जो छिपी रहती है

अपनी ही गूँज में?

क्या है नाम?

आधुनिक परिस्थिति मे कबीर एक नाम बन कर रह गया है । जीवन्त उपस्थिति का रुपक में बदल जाना, सामाजिक प्रवृत्ति का हिस्सा है और विडम्बनापूर्ण हैं । उत्तर कबीर एवं अन्य कविताएं इसी सामाजिक विडम्बना को उजागर करती हैं ।" [60]

*****

संदर्भ – ग्रंथ

1.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 115
2.	वही	वही	पृ. 117
3.	वही	वही	पृ. 117
4.	गीत	दिनेश सक्सेना: भूपेंद्र कुमार स्नेही	पृ. 27
5.	काव्य के रूप	गुलाब राय	पृ. 126
6.	आधुनिक हिन्दी गीत–काव्य: विषय और शिल्प	डा. जीवन प्रकाश जोशी	प. 17
7.	काव्य के रूप	गुलाब राय	पृ. 129
8.	आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना – शिल्प	डा.हरदयाल	पृ. 360
9.	नयी समीक्षा: नये संर्दभ	डा. नगेन्द्र	पृ. 101
10.	विवेक– विवेचन	केदारनाथ अग्रवाल	पृ. 43
11.	कवि केदार नाथ सिंह	भारत ययावर एवं राजा खुगशाल	पृ. 46
12.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 123
13.	वही	वही	पृ. 125
14.	वही	वही	पृ. 124
15.	वही	वही	पृ. 127
16.	वही(वक्तव्य)	वही	पृ. 128
17.	आधुनिक हिन्दी	डा. जीवनप्रकाश जोशी	पृ. 278

	गीत काव्य: विषय और शिल्प		
18.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 115
19.	वही	वही	पृ. 115
20.	वही(वक्तव्य)	वही	पृ. 116
21.	वही(वक्तव्य)	वही	पृ. 114
22.	अभी बिलकुल अभी (प्रकिया)	केदारनाथ सिंह	पृ. 128
23.	वही	वही	पृ/128
24.	वही	वही (रचना की आधीरात)	पृ. 138
25.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्द किशोर नवल	पृ. 131
26.	परिशिष्ट ३	केदारनाथ सिंह	पृ281
27.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्द किशोर नवल	पृ. 133
28.	वही	वही	पृ. 14
29.	वही	वही	पृ. 12
30.	वही	वही	पृ24-25
31.	वही	वही	पृ.33
32.	वही	वही	पृ.38
33.	वही	वही	पृ.58
34.	वही	वही	पृ.65
35.	वही	वही	पृ.91
36.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ.118
37.	यहा से देखो	केदारनाथ सिंह	पृ17-18
38.	वही	वही	पृ.31

39.	वही	वही	पृ 37
40.	वही	वही	पृ.41
41	वही	वही	पृ.41
42.	प्रतिनिधि कविताएं	परमानंद श्रीवास्तव	पृ. 05
43.	परिशिष्ट 3		पृ 283
44.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ.13
45.	वही	वही	पृ.19
46.	वही	वही	पृ.32
47.	वही	वही	पृ.100
48.	वही	वही	पृ.5
49.	समीक्षा (पत्रिका)	गोपाल राय	जून 1997 पृ.02
50.	बाघ	केदारनाथ सिंह	पृ.13-22
51.	वही	वही	पृ.13-14
52.	वही	वही	पृ.31
53.	वही(वक्तव्य)	वही	पृ.5
54.	वही(वक्तव्य)	वही	पृ.11
55.	वही	वही	पृ.22
56.	वही	वही	पृ.36
57.	वही	वही	पृ.40
58.	(वक्तव्य)	वही	परिशिष्ट
59.	उत्तर केदार एवं अन्य कविताए	वही	पृ.11-12
60.	परिशिष्ट – 3	वही	पृ.11

*****

सप्तम अध्याय

केदारनाथ सिंह का काव्य शिल्प

सप्तम अध्याय

केदारनाथ सिंह का काव्य शिल्प

आधुनिक काल कई दृष्टियों से अन्वेषणों का काल रहा है। साहित्य भी विषय, रूप और शिल्प की दृष्टि से अन्वेषणों एवं विविधाओं से भरा पड़ा है। गद्य एवं पद्य दोनों ही प्रकार के साहित्य नवीनताओं से भरे हैं। काव्य-शिल्प की दृष्टि से तो इसे क्रांतिकारी युग कहा जा सकता है। वस्तुत: सौंदर्य चेतना प्राचीन काल से ही विकसित होती आ रही है, परन्तु इस युग में होने वाले परिवर्तनों पर विश्व-स्तर पर होने वाली घटनाओं की गुणात्मक छाप देखी जा सकती है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली उपलब्धियों एवं प्रभावशाली घटनाओं ने सर्जक को रचना की नयी एवं जटिल अभिव्यक्ति दी। इस नयी सौंदर्याभिरूचि से सर्जक के भाव बोध भी जटिल होते गए जिससे कहीं-कहीं नकारात्मक स्वर भी उभरा। रचनाकार को जिस मूल समस्या का सामना करना पड़ा, वह थी सम्प्रेषणीयता। सम्प्रेषण का समाधान करते-करते प्रयोगवाद एवं नई कविता की खोज की गई। इसे कला-मूल्यों की खोज भी कह सकते हैं।

समकालीन कवियों ने भी शिल्प के नये-नये प्रयोग किए और उसके माध्यम से सम्प्रेषण की समस्या के समाधान में लग गए। इसके कारण बहुत सारे लेखकों की कविताएं इस दृष्टि में बहुत दुरूह हो गई थी।

नया कवि अपनी रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट करने के साथ-साथ अपने शिल्प और रुप के प्रयोगों को न्याय संगत सिद्ध करने में लगा था। नये कवियों ने काव्य के शिल्प-पक्ष पर काफी

कुछ लिखा है और 'शिल्प' शब्द का आशय समझने का भी प्रयत्न किया है ।

वस्तुत: 'शिल्प' शब्द को समझने के लिए हमें इसके विभिन्न तत्वों तथा सौन्दर्य संबंधी विवेचनों का सहारा लेना होगा । इससे केदारनाथ सिंह के शिल्प पक्ष को समझने में आसानी होगी ।

'शिल्प' शब्द का इतिहास बहुत पुराना है । शायद मनुष्य के मन में निर्माण की प्रवृत्ति जाग्रत होने के साथ-साथ ही 'शिल्प' का जन्म हुआ होगा । यह बात अलग है कि अपने आधुनिक अर्थ एवं स्वरुप तक पहुँचने के लिए इसे प्रयोगों की एक लम्बी यात्रा तय करनी पडी होगी । ऐसा लगता है कि यह शब्द प्रारम्भ में व्यक्ति की रचनात्मक प्रतिभा के किसी विशेष पक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ होगा ।

डा. नगेन्द्र के अनुसार :- "शिल्प' शब्द का आयात साहित्य -समीक्षा में प्राय: तब से हुआ है जब से ललित कलाओं के अन्त:सम्बन्ध तथा पारस्परिक अन्तर्निर्वेश की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्तर पर विशेष चर्चा होने लगी है ।" [1]

काव्य शिल्प के तत्वों पर नये कवियों ने विस्तार से लिखा है । लेकिन सभी तत्वों का एक-एक कर विवेचन या विश्लेषण किसी भी कवि ने नहीं किया । जिसकी रचना प्रक्रियां में परिस्थितियों के अनुसार जो भी भाव उभरकर आए उन्हीं को सर्वोपरीमानकर उनकी चर्चा कर दी ।

मोटे तौर पर देखा जाय तो 'काव्य-कृति' के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य की अभिव्यक्ति का ढांचा तैयार किया जाता है । उन्हें काव्य तत्वों के अन्तर्गत समाहित किया जाता है । इस संबंध में गिरिजा कुमार माथुर का कथन है कि "शिल्प-

सम्बन्धी तत्वों के एक ऐसे विधान की आवश्यकता है, जो न केवल भाषा, छन्द, गति-विरामों, संगीत के मूल सिद्धान्तों को निश्चित करे बल्कि वह हमारे काव्य-विकास में भी सहायक हो। अलंकार-शास्त्र की भांति काव्य का गणित या व्याकरण अथवा बाह्य सजावट ही बनकर न रहा जाय।" [2]

काव्य-शिल्प के आत्यंतिक रुप में इन तत्वों की गिनती करना एक दुर्लभ कार्य है। क्योंकि शब्द योजना, भाषा, छन्द, लय, तुक, उपमान, बिम्ब, प्रतीक आदि तत्वों के साथ छोटी कविता, लम्बी कविता, काव्य-नाटक, नवगीत आदि काव्य-रूपों को मिला कर इस क्षेत्र को जितना चाहे विस्तृत किया जा सकता है। तार सप्तक के कवियों ने इसे अत्यन्त विस्तृत रूप देने की कोंशिश की, जिसका जिक्र करते हुए गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा है:

"नये विषयों के साथ -साथ उपमान, प्रतीक, चित्र, रंग, छन्द, लय, अन्त: संगीत, भाषा और शब्द योजना के नवीन प्रयोग स्थिर हुए। इन सबने मिलकर रूप-विधान की दिशा में एक व्यापक क्रांति उत्पन्न कर दी है।"[3]

नये कवियों ने शिल्प के प्रमुख तत्वों में से भाषा और छन्द पर सबसे अधिक लिखा है। इसका एक मुख्य कारण यह रहा है कि पश्चिम में भी भाषा तत्व को सर्वोपरि माना। यह सत्य है कि काव्य में सबसे पहले भाषा और शब्द आते हैं और शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही रचनाकार की रचना को सुदृढ बनाती है। अतएव मै सर्वप्रथम केदारनाथ सिंह की काव्य भाषा का जिक्र करना समीचीन समझता हूँ।

7.1 काव्य-भाषा:

काव्यभाषा या कविता की भाषा काव्य-शिल्प की चर्चा में एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। वैसे तो खड़ी बोली का आरम्भ भारतेन्दु युग में ही हो गया था, और द्विवेदी -युग में उसका काफी उत्थान हुआ, लेकिन काव्य भाषा के रूप में इसे परिष्कृत रूप छायावाद में ही मिल सका। भाषा के प्रति द्विवेदी युगीन सजगता एवं आग्रहशीलता को महत्व देते हुए भी नया कवि उसकी कमजोरियों से आँखे नहीं मूंदता। केदारनाथ सिंह से स्पष्ट लिखा है कि:

"द्विवेदी युग का कवि शब्द को उसके कोशगत अर्थ में ही प्रयुक्त करता था जबकि छायावादी कवि ने काव्य -भाषा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर काव्य -भाषा की सोच में ही अन्तर ला दिया था।"[4]

वस्तुत: कविता का शब्द कोशगत शब्द की तरह मात्र सूचना अथवा तथ्य कथन के लिए नहीं होता। वह लेखक की भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से भी अनुरंजित होता है। इसीलिए पश्चिमी विद्वान आई. ए. रिचड्‌र्स ने अर्थ के 'सेन्स', 'फीलिंग', 'टोन', और 'इन्टेंशन' ये चार प्रकार बताते हुए 'फीलिंग' की प्रधानता प्रमुख रूप से मानी है। तात्पर्य यह है कि कविता का शब्द मात्र सूचना देने वाला सामान्य शब्द नहीं बल्कि जटिल होता है। छायावादी कवियों ने शब्द के खास रुप को समझते हुए द्विवेदी युगीन शब्द सजगता से आगे कदम उठाया। छायावादी कवियों ने जीवन की भाषा को अपनाते हुए भाषा एवं आम बोल चाल की भाषा के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न किया।

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक प्रकृत एवं मूल साधन है।

अत: एकाध कवि को छोड़ कर सभी नये कवियों ने उसे सिद्धान्त रुप में माना और प्रर्याप्त महत्व दिया। पश्चिमी कवि टी. एस. इलियट का मानना है: –

'कवि भाषा को जहाँ एक ओर सुरक्षित रखता है वहीं दूसरी ओर विकसिरत एवं बेहतर भी बनाता है'[5] लगभग यही आशय अज्ञेय ने इस प्रकार व्यक्त किया है : –

'कवि का उद्देश्य केवल शब्द की निहित सत्ता का पूरा उपयोग करना नहीं बल्कि उसकी जानी हुई सम्भावनाओं के परे तक उसका विस्तार करना है।'[6]

वास्तव में भाषा के प्रति सजगता आधुनिक युग की कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। इस नाते यदि नयी कविता की भाषा में सरलता की अपेक्षा जटिलता भी आई है तो उसे एक विवशता के रुप में सही, नये कवि ने स्वीकार किया है। अलग-अलग विचारों के होते हुए भी प्राय: सभी नये कवि कविता की भाषा को समान महत्व देते हैं। इसका एक मुख्य कारण है कि कविता के लिए भाषा के माध्यम की अनिवार्यता और इसका प्रमाण है भाषा और भाषा के प्रश्न के प्रति नये कवि की सजगता।

अज्ञेय ने भाषा का दोहरा प्रयोजन मानते हुए लिखा है : –

'एक ओर तो वह सत्य को जानने का साधन है और दूसरी ओर उस माने हुए सत्य को प्रेषित करने का साधन है।'[7]

अज्ञेय ने भाषा के महत्व को बढ़ाते हुए एक नए मत की स्थापना की थी। डॉ. नामवर सिंह ने भाषा के प्रति इस दृष्टि को रेखांकित करते हुए टिप्पणी की है : –

'इस मान्यता की नवीनता यह है कि इसमें भाषा को जानने का भी साधन माना गया है। इससे पहले भाषा केवल

अभिव्यक्ति का साधन मानी जाती थी ।' [8]

उत्तरछायावादी कवियों ने संवेदना के स्तर पर हिन्दी कविता को जो योगदान दिया वह भाषा के स्तर पर नहीं दिया । उन्होंने बस यही सिद्ध कर दिखाया है कि सीधी-सरल, अभिधात्मक भाषा भी काव्य हो सकती है; किन्तु उसके साथ यह भी सिद्ध हो गया कि वह लोकप्रिय तो हो सकती है; किन्तु उसकी शक्ति अधिक समय तक अक्षुण्ण नहीं बनी रह सकती ।

भाषा की सरलता एवं स्पष्टता पर प्रगतिवादी कवियों ने उत्तर छायावादी कवियों से अधिक ध्यान दिया । रामविलास शर्मा ने काव्य-भाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है-

'भाषा में अत्याधिक मिठास की खोज सामाजिक ह्रास का चिन्ह है । वैसे ही वाक्पटुता जबान का चटखारा अत्यधिक परिष्कार और बनाव-सिंगार आदि ऐसे गुण हैं जो पतनशील साहित्यिक में मिलते हैं । ' [9]

प्रगतिवादी कवियों ने शब्द की लक्षणा-व्यंजना शक्तियों का उपयोग कम किया है किन्तु जनभाषा के निकट आने के आग्रह ने उसे मुहावरों के अधिकाधिक प्रयोग के लिए प्रेरित किया है ।

नये कवियों ने भाषा को लेकर तरह-तरह के प्रयोग प्रारम्भ किये । यही कारण है कि विभिन्न कवियों की भाषा की प्रकृति में परस्पर जितना अन्तर और वैषम्य नयी कविता में है उतना आधुनिक काल की हिन्दी कविता में पहले कभी नहीं था । अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही आदि की काव्य-भाषा में बहुत अधिक अन्तर है

तथापि उनमें कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियां हैं जिनसे नयी कविता की भाषा का सामान्य स्वरूप बनता है।

'डा. हरदयाल के अनुसार नकेनवादी प्रयोगवादियों का मानना है कि कविता एक ओर भावों, विचारों, अथवा दर्शनों से नहीं लिखी जाती, दूसरी ओर छन्दों और अलंकारों आदि से भी नहीं लिखी जाती, वह शब्दों से लिखी जाती है।' [10]

एक कवि की भाषा शब्दों से बनती है इसे अज्ञेय जी ने भी स्वीकारा है :-

'भाषा का उपयोग मैं करता हूँ निस्संदेह, लेकिन कवि के नाते जो मैं कहता हूँ वह भाषा के द्वारा नहीं केवल शब्दों के द्वारा।' [11]

चंद्रकांत देवताले का भाषा संबंधी विचार इस प्रकार है-

'हमारी काव्य-भाषा कई अर्थों में मुश्किल पैदा करती है। एक तो वह सीधे अर्थों में मात्र बोली नहीं है। और जिस रुप में वह जातीय भाषा है, उस पर आंग्ल भाषा के विन्यास की छाप कई तरह से है। फिर भी हर कवि की एक निजी शब्द-सम्पदा भी होती है जो उसे घर और अपने आसपास के लोक से संस्कार रूप में प्राप्त है।' [12]

समकालीन रचनाकारों की सूची में केदारनाथ सिंह एक मात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने भाषा को और भाषा में शब्दों के उचित प्रयोग को महत्व दिया है। वे मानते हैं कि कविता का सीधा संबंध भाषा से है। केदारनाथ सिंह स्वयं लिखते है :-

'कविता का सबसे सीधा सम्बन्ध भाषा से है। भाषा प्रेषणीयता का सर्वसुलभ माध्यम है। अत: 'शुद्ध कविता' जैसी किसी चीज की कल्पना बिल्कुल बेमानी है।' [13]

कवि शब्द की जिन जड़ों की बात करता है वस्तुतः वह स्वयं भी अपनी कविताओं में उन जड़ों से जुड़ा हुआ है१

'मेरे गाँव से दिखाई पड़ता है
माँझी का पुल
मैंने पहली बार
स्कूल से लौटते हुए
उसकी लाल-लाल ऊँची मेहराबें देखी थीं
यह सर्दियों के शुरू के दिन थे
जब पूरब के आसमान में
सरसों के झुण्ड की तरह डैने पसारे हुए
धीरे-धीरे उड़ता है माँझी का पुल।' [14]

इन पंक्तियों में कवि ने ग्रामीण अंचल की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है जो कि उनके रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी हुई है। उनकी ग्राम्य तथा आंचलिक परिवेश से निकटता, एवं अनेक भाषाओं से परिचय के कारण, भाषा वैज्ञानिक एवं व्याकरण से संबंधित बिम्बों से भरी है।

एक साक्षात्कार के दौरान देवेन्द्रकुमार चौबे ने केदारनाथ सिंह से प्रश्न किया ' एक कवि के रुप में भाषा की विविधता का निर्वाह आप किस रुप में करते है ?' उसके उत्तर में केदार जी कहते है :-

'भाषा का सवाल एक बड़ा सवाल है। और यदि मैं कहूँ तो एक कवि के लिए वह जीवन-मरण का सवाल है। मैं भाषा को लोगों की जबान पर से लाने की कोशिश करता हूँ और साथ ही यह भी कोशिश करता हूँ कि हिन्दी का जो अपना खास मिजाज है, उससे छेड़छाड़ न की जाए। एक चीज की ओर मेरा ध्यान बराबर

रहा है कि शब्दों को उनकी जड़ों से ही लाया जाए। जड़ों से मेरा मतलब जीवन के उन स्रोतों से है, जहाँ से शब्द नया अर्थ ग्रहण करते हैं। यहाँ यह कहना जरूरी समझता हूँ कि मेरे निकट शब्द अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होते, बल्कि वह अपने पूरे विन्यास में रच-खपकर ही अर्थवान होते हैं।' [15]

कवि केदारनाथ सिंह कविता लिखते नहीं बुनते हैं। वे बड़ी तल्लीनता से शब्दों के करघे पर कविता का ढांचा खड़ा करते हैं और स्वयं स्वीकारते हैं :-

'कविता या साहित्य मात्र के प्रति मैं बिलकुल निराश नहीं हूँ। अभिव्यक्ति के सारे माध्यम जहाँ निरस्त या समाप्त हो जाते हैं, शब्द वहाँ भी जीवित रहता है। मुझे मानवीय शब्द की गरिमा में विश्वास है। आज भारतीय लेखक के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह शब्दों की दुनिया में अपने ठेठ भारतीय शब्द की विलक्षण पहचान को कैसे बनाए रखे। मैं अपने विनम्र रचनात्मक प्रयासों के द्वारा उसी दिशा में निरन्तर सक्रिय हूँ।' [16]

केदारनाथ सिंह को हम भाषा का जादूगर कह सकते हैं। उनकी शब्दों की रंगत, मिजाज और ताप उनकी अलग पहचान बनाता है। जो असाधारण और अविश्वसनीय है। केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, की तरह भाषा का अगम समुद्र होने का दावा तो नहीं करते परन्तु, वे दाने में घुन की तरह सीधे शब्दों के भीतर उतर जाते हैं और भीतर से ही कुछ ऐसा करते हैं कि एक नीरव विस्फोट के साथ उन शब्दों का रंग अर्थ, रूप और क्रम भी बदल देते हैं। वे कहते है:-

'मैं पूरी ताकत के साथ
शब्दों को फेंकना चाहता हूँ आदमी की तरफ

यह जानते हुए कि आदमी का कुछ नहीं होगा
मैं भरी सड़क पर सुनना चाहता हूँ वह धमाका
जो शब्द और आदमी की टक्कर से पैदा होता है ।'[17]

केदारनाथ सिंह भाषा पर असाधारण अधिकार रखते हैं और नई जागरूकता भी । उनमें यह शक्ति आरम्भ से ही रही है । इसका एक मुख्य कारण रहा है चीजों को देखने का उनका गैररोमानी नजरिया । वे न तो कविता को शब्दों से बंधी हुई मानते और न शब्दों के व्याकरण से सीमित मानते हैं :-

'बिजली चमकी, पानी गिरने का डर है
वे क्यों भाग जाते हैं जिनके घर हैं
वे क्यों चुप हैं जिनको आती है भाषा ।'[18]

वे भाषा को मनुष्य की ऐसी जबाब देही मानते हैं, जिसका पालन मनुष्य के अस्तित्व को सार्थक बनाने के लिए जरूरी है । शब्दों के चयन में कोई भी चूक उन्हें गवांरा नहीं है :-

'तिलमिला उठता हूँ मैं
मैं बेहद परेशान हो जाता हूँ
उसकी गलत, सलत भाषा
उसके शब्दों से गिरती धूल
और उसके उन बालों पर
जो उसके माथे से पूरी तरह उड़ गये हैं ।'[19]

'शब्द' केदारनाथ सिंह के लिए मनुष्य का पर्याय है । वह एक ऐसे मनुष्य का पर्याय जो चेतन है जीवंत है, जो जीवन की मुश्किलों से जूझने का साहस रखता है । 'ठण्ड से नहीं मरते शब्द' शीर्षक कविता में वे कहते हैं :-

‘ ठण्ड से नहीं मरते शब्द

वे मरे जाते है साहस की कमी–से

कई बार मौसम की नमी से

मर जाते हैं शब्द’ [20]

इसी कविता में कवि आगे कहता है :–

‘मुझे एक बार

एक खूब लाल

पक्षी जैसा शब्द

मिल गया था गाँव के कद्दार में

मैं उसे ले आया घर

पर ज्यों ही वह पहुँचा चौखट के पास

उसने मुझे एक बार

एक अजब–सी कातर दृष्टि से देखा

और तोड़ दिया दम ।’ [21]

कवि एक–एक शब्द को झाड़–पोंछ एवं ठोक पीट कर प्रयोग के लायक बनाता है, इस प्रक्रिया में कुछ शब्द अपना अस्तित्व भी खो देते हैं, ऐसे शब्दों से कवि डरता है वह कहता है:–

‘तब से मैं डरने लगा शब्दों से

मिलने पर अक्सर काट लेता था कन्नी

कई बार मैं मूँद लेता था आँख

जब देखता था

कोई चटक रंगोंवाला रोंयेदार शब्द

बढ़ा आ रहा है मेरी तरफ़’ [22]

कवि ने शब्दों के इस प्रयोग में काफी अनुभव प्राप्त किया है वह आरम्भ में शब्दों के नये प्रयोग से डरता था अब उसको इस

खेल में मजा आने लगा है। शायद वह हर शब्द को अच्छे से पहचानने लगा है:-

'अब इतने दिनों बाद
मेरा डर कम हो गया है
अब मिलने पर शब्दों से
हो ही जाती है पूछा-पेखी।'[23]

वस्तुत: भाषा की सार्थकता बोलने में है और बोलना मनुष्य की ऐसी क्रिया है जिससे उसके व्यक्तित्व का पता चलता है। इसी कारण कवि शब्दों की हालत देखने सीधे खेतों में जाता है, जहाँ शब्द पकते है। यहाँ शब्द मनुष्य का ऐसा पर्याय है, जो मनुष्य को पकाता है, जानदार बनाता है :-

'चुप रहने से कोई फायदा नहीं
मैंने दोस्तों से कहा और दौड़ा
सीधे खेतों की ओर
कि शब्द कहीं पक न गये हों।'[24]

शब्द मनुष्य के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति देकर विस्तार देते हैं। लेकिन केवल वे शब्द जो जीवन के ताप में, श्रम की उष्मा में, मिट्टी की ऊर्जा में पके हो। अध्ययन-विवेचन की गहराई के साथ-साथ, इनकी बाद की कविताओं में संस्कृत निष्ठ शब्दों के प्रयोग भी हुए हैं जिनके अन्तर्गत हमारी सांस्कृति-अस्मिता की पहचान दिखाई देती है।

केदारनाथ सिंह की जिन कविताओं में प्रगतिवादी स्वर मुखरित हुए है वहाँ इनकी भाषा अभिधात्मक एवं सजह रुप में व्यक्त हुई है । लेकिन कही-कहीं बिंबो एवं प्रतीकों के कारण भाषा जटिल भी हुई है। उदाहरण के रुप में बाघ कविता में :-

' उन्हें डर है कि एक दिन नष्ट हो जायेंगे बाघ
कि एक दिन ऐसा आएगा जब कोई दिन नहीं होगा
और पृथ्वी के सारे बाघ धरे रह जायेंगे
बच्चों की किताबों में/मुझे डर है
पर मुझे एक और भी डर है
बाघ से भी ज्यादा चमकता हुआ डर
कि हाथ कहाँ होंगे
आंखे कहां होंगी जो पढ़ेगी किताबें।' [25]

केदारनाथ सिंह की काव्य-यात्रा के दौरान उनकी भाषा लगातार परिष्कृत एवं परिमार्जित होती गई है। उन्होंने अतिविशिष्ट या अलंकरण युक्त शब्दों का प्रयोग भी कम नहीं किया। वे न तो शब्दों का अपव्यय करते हैं और न ही भावनाओं को ठेस पहुँचाते हैं। केदारनाथ सिंह मितकथन के मामले में भी सिद्धहस्त हैं। इनकी भाषा को अनुवाद की भाषा कहा जाता है जिसका स्वभाव ज्यादा देशज है। इस देशज प्रभाव के कारण भाषा बिम्बों एवं प्रतीकों से भरी पड़ी है।

7.2 बिम्ब एवं प्रतीक विधान

बिम्ब अथवा बिम्ब विधान काव्य का एक महत्वपूर्ण प्रतिमान है। इसकी अवधारणा मूलत: आधुनिक काल की अपनी देन है। जहाँ साधारण मनुष्य बाह्य जगत के सौन्दर्य का उपयोग किसी-न-किसी रूप में करता है;वहीं रचनाकार जीवन के इस बाह्य सौंदर्य को अपनी आंतरिक सुषमा से पुष्ट करके उसे द्विगुणित सौंदर्य प्रदान करता है। कवि जटिल भाव को 'शब्द' के माध्यम से बांध कर सामाजिक व्यक्ति के मन में अलौकिक आनन्द

का विधान पैदा करता है। 'शब्द' की इसी शक्ति ने 'बिम्ब' को जन्म दिया।

बिम्ब पर विचार करने का अधिकतर कार्य नये कवियों के समय में ही हुआ। इस कार्य के प्रारम्भ की झलक तार सप्तक में सबसे पहले मिलती है। 'तार सप्तक' से 'तीसरे सप्तक' की यात्रा में बिम्बों की चर्चा ने व्यापक जोर पकड़ा। वस्तुत: 'बिम्ब' शब्द पाश्चात्य साहित्य की देन है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रचलित 'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'इमेज' शब्द का पर्याय है। इसलिए 'बिम्ब' शब्द के अर्थ को समझने के लिए 'इमेज' की ही व्याख्या करना मैं आवश्यक समझता हूँ। इस संदर्भ में 'बिम्ब' मौलिक शब्द न होकर इमेज का ही हिन्दी रूपान्तर है। विभिन्न अंग्रेजी डिक्शनरियों के अनुसार 'इमेज' शब्द की व्याख्या निम्न प्रकार की गई है–

'किसी पदार्थ का मानस–चित्र या मानसी प्रतिकृति'।[26]

'कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति जिसका चाक्षुष होना अनिवार्य नहीं है।'[27]

'किसी व्यक्ति या पदार्थ की प्रतिकृति।'[28]

'इमेज' से अभिप्राय ऐसी सचेत स्मृति से है जो मूल उद्दीपक की अनुपस्थिति में किसी अतीत अनुभव का समग्र अथवा अंश रुप में पुनरुत्पाद्य करती है।'[29]

पश्चिम मूल के आलोचकों ने 'बिम्ब' को अपने–अपने मतानुसार अनेकों परिभाषाएं भी दी है। जिनमें से कुछ निम्न है :–

'बिम्ब पदार्थों के आन्तरिक सादृश्य की अभिव्यक्ति है।'[30]

'बिम्ब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मिती

है ।' 31

'बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम द्धारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है ।' 32

'काव्य-बिम्ब एक प्रकार का भाव-गर्भित शब्द-चित्र है ।' 33

उपरोक्त सभी परिभाषाओं का विश्लेषण करने के बाद यह अन्दाजा तो लगाया ही जा सकता है कि 'बिम्ब' कोई पदार्थ नहीं वरन् उस पदार्थ की प्रतिच्छाया है । बिम्ब एक ऐसा चित्र है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकट्य से प्रमाता के चित्त में उद्‌बुद्ध हो जाता है । अंग्रेजी कोशों में बिम्ब अर्ध छाया और प्रतिच्छाया ही दिया गया है इसलिए किसी सजीव या निर्जीव वस्तु की प्रतिच्छाया या समानता ही बिम्ब है । अर्थात हम कह सकते हैं कि बिम्ब समान्यत: स्वीकृत अर्थ है किसी सत्य की प्रतिच्छाया ।

काव्य में जिन बिम्बों का सृजन होता है उनमें अनुभूति, भावना और आवेग तीन तत्वों का बड़ा महत्व होता है । इन्हीं तत्वों के आधार पर बिम्बों को वर्गीकृत भी किया जा सकता है । मुख्यत: दो प्रकारों के आधार पर इसका विवेचन किया जा सकता है । एक प्रत्यक्ष अनुभव वाले बिम्ब एवं दूसरे परोक्ष अनुभव वाले बिम्ब । प्रत्यक्ष अनुभव के अन्तर्गत निम्न पांच बिम्ब आते हैं :-

(१) नेत्र अनुभव वाले रुप-बिम्ब ।

(२) कानों के अनुभव वाले नाद-बिम्ब।

(३) घ्राण अनुभव वाले गन्ध-बिम्ब।

(४) रसना अनुभव वाले स्वाद-बिम्ब ।

(५) त्वचाओं के अनुभव वाले स्पर्श-बिम्ब ।

परोक्ष बिम्बों की श्रेणी में जिन बिम्बों का नाम आता है वे

हैं अनुभव-बिम्ब, प्रत्यक्ष-बिम्ब, स्मृति-बिम्ब, कल्पना-बिम्ब, तन्द्रा-बिम्ब, स्वप्न बिम्ब आदि।

डा. केदारनाथ सिंह मानते है कि बिम्ब रचना की प्रक्रिया के गर्भ में कवि का आत्मान्वेषण होता है। और उसकी पीड़ा विद्यमान रहती है। इसके संबंध में रचनाकारों ने गहरा अध्ययन किया और इसका संबंध मनोविज्ञान, सौन्दर्य-शास्त्र तथा भाषा-विज्ञान से बताया। मनोविज्ञान के अनुसार मानव-मन की यथार्थता का प्रतिबिम्बन ही बिम्ब है। एवं यथार्थ का प्रतिबिम्बन निम्न चार स्तरों पर होता है:

(१) ऐन्द्रिय बोध।

(२) प्रत्यक्षीकरण।

(३) अभिमत एवं

(४) धारण

डा. नगेन्द्र के अनुसार रचनाकार की कल्पना में अनेक प्रकार के बिम्ब प्रतिफलित होते हैं, जिन्हें वह अपने विवेक से ग्रहण एवं परित्याग करता है। ऐसी दशा में बिम्ब-निर्माण के तीन सोपान होते हैं :-

(१) अनुभूति का निर्वैयक्तिकरण

(२) साधारणीकरण

(३) शब्द द्वारा बिम्ब की अभिव्यक्ति

केदारनाथ सिंह ने बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखा है :-

'बिम्ब वह शब्द-चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। और उसकी उपयोगिता इस बात में है कि वह भाव को ग्राह्य और सम्प्रेष्य बनाये। उसकी

सबसे बड़ी सफलता काव्य की मौलिक अनुभूति को क्रमश: तीव्र से तीव्रतर करने में है। यदि वह उसे तीव्र करने के बजाए अलंकृत और बोझिल करता है तो वह उस कविता का स्वाभाविक गुण कभी नहीं हो सकता।'[34]

केदारनाथ सिंह काव्य-बिम्ब को नितान्त दृश्य नहीं मानते। वे बिम्ब को वस्तु की अनुभूति नहीं, वरन उसके समानान्तर एक नयी अभूतपूर्व कृति मानते हैं :-

'कवि न हवा का निर्माण करता है, न फूल का, न अन्न का और न धरती का। वह उस बिम्ब का निर्माण करता है जो उसे इन सभी वस्तुओं के संबंध से प्राप्त होता है। अत: वह व्यक्ति जिसकी संवेदनाएं कुंठित या निष्पंद हो गयी है, कभी भी एक सफल बिम्ब को जन्म नहीं दे सकता।'[35]

काव्य में बिम्ब की महत्ता को नये कवियों ने अनेकों कारणों से स्वीकारा। परन्तु इन सभी कवियों में केदारनाथ सिंह ने बिम्ब का सर्वाधिक महत्व प्रतिपादित किया। तीसरे सप्तक के अपने वक्तव्य के आरम्भ में ही वे कहते हैं :-

'कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब विधान पर।'

केदारनाथ सिंह अपनी कविता को बिम्ब-विधान के माध्यम से विशिष्ट एवं मूर्त बनाने में प्रयत्नशील रहे। अपने वक्तव्य में वे आगे कहते है :-

'बिम्ब-विधान का संबंध जितना काव्य की विषय-वस्तु से होता है, उतना ही उसके रुप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रुप को संक्षिप्त और दीप्त।'[36]

केदारनाथ सिंह के काव्य में ऐन्द्रियानुभवों की

अधिकता है। वे अमूर्त भावनाओं के अपने चिन्तन से मूर्तित कर देते हैं। उनकी आरम्भिक कविताओं में आदिम एवं बाद–वाली कविताओं में आधुनिक बिम्ब मिलते हैं। 'तीसरे सप्तक' में संकलित उनकी कविताओं में ऐन्द्रिय अनुभवों पर बने आदिम बिम्ब देखे जा सकते है :–

'टहनी के टेसू पतरा गए
पकड़ी को पात नए आ गए।
नया रंग देशों से फूटा
बन भींज गया
दुहरी यह कूक, पवल झूठा
मन भीज गया
डाली –डाली स्वर छितरा गये
पात नए आ गये।' [37]

इस कविता में आदिम बिम्ब प्रतिपादित हुआ है। यहाँ टेसू एवं पकड़ी के ऐन्द्रियानुभव का आदिम बिम्ब है। 'धानों का गीत' कविता में भी धान के उगने में आदिम बिम्ब उभरा है। यहाँ कवि धान की कलंगियों में चन्द्रमा को तथा खेत की सूखी रेत में सूरज को बांधने का प्रयत्न करता है :–

'धान उगेंगे की प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में,
आना जी बादल जरूर।
चन्दा को बांधेंगे कलंगियों,
सूरज को सूखी रेत में,
आना जी बादल जरूर।' [38]

इस संग्रह की अन्य कविताओं में 'शरद प्रात', 'फागुन

का गीत,' 'कुहरा उठा,' 'बादल ओ' आदि कविताओं में आदिम बिम्ब उभरकर आए है।

'अभी बिलकुल अभी' संग्रह की 'मार्च की सुबह,' 'चाँदनी,' ' पपीहा दिन,' आदि कविताओं में भी आदिम बिम्ब मिलते हैं। 'जमीन पक रही है' काव्य संग्रह की आरम्भ की एक कविता 'सूर्य' में आदिम बिंब का सृजन हुआ है :–

'वह रोटी में नमक की तरह प्रवेश करता है
ताखे पर रखी हुयी रात की रोटी
उसके आने की खुशी में जरा–सा उछलती है
एक बच्चा जगता है
और अपने कोहरे में पिता की चाय के लिए दूध खरीदने
नुक्कड़ की दूकान तक अकेला चला जाता है।'[39]

'जमीन', 'जब वर्षा शुरू होती है', 'पेड', 'दोपहर' एवं 'बारिश' कविता में भी आदिम संदर्भो की शाब्दिक अभिव्यक्ति हुई है। इस संग्रह के सभी अदिम बिम्ब जीवन संदर्भो को उद्घाटित करने में अधिक सफल हुए हैं। 'यहाँ से देखो' काव्य संग्रह की 'बसन्त' नामक कविता में भी आदिम बिम्ब चित्रित हुआ है। 'अकाल में सारस' की कई कविताएं जैसे 'नदी', 'पाँच पिल्ले' एवं 'अकाल में सारस' मे भी आदिम बिम्ब प्रस्तुत किये गए है। 'अकाल में सारस' कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है

'तीन बजे दिन में
आ गये वे
जब वे आये
किसी ने सोचा तक नहीं था
कि ऐसे भी आ सकते हैं सारस

एक के बाद एक

वे झुण्ड के झुण्ड

धीरे–धीरे आये

धीरे–धीरे वे छा गये

सारे आसमान में

धीरे–धीरे उनके क्रेंकार से भर गया

सारा का सारा शहर

वे देर तक करते रहे

शहर की परिक्रमा

देर तक छतों और बाजारों पर

उनके डैनों से झरती रही

धान की सूखी

पत्तियों की गन्ध ।'[40]

केदारनाथ सिंह ने अपनी कविताओं सहज रुप में निर्मित होने वाले बिम्बों को ही प्रयुक्त किया है । उन्होंने अभिव्यक्ति को अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए यत्र –तत्र अलंकारो का भी प्रयोग किया है। ये अलंकृत बिम्ब 'तीसरा सप्तक' से लेकर 'अकाल में सारस' तक की कविताओं में दिखाई पड़ते हैं। केदारनाथ सिंह ने अपनी कविताओं में खण्डित अथवा विशिष्ट बिम्बों का भी प्रयोग किया है । कहीं – कहीं पर ऐसे अलंकृत बिम्बों को उन्होंने प्रयोग किया है जिन्हें वर्ण्य– विषय अलंकृत बिम्बों की श्रेणी में रख सकते हैं । ये बिम्ब एक पंक्ति के माध्यम से ही जीवन्त हो उठते हैं । जैसे 'खेल के बाद' शीर्षक कविता में इस बिम्ब का प्रविधान किया है:

"खेल के बाद
ताखे पर
सोया है
थका हुआ
घास का भूरा मैदान
और मैं बार–बार
फेंक –दिया जाता हूँ
अपने ही पैरो से
हवा – भरी गेंद सा
बाहर अंधेरे में
पहुँच के पार"[41]

केदारनाथ सिंह अधिकांशत: मूर्त बिम्बों की ओर अधिक प्रवृत दिखाई पड़ते हैं, जिसमें ऐन्द्रियता इनकी एक बड़ी विशेषता है। लेकिन अलंकृत बिम्बों के प्रयोग द्धारा उन्होंने अपनी जमीन से संबन्धित वस्तुओं का अधिक उल्लेख किया है जैसे: लाल पत्थर, थन, चिड़ियाँ, सुर्ख टमाटर, पेड़, पत्थर का ढोंका, चीरे हुए पटरे, घास भरे मैदान आदि।

अलंकृत बिम्बों के प्रयोग से एक तथ्य जो खुलकर सामने आता है, वह है केदारनाथ सिंह का प्रकृति के साथ सहज लगाव। 'तीसरे सप्तक' से लेकर 'उत्तर केदार' तक उनका यह लगाव प्रकट होता है, जहाँ वे आदिम बिम्बों की संश्लिष्ट योजना बनाते प्रतीत होते हैं।

आदिम एवं अलंकृत बिम्बों के अतिरिक्त केदारनाथ सिंह के काव्य में प्रतीक विधान की प्रवृत्ति भी अधिक परिलक्षित होती है। प्रतीक के प्रयोग के दौरान अमूर्त बिम्ब भी उन्होंने रचे है।

विषय को आगे बढ़ाने से पहले मैं प्रतीक एवं बिम्ब के अन्तर को स्पष्ट करना चाहूँगा।

बिम्ब एवं प्रतीक दोनों ही आधुनिक साहित्य की विशिष्ट अभिव्यक्ति -शैलियां हैं। समीक्षकों एवं विचारकों ने प्रतीक और बिम्ब के पारस्परिक संबंधों पर अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं। डा.केदारनाथ सिंह प्रतीक को बिम्ब का सबसे निकटवर्ती शब्द मानते हैं। वे मानते हैं कि बिम्ब एवं प्रतीक में ज्यादा अन्तर नहीं है। उनका मत है :-

'प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है और उस मौलिक रूप से क्रमश: विकसित होकर प्रतीक बन जाता है।'[42]

वे यह भी मानते है :-

'एक विशेष बिम्ब किसी एक ही कवि की अनेक रचनाओं में बार-बार दोहराया जाकर प्राय: प्रतीक बन जाता है।'[43]

डा. वीरेन्द्र सिंह मौलिक रुप से केदारनाथ सिंह से सहमत है, वे मानते हैं :-

'बिम्ब ग्रहण को प्रतीक की प्रथम आवश्यकता होती है।'[44]

वस्तुत: हिन्दी में छायावादी कवियों ने प्रतीकों की रचना आरम्भ की थी। निराला, महादेवी वर्मा एवं सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओं में प्रतीकों को निर्मिती देखी जा सकती है। निराला का 'बादल' एवं 'कुकुरमुत्ता' तथा महादेवी वर्मा का 'दीप शिखा' प्रतीकों के लिए बहुचर्चित हुए। तदुपरान्त नई कविता ने प्रतीकों को बहुयामी विस्तार दिया गया।

रचनाकार अपने भावों एवं विचारों को सम्प्रेषित करने के

लिए प्रतीक निर्माण करता है। तथा मूल वस्तु द्वारा नई वस्तु का संकेत देता है। जिसमें वह लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों का सहारा लेता है। केदारनाथ सिंह ने भी जीवन की रोजमर्रा की वस्तुओं का चयन करके, लक्षणा एवं व्यंजना के सहारे अनुभूतियों को प्रकट किया है। बिंब को प्रतीक से अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने दोनों के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

"प्रतीक स्वयं गौण होता है। मुख्यता उस दिशा की होती है जिधर वह संकेत करता है। बिम्ब से उसका यही मौलिक अन्तर है। बिम्ब उठी हुई उंगली की तरह किसी एक ही दिशा में सदैव इंगित नहीं करता। वह एक साथ कई स्तरों पर और कई दिशाओं में इंगित करता है। प्रतीक की तरह उसकी निज की सत्ता उस संकेत में विलीन नहीं हो जाती। बिम्ब प्रतीक की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्द और अनेकार्थ व्यंजक होता है। लीविस ने भी प्रतीक में अंकों की सी निश्चितता मानी है। जैसे एक कहने से १ संख्या का बोध होता है, दो अथवा पांच का नहीं, वैसे ही एक प्रतीक भी अनिवार्य रुप से केवल उसी भाव अथवा विचार का प्रतिनिधित्व करता है जिसके लिए वह लाया गया है।' [45]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कुछ रचनाकारों को छोड़ कर सामान्यत: सभी नये कवि प्रतीक योजना को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे जहाँ एक ओर प्रतिभा के बल पर नये-नये प्रतीक खोजने में विश्वास रखते हैं वही दूसरी ओर वे पुराने प्रतीकों को भी स्वीकारते हैं। वे प्रतीक को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं।

केदारनाथ सिंह में प्रतीक-विधान का स्वरुप 'तीसरे सप्तक' की कविताओं से ही दिखाई पड़ता है। उन्होंने आरम्भिक कविताओं में लोकजीवन की वस्तुओं को प्रतीक बनाया। और

बाद की कविताओं में लोकजीवन के साथ-साथ प्रकृति की वस्तुओं को भी प्रतीक बनाया, जैसे: बसन्त, सूर्य, जानवर, बाघ, चट्टान, बालू, आदि। 'तीसरा-सप्तक' की उनकी एक रचना 'पथ' एक स्पष्ट प्रतीक का निर्माण करती है:-

'ऐसा क्या है पास, बनूँगा क्या उस क्षण पर
जिसका मैं बन्दी हूँ, जिसका स्पर्श रंगों में
दौड़ रहा है, जिसे तोड़कर स्वयं चुकूँगा
इसे जानता हूँ, फिर भी बढ़ रहा निरन्तर।'[46]

एक अन्य कविता 'दीपदान' में कवि ने लोकजीवन की वस्तुओं को प्रतीक के रुप में प्रयोग किया है। इस में गगरी, चावल, गन्ध, गेंदा का फूल आदि वस्तुएं प्रतीक बनी है :-

'जाना, फिर जाना,
एक दिया वहाँ जहाँ नई-नई दूबों ने कल्ले फोड़े हैं
एक दिया वहाँ जहाँ उस नन्हें गेंदे ने
अभी-अभी पहली ही पँखुड़ी बस खोली है,
एक दिया उस लौकी के नीचे
जिसकी हर लतर तुम्हें छूने को आकुल है,
एक दिया वहाँ जहाँ गगरी रखी है,
× × ×
एक दिया वहाँ जहाँ अभी-अभी धुले
नये चावल का गन्ध-भरा पानी फैला है।'[47]

'अभी बिलकुल अभी' काव्य की रचना 'एक पारिवारिक प्रश्न' में प्रतीकों की भरमार है। इसमें 'तुलसी' को धार्मिक प्रतीक बनाया है, 'बरगद' को साम्प्रदायिक भावना का, एवं 'नन्हें गुलाब' को आज की मानसिकता के प्रतीक के रुप में रखा है :-

'छोटे से आँगन में
माँ ने लगाये हैं
तुलसी के बिरवे दो
पिता ने उगाया है
बरगद छतनार ।
मैं अपना नन्हा गुलाब
कहाँ रोप दूँ ।'[48]

इस संग्रह की अन्य कविताओं 'शंका–पुत्र' में पिता को प्रतीक के रुप में उपस्थित किया है, 'पिता से' कविता में 'आदिम व्यथा' को, 'दीपदान' में संस्कृति को, 'चुनाव की पूर्व सन्धा पर' कें राजनैनिक परिवेश को प्रतीक के रुप में प्रस्तुत किया है ।

'जमीन पक रही है' संग्रह की कविताओं में प्रतीकों का बहुत कम प्रयोग हुआ है, लेकिन जहाँ कहीं भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, वहाँ प्रतीकात्मकता से अधिक व्यंजना शक्ति है । इस संग्रह की एक कविता 'सूर्य' में सूर्य ऐसी मानसिकता का प्रतीक है जिसमें सम्पूर्ण परिवेश व्याप्त है ।

'वह रोटी में नमक की तरह प्रवेश करता है
ताखे पर रखी हुई रात की रोटी
उसके आने की खुशी में जरा–सी उछलती है
और एक भूखे आदमी की नींद में गिर पड़ती है ।

× × ×

एक पतीली गरम होने लगतीहै
एक चेहरा लाल होना शुरू होता है
एक खूँखार चमक
तम्बाकू के खेतों से उठती है

और आदमी के खून में टहलने लगी है ।' [49]

यहाँ उपरोक्त रचना में 'सूर्य' एक ऐसी मानसिकता का प्रतीक है, जिससे जीवन के सारे क्रिया कलाप एवं जन-मन प्रभावित है ।

'माँझी का पुल' नामक कविता में माँझी के पूल को एक प्रतीक के रुप में उपस्थित किया गया है :-

'मेरे गाँव से दिखाई पड़ता है
माँझी का पुल
मैंने पहली बार
स्कूल से लौटते हुए
उसकी लाल-लाल ऊँची मेहराबें देखी थीं
यह सर्दियों के शुरू के दिन थे
जब पूब के आसमान में
सारसों के झुण्ड की तरह डैने पसारे हुए
धीरे-धीरे उड़ता है माँझी का पुल ।'[50]

इस संग्रह की अन्य कविताओं में भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'दीवार' कविता में दीवार एक ऐसी मानसिकता का प्रतीक है जिसे केवल महसूस किया जा सकता है कहा नहीं जा सकता । 'जाड़ों के शुरू में आलू' शीर्षक कविता में 'आलू' प्रतीक बना है एक ऐसे व्यक्तित्व का जो बाजार में आ जाने से एक अलग वातावरण पैदा कर देता है । 'वसन्त' नामक कविता में वसन्त यौवन और प्रेम का प्रतीक है । तथा 'जानवर' कविता में जानवर शारीरिक शक्ति का प्रतीक है । ये दोनों कविताएँ उनके 'यहाँ से देखो' काव्य-संग्रह से संबंधित है । इस संग्रह की कविताओं में प्रतीकात्मकता कुछ अधिक है । 'भीम बेटका के गुफा चित्रों को

देखते हुए' शीर्षक कविता में कवि ने सूरज और चट्टान को प्रतीक के रुप में प्रस्तुत किया है :-

'काली चट्टान
चट्टान पर सूरज
सूरज के सामने खड़े हैं
हिन्दी के तीन-चार लेखक-कलाकार
चट्टान से जंगली भैंसे की गन्ध आ रही है ।' [51]

'अकाल में सारस' काव्य संग्रह के अन्तर्गत आधुनिक जीवन-संदर्भों के प्रतीकात्मक-बिम्ब हैं। 'अकाल में सारस' कविता में सारस एवं शहर प्रतीकात्मक रुप में प्रयुक्त किए गये हैं :-

'पानी को खोजते
दूर-देसावर से आये थे वे
पानी को खोजते
दूर-देसावर तक जाना था उन्हें
सो, उन्होंने गर्दन उठाई
एक बार पीछे की ओर देखा
न जाने क्या था उस निगाह में
दया की घृणा
पर एक बार जाते-जाते
उन्होंने शहर की ओर मुड़कर
देखा जरूर ।' [52]

इस संग्रह की अन्य कविताओं में भी प्रतीकात्मकता प्रकट होती है । जैसे 'जूते' नामक कविता में जूते को राजनैतिक स्थिती का प्रतीक बनाया गया है । 'कुछ सुत्र जो एक किसान बाप

ने बेटे को दिये' शीर्षक कविता में प्रतीकात्मक बिम्ब उभरा है । काले कौवे, हरा पत्ता, लाल चीढ़ियाँ, स्यारों की आवाज सभी प्रतीकात्मक है। इसी प्रकार 'पशु मेला' नामक कविता में बैल, घोड़े, आदि सभी को प्रतीक के रुप में प्रयोग किया है। इस प्रकार केदारनाथ सिंह की लगभग सभी कविताएँ प्रतिकात्मक है। कोई जीवन-सन्दर्भों की ओर संकेत करती है तो कोई प्रकृति को प्रतीक के रुप में प्रकट करती है।

केदारनाथ सिंह की अब तक की नवीनतम लम्बी कविता 'बाघ' है। इसमें 'बाघ' को उन्नीस अनुषंगों में नये-नये प्रतीक के रुप में रखा गया है। वह किसी एक प्रतीक में बद्ध नहीं है। बाघ अपनी प्रत्येक उपस्थिति से चौंकता है तथा अपने बारे में नये सिरे से सोचने पर बाध्य करता है। वह जादू के करिश्में की तरह नये-नये सवाल उठाता एवं नये-नये प्रतीक उपस्थित करता है। अनुषंग दो में वह इस प्रकार चुपचाप आता है कि सुबह के अखबार से ही बाघ के आने की खबर मिलती है :-

'पैरों से पूछ रहें है जूते
गरदन से पूछ रहें है बाल
नखों से पूछ रहे हैं कन्धे
कि कब आएगा
फिर कब आएगा बाघ।'[53]

'बाघ' प्रतीक बना है आधुनिक सामाजिक शोषण का, वह प्रतीक है हिंसा और आतंक का। वह मानवीय संवेदनाओं का भी प्रतीक है। 'बाघ' शाम को बस्ती से धुआँ उठते न देखकर परेशान हो जाता है :-

'उसे पता था
कि जिधर से भी उठता है धुआँ
उधर होती है बस्ती
उधर रँभाती है गायें
उधर होते हैं गरम-गरम घर
उधर से आती है आदमी के होने की गन्ध ।'[54]

इस कविता में केदारनाथ सिंह ने त्रिलोचन के बोलने के लहजे को कविता में ज्यों का त्यों उतार दिया है। जिसमे त्रिलोचन भी कलाकर के प्रतीक बने हैं:-

'तब से कितना समय बीता
हम अब भी चल रहे हैं
आगे-आगे कवि त्रिलोचन
पीछे-पीछे मैं
एक ऐसे बाघ की तलाश में
जो एक सुबह धरती पर गिरकर
टूट जाने से पहले
वह था ।'[55]

अन्ततः कहा जा सकता है कि केदारनाथ सिंह जिस मूल्य को उपलब्ध करने के लिए काव्य रचना करते आ रहे थे वह बाघ के रुप में प्रतीकित हुआ है।

7.3 काव्य - शैली

आधुनिक शैली विज्ञान हिंदी समीक्षा के लिए सर्वथा नवीन न भी हो फिर भी यह भाषा विज्ञान की प्रगति के लिए एक महत्वपूर्ण अंग है। यह भाषा में एक ऐसा ताजापन भर देता है जो

पहले प्रमुखता में दिखाई नहीं पड़ता था । दूसरे भाषा के व्यवस्थित अध्ययन के लिए भी इसकी जानकारी आवश्यक है । यह भाषा की प्रकृति में है । वस्तुत: भाषा विविधरूपताओं की ही समष्टि है ।

भाषा-विधान, जो वक्ता एवं श्रोता के बीच संबंध स्थापित करता है, सम्प्रेषण का एक महत्वपूर्ण माध्यम है । रचनाकार विशेष अर्थगर्भिता के साथ अपनी अनुभूतियों को भाषा के विविध स्रोतों के आधार पर प्रस्तुत करता है ।

भाषा के प्रस्तुतिकरण का ढंग, भंगिमा, कथन-पद्धति ही शैली है । शैली के परिप्रेक्ष्य में भाषा की स्थिति प्रसंग के अधीन होती है । भौगोलिक क्षेत्र और सामाजिक स्तर पर पाई जानी वाली विविधरुपताओं के कारण एक ही भाषिक समुदाय के वक्ताओं की शैलियों में अन्तर पाया जाता है । उदाहरण के तौर पर ब्रजवासी समुदाय का कोई सदस्य यदि ब्रजभाषा को छोड़ कर कोई दूसरी बोली का प्रयोग करने लगता है तो संक्रमण की स्थिति आ जाती है ।

इस तरह से अभिव्यक्तिक विशेषता का प्रत्येक प्रकार शैली के अंतर्गत आता है ।

भाषा निरन्तर नये-नये संदर्भों से उपयोजित होने के कारण सतत विकसित होती रहती है। वह रचनाकार के लिए उसका आशय, उसकी चिन्तन-पद्धति, वैचारिक गहनता, अभिव्यञ्जना पद्धति के प्रस्तुतिकरण का माध्यम होती है । अत: शैली भाषा का विशिष्ट प्रयोग है, लिखने का ढंग है, प्रणाली है, प्रयोग क्षमता है एवं विषय-विवेचन की प्रविधि भी है ।

वस्तुत: शैली अन्य पारिभाषिक शब्दों की भाँति एक विवादित विषय रहा है । मैं इसके विस्तार में न जाते हुए, विभिन्न

शब्द कोशों एवं आलोचकों द्वारा दी गई परिभाषाओं के साथ विषय को सीमित करना चाहूँगा। क्योंकि इसमें उलझने से सामर्थ्य एवं विस्तार का खतरा है।

"व्याकरणिक दृष्टि से यह शब्द शील शब्द में 'ष्यञ्' और 'ङीप्' प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न हुआ है।" [56]

" 'शील' शब्द का अर्थ है –स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र, प्रकृति, प्रवृत्ति, रुचि, आचरण व्यवहार।" [57]

व्यक्ति की विभिन्न विशेषताओं, उसकी मनोवृत्ति, व्यवहार, चरित्र, आदत. इत्यादि के आधार पर । 'शील' शब्द से बने शैली शब्द के शब्दकोशों सें प्राप्त अर्थ इस प्रकार है :–

"अभिव्यक्ति का या अर्थकरण का एक प्रकार, काम करने का ढंग, आचरण, क्रम, चाल, ढब, प्रणाली, तर्ज़, रीति, प्रथा, रिवाज़, वाक्य रचना का वह ढंग, जो लेखक की भाषा संबंधी निजी विशेषताओं का सूचक होता है।" [58]

पतंजलि के महाभाष्य में भी 'एषा हि आचार्यस्थ शैली लक्ष्यते' के अन्तर्गत आए 'शैली' शब्द प्रदीपकार कैय्यट द्वारा कृत व्याख्या है :–

"शीले स्वभावे भवा वृत्तिः शैली।" [59]

अर्थात स्वभाव में होने वाली वृत्ति शैली है।

अंग्रेजी भाषा में 'शैली' शब्द के निकटतम समझा जाने वाला शब्द है 'स्टाइल'। यह इस शब्द के पर्याय के रुप में प्रयोग किया जाता है। एक और शब्द 'रीति' जो शैली के पर्याय के रुप में व्यवहृत हुआ है।

वास्तव में शैली शब्द रचना–विधि के अनेकों सीमान्तों को स्पर्श करता है एवं उन तत्वों को अपने अन्दर समाविष्ट भी

करता है । साहित्यशास्त्रियों एवं भाषाविदों की दृष्टि में 'शैली' का विशेष महत्व है । बहुअर्थी एवं व्यापक होने के कारण इसकी परिभाषाओं को लेकर पर्याप्त मतभेद हैं, जो स्वभाविक है । मनीषियों ने अनेक रुपों में इसको व्याख्यायित किया एवं इसकी महत्ता को स्वीकृति भी दी है ।

शैली शब्द के अन्तर्गत रीति, गुण, अलंकार, वक्रोक्ति, वृत्ति, प्रवृत्ति, आदि ही नहीं अपितु प्रतीक, बिम्ब, छन्द, लय, स्वरमैत्री, पदमैत्री, नादात्मकता आदि पद्धतियाँ भी समाविष्ट है ।

केदारनाथ सिंह के काव्य संग्रहों में प्रतीक एवं बिम्ब प्रवृत्तियों का विश्लेषण मैं इस अध्याय के दूसरे भाग में कर चुका हूँ । 'शैली' के अन्तर्गत अन्य विधाओं का संक्षिप्त विश्लेषण आगे दिया जा रहा है ।

काव्य भाषा के 'शिल्प' में प्रतीक एवं बिम्ब के अतिरिक्त जिस तत्व पर नये कवियों ने विस्तार से विचार किया वह "छन्द" है । इन कवियों का उद्‌देश्य छन्द-शास्त्र न होकर वचनागत छन्दों-प्रयोगों का पक्ष सामने लाना था । मुख्यत: छन्द को तीन तत्वों में विभाजित किया जा सकता है :-

(१) मात्राओं और वर्णों की किसी क्रम विशेष से योजना ।

(२) गति और यति के विशेष नियमों का पालन

(३) चरणान्त की समता ।

केदारनाथ अग्रवाल के मतानुसार : "सामूहिक श्रम के साथ मनुष्य के कण्ठ से एक विशेष ध्वनि उत्पन्न हुई जो धीरे-धीरे अपनी प्रारम्भिक अर्थहीन आरोह-अवरोह की स्थिति से उबर कर कविता के रुप में संगीत से अलग हो गयी ।" [60]

तीसरे सप्तक के प्रथम कवि प्रयाग नारायण त्रिपाठी ने छंदों का प्रश्न उठाया एवं मुक्त छन्द को स्वीकारा। उनके मतानुसार मुक्त छंदमयी कविता अपने आप में एक पूर्ण ईकाई होती है :-

"वह भावानुकूल शब्द संयोजन का सुचिंतित और अनुशासित प्रयास होता है। ऐसा प्रयास जो अराजकता नहीं, बल्कि उच्च कोटी का अभिव्यक्ति संयम- ऐसा संयम जो परंपरा से भिन्न होते हुए भी उससे संयुक्त है क्योंकि नया है और मौलिक है, क्योंकि वर्तमान के एक क्षण की गहनतम अनुभूति की अभिव्यक्ति है।" [61]

कीर्ति चौधरी ने इस मत का पूर्ण सर्मथन किया : "नई कविता लयात्मक अथवा लयहीन मुक्त छंद मे होती है।" [62]

केदारनाथ सिंह ने अपनी बात इस तरह प्रस्तुत की : "कविता अपने अनावृत रुप में केवल मात्र एक विचार, एक भावना, एक अनुभूति, एक दृश्य, इन सबका कलात्मक संगठन अथवा इन सबके अभाव की एक तीखी पकड़ होती है। यह पकड़ जितनी ही वास्तविक होगी, कवि का संवेद्य उतना ही गहरा और प्रभावशाली होगा।" [63]

'तीसरा सप्तक' की अधिकांश रचनाएं मुक्त छंद में लिखी गई। केदारनाथ सिंह ने ग्राम गीतों की धुनों वाली रचनाएं लिखीं। कुछ रचनाओं में उर्दू छंदो का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। 'तीसरा सप्तक' में संकलित उनकी एक मुक्त छंद की कविता 'धानों का गीत' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

"झीलों के पानी खजूर हिलेंगे,
खेतों के पानी बबूल,

पछुवा के हाथों में शाखें हिलेंगी,

पुरवा के हाथों में फूल,

आना जी बादल जरुर

धान तुलेंगे कि प्रान तुलेंगे,

तुलेंगे हमारे खेत में,

आना जी बादल जरुर " [64]

एक अन्य कविता 'बादल ओ' में कवि ने छंद रहित शैली का प्रयोग किया है:-

"हम बच्चे हैं,

चिड़ियों की परछाई पकड़ रहे हैं उड़ उड़

हम बच्चे हैं,

हमें याद आयी है जाने किन जनमों की-

आज हो गया है जी उन्मन ।

तुम कि पिता हो-

इन्द्रधनुष बरसो ।

कि फूल बरसो,

कि नींद बरसो

बादल ओ ।" [65]

इस संग्रह की अन्य कविताएं जैसे 'पपीहा दिन', 'मार्च की सुबह', 'चाँदनी' आदि भी छंद मुक्त शैली की कविताएं है । 'अभी बिलकुल अभी' , एवं 'यहाँ से देखो' संग्रहों में भी यह शैली देखी जा सकती है । यह स्वच्छन्द वादी शैली इनके आगे के संग्रहों में कम देखने को मिलती है ।

<u>लय</u> : जैसा कि मैंने पहले अध्यायों में जिक्र किया है कि केदारनाथ सिंह ने मूलत: अपने कवि जीवन का आरम्भ गीतों के

माध्यम से किया । केदारनाथ सिंह एवं इनके समकालीन सर्वेश्वर दयाल सक्सेना दोनों ने लोकोन्मुखता एवं ग्रामगीतों की शैली को अपनाया । इन गीतों की न केवल शैली ग्रामीण गीतों की थी वरन इनकी लय और धुनें भी ग्राम्य गीतों की थी ।

केदारनाथ सिंह की 'तीसरे सप्तक' में संकलित लगभग सभी कविताएं गीत शैली में है उनकी लय एवं धुन गीतों की है । जैसे : 'दुपहरिया', 'वसन्त गीत', 'विदा गीत', 'धानों का गीत', 'बादल ओ', 'फागुन का गीत', आदि । 'धानों का गीत' कविता का एक उदाहरण देखिए :

"धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे, हमारे खेत में,
आना जी बादल जरुर ।
चन्दा को बाँधेंगे कच्ची कलंगियों
सूरज को सूखी रेत में
आना जी बादल जरुर ।" [66]

गीतात्मकता की काव्य लय 'अभी बिलकुल अभी' में 'तीसरा सप्तक' से कम है एवं बाद के संग्रहों में यह गद्य के करीब पहुँच गई है यहाँ इसे वर्णनात्मक शैली कहा जा सकता है ।

केदारनाथ सिंह की लम्बी कविता इस तथ्य को प्रमाणित करती है –

"सबेरे–सबेरे
एक बच्चा रो रहा था
उसके हाथ से गिरकर
अचानक टूट गया था
उसका मिट्टी का बाघ

एक छोटा-सा सुंदर बाघ
जो तारों से लड़ चुका था
जो लड़ चुका था चाँद और सूरज
और समुद्री डाकुओं से
ठीक उसकी आँखों के आगे
उसके हाथ से गिरा
और खट् से टूट गया ।" [67]

'अकाल में सारस' संग्रह की रचनाओं में भी गीतात्मक लय क्षीण हुई है एवं गद्य ने उसकी जगह ले ली है ।

"यहाँ तक आते-आते
मैं बहुत कुछ भूल चुका हूँ
बहुत कुछ
जिसे याद रखना बहुत जरूरी था
पर मेरे लिए यह बता पाना
बहुत मुश्किल है
कि इतने दिनों बाद भी
मुझे क्यों याद है
एक बूढ़े उदास गड़रिये का चेहरा
जिसे मैंने एक दिन नदी में
पड़ा हुआ देखा था
जहाँ उसकी भेंड़ें पानी पी रही थीं ।"

यह काव्यात्मकता एवं गीतों वाली लय छूटनें का कारण बताते हुए केदारनाथ सिंह कहते है :-

"मेरी आरम्भिक रचनाएं गीत थीं । उसके बाद गीत छूट गया, उसका मुख्य कारण रहा गीत का ढांचा जो मुझे अपर्याप्त

लगता है ।" [68]

केदारनाथ सिंह आगे कहते हैं :-

"मैंने हालाँकि गीत का ढांचा छोड़ दिया है, परन्तु 'स्प्रिट' अभी भी बनी हुई है । मेरी छोटी कविताओं में अभी भी गीत की एंद्रियता, लयबद्धता, शैली एवं संघता मिल जायेगी ।" [69]

केदारनाथ सिंह की कुछ रचनाएं छन्द मुक्त होने के कारण भी लयबद्ध नहीं है क्योंकि लय छन्द से भी व्यापक तत्व है और छंद लयों के ढांचे पर ही निर्भर करता है । परन्तु नयें कवि कविता में लय को गद्य की अत्यंत सूक्ष्म रुपी लय मानते हैं। निश्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि इनकी आरम्भिक कविताओं में लयात्मक शैली एवं बाद की कविताओं में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ हैं ।

यद्यपि नये कवियों ने अलंकार पर विस्तृत एवं गम्भीर चर्चा नहीं की है फिर भी इसे काव्य-शैली का महत्वपूर्ण तत्व माना है । उन्होंने अलंकार को चमत्कार उत्पन्न करने वाली बाह्य वस्तु न मानकर युग की बदली हुई संवेदना के साथ जोड़ कर देखा है, और उसे कविता का एक सहज अंग माना है ।

अलंकारों की अपेक्षा, नये कवियों ने आधुनिक कविता में वर्णन-शैली के दो विशिष्ट उपादानों बिम्ब और प्रतीक को अधिक महत्व दिया है । जिसका जिक्र मैं प्रस्तुत अध्याय के बिम्ब एवं प्रतीक विधान के अन्तर्गत कर चुका हूँ ।

वस्तुत: आधुनिक युग की अलंकार सम्बन्धी मान्यताएं मूलत: ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों की दृष्टि परम्परा में आती है । अलंकार को कविता की शोभा वृद्धि वाला अस्थिर धर्म ही माना है ।

केदारनाथ सिंह अलंकार को बिम्ब का सबसे निकटतम

तत्व मानते हैं।

केदारनाथ सिंह ने अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र अलंकृत शैली का प्रयोग किया है। यह साहृश्य मूलक अलंकार हैं। 'तीसरा सप्तक' में संकलित उनकी एक रचना है जो मूलतः प्रतीकात्मकहै, परन्तु इसमें उपमा अलंकार की निर्मिति भी हुई है:-

"आँखे खुली, दिखा आगे पथ मुड़ता मुड़ता
पार क्षितिज के चला गया था ज्यों गदराया
धुँवा हो चले घना, तलें चुकती-सी छाया
भर उसकी रह जाय, और सब उड़ता-उड़ता।" [70]

गदराया धुँवा एक नए उपमान की तरफ संकेत करता है। जो कि अधुनातन प्रयोग है। 'अभी बिलकुल अभी' संग्रह की रचना 'प्रक्रिया' में भी कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है:-

"मैं जब हवा की तरह
दृश्यों के बीच से गुजरता हुआ
अकेला होता हूँ
तो क्षण भर के लिए
मुझे कहीं भी देखा जा सकता है
किसी भी दिशा से
किसी भी मोड़ पर
किसी भी भाषा के अज्ञात
शब्द-कोश में।" [71]

कवि ने प्रक्रिया की उपमा अमूर्त उपमान हवा से दी है। 'सूर्यास्त' नामक कविता में मनोमुग्धकारी अलंकार देखे जा सकते है :-

"दिन ढलें के बाद

लाल, भूरी

हरी, नीली

पीत

संख्यातीत

धूप की उल्टी पताकाएं

दूर वृक्षों पर

उलझ कर रह गयी हैं

मकानों पर

झुक गयीहैं

पताकाओं के

खुले डैने पकड़ कर

रुक गयी है

दिन पताकाएँ।" [72]

मनोमुग्ध कवि धूप और दिन को पताकाओं के रुप में बाँधता है। केदारनाथ सिंह के इन अलंकारों द्वारा उनकी वस्तुमात्रा का परिचय भी मिलता है। 'जमीन पर रही है' संग्रह में प्रकृति से सम्बन्धित उपमान लेकर उपमा अलंकारों का प्रयोग किया है। 'जमीन', 'प्रतिक्षा के विरुद्ध कुछ पंक्तियां', 'टमाटर बेचने वाली बुढ़िया' 'बढ़ई और चिड़िया' आदि कविताओं में प्राकृत उपमान आए हैं। 'यहाँ से देखो' संग्रह की कविताओं में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'अकाल में सारस' संग्रह की रचनाओं में उपमानों की अधिकता है। इसमें प्रकृति की वस्तुएं अप्रस्तुत विधान के रुप में आई है। 'चींटी', 'कठफोड़वा', 'आकाश के तारे', 'बज्रपात', 'पक्षी', 'आग', 'बबूल', 'हँसी', 'रस्सी', 'पक्षी' आदि का प्रयोग उपमान के रुप में हुआ है। जैसे :–

"जैसे चींटिया लौटती हैं
बिलों में
कठफोड़वा लौटता है
काठ के पास
वायुयान लौटते हैं एक के बाद एक
लाल आसमान में डैने पसारे हुए
हवाई अड्डे की ओर ।" [73]

केदारनाथ सिंह की काव्ययात्रा के माध्यम से ही उनकी काव्यशैली को समझा जा सकता है । जिसका उल्लेख मैंने इनकी गीतात्मक रचनाओं के माध्यम से किया है । प्रारम्भिक दौर में ये लोक जीवन के गीतों से प्रभावित होकर गीत शैली में ही रचना करते है । जिसमें छंदों आदि का प्रभाव दिखाई देता है । कालान्तर में मुक्तछंद के प्रयोग में इनकी शैली प्रतीकात्मक एवं बिंबात्मक अधिक हुई है । जिसमें इन्होंने बिंबों पर अधिक बल दिया है । कतिपय लम्बी कविताओं में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । 'बाघ' कविता इस शैली का प्रमुख उदाहरण है ।

केदारनाथ सिंह ने काव्य शैली के क्षेत्र में प्राचीन एवं अधुनातन दोनों शैलियों का प्रयोग किया है । लेकिन बिंबों एवं प्रतीकों के दबाव के कारण कालान्तर की रचनाएं सम्प्रेषणीय नहीं बन पाई।

*****

संदर्भ -ग्रंथ

1.	शैली विज्ञान	डा.नगेन्द्र	पृ. 14
2.	प्रतीक-10	सियाराम शरण गुप्त	पृ 28-29
3.	आलोचना (पत्रिका)	जुलाई 1954	पृ. 62
4.	आधुनिक हिन्दी में विश्व विधान	केदारनाथ सिंह	पृ. 176
5	Poetry and Poets (पोयट्री एवं पोयट)	टी. एस. इलियट	पृ. 20
6.	दूसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 11
7.	दूसरा सप्तक	वही	पृ. 7
8.	कविता के नये प्रतिमान	अज्ञेय	पृ. 111
9.	संस्कृति और साहित्य	रामविलास शर्मा	पृ.22-30
10.	आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजान शिल्प	डा. हरदयाल	पृ. 147
11.	धर्मयुग (अगस्त १९६६)	अज्ञेय	पृ. 3
12.	सदी के अंत में कविता	विजय कुमार	पृ. 363
13.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर	पृ. 36
14.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 10
15.	कवि केदारनाथ सिंह	भारत यायावर	पृ. 51
16.	वही	वही	पृ. 51
17.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 66
18.	अभी बिलकुल अभी	वही	पृ. 37
19.	वही	वही	पृ. 11
20.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	पृ. 102

21.	वही	वही	पृ. 102
22.	वही	वही	पृ. 102
23.	वही	वही	पृ. 103
24.	जमीन पक रही है	वही	पृ. 14
25.	बाघ	वही	खण्ड14
26.	शार्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी		
27.	चैम्बर्स ट्वेन्टियथ सेन्चुरी डिक्शनरी		
28.	वैल्सटर्स वर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी		
29.	सी. डब्ल्यू ब्रे 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' से		
30.	टी. ई. ह्यूम		
31.	हैवेले.		
32.	सुजान के लेंगर		
33.	दि पोएटिक इमेज (अष्टम् संस्करण) सी. डे. लेविस		
34.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	केदारनाथ सिंह	पृ. 23-27
35.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	वही	पृ. 21
36.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 127
37.	वही	वही	पृ 127
38.	वही	वही	पृ 127
39.	जमीन पक रही है	केदारनाथ सिंह	पृ. 9
40.	अकाल में सारस	वही	पृ. 20
41.	अभी बिलकुल अभी	वही	पृ. 22
42.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	वही	पृ. 28

43	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	केदारनाथ सिंह	पृ. 31
44.	हिन्दी कविता में प्रतीकवाद का विकास,	डा. वीरेन्द्र सिंह	पृ. 12
45.	पोयटिक इमेज	सी.डे. लुविस	पृ. 40
46.	तीसरा–सप्तक	अज्ञेय	पृ. 120
47.	वही	वही	पृ. 139
48.	अभी बिलकुल अभी	केदारनाथ सिंह	पृ. 26
49.	जमीन पक रही है	वही	पृ. 9
50.	वही	वही	पृ. 9
51.	यहाँ से देखो	वही	पृ. 82
52.	अकाल में सारस	वही	पृ. 23
53.	बाघ	वही	पृ.13-14
54.	वही	वही	पृ. 43
55.	वही	वही	पृ.
56.	वाचास्पत्यम, (भाग छः)	तारानाथ भट्टाचाचर्य	पृ. 514
57.	संस्कृत–हिन्दी–कोश	द्वारिक प्रसाद	पृ. 1030
58.	संस्कृत–हिन्दी–कोश	रामचन्द्र वर्मा	पृ. 1030
59.	महाभाष्य २–१–३	झज्झर संस्करण	पृ. 563
60.	समय समय पर	केदारनाथ सिंह	पृ. 14
61.	तीसरा–सप्तक (वक्तव्य)	प्रयाग नारायण त्रिपाठी	पृ. 4
62.	वही	कीर्ति चौधरी	पृ. 34
63.	वही	केदारनाथ सिंह	पृ. 117
64.	तीसरा–सप्तक	अज्ञेय	पृ. 128
65.	वही	वही	पृ. 142

66.	वही	वही	पृ. 127
67.	बाघ	केदारनाथ सिंह	पृ. 37
68.	एक भेट वार्ता से	२१ नवंबर नई दिल्ली	
69.	वही	वही	पृ.282
70.	तीसरा सप्तक	अज्ञेय	पृ. 120
71.	अभी बिलकुल अभी	केदारनाथ सिंह	पृ. 9
72.	वही	वही	पृ. 29
73.	अकाल में सारस	वही	पृ. 11

*****

उपसंहार

उपसंहार

रचनाकार और उसकी रचना का परस्पर इतना गहरा नाता होता है कि दोनों को एक दूसरे से अलग करके देखना बड़ा मुश्किल है। केदारनाथसिंह का व्यक्ति रूप उनकी सर्जना में अपनी विभिन्न मानवीय संवेदनाओ को लेकर प्रकट हुआ है। नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल की तरह ही जमीन के कवि होते हुए भी इन का जमीनी स्वरूप कुछ नए अंदाज से व्यक्त हुआ है। बिबंधर्मी कवि होने के कारण इनकी कविताएँ जनता तक उस रूप में नहीं पहुँच सकी। जिस तरह से कि अन्य कवियों की।

केदारनाथसिंह ने काव्य लेखन की शुरूआत गीतों से की। जो कि मूलत: लोकगीतो के स्वरूप पर आधारित थे। कालान्तर में इनके सर्जक रुप में निरंतर बदलाव आता गया।

केदारनाथसिंह का विधिवत काव्य लेखन 1952-53 से शुरू होकर आज भी अनावा्त जारी है। फ्रांसीसी कवि पॉल एलुअर की प्रसिद्ध कविता स्वतंत्रता के अनुवाद से उनका परिचय पश्चिम समकालीन काव्य चेतना से हुआ। प्रारम्भिक दौर में वे कुछ समय तक हमारी पीढ़ी नामक पत्रिका के लिए लिखते रहे। इनका पहला काव्य संग्रह अभी बिलकुल अभी उन दिनों (1960) में प्रकाशित हुआ। इसके एक वर्ष पूर्व 1959 में इसकी अधिकांश कविताएं अज्ञेय के 'तीसरा सप्तक' में प्रकाशित हो चुकी थीं। उनकी पहली आलोचना पुस्तक 'कल्पना और छायावाद' 1957 में और आधुनिक हिंदी कविता में बिम्बविधान शोध पुस्तक 1964 में प्रकाशित हुईं।

सन् 1960 के बाद व्यक्तिगत एवं पारिवारिक संकटों के

कारण लगभग बीस वर्षों तक इनके काव्य लेखन में जैसे ठहराव सा आ गया था। इस बीच जो कुछ लिखा गया वह प्रकाशित कम ही हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कविताएं पढ़ने को मिलती थी। 1980 में 'जमीन पक रही है' नामक दूसरा काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। निश्चित रूप से जमीन पकने की परिपक्वता का आभास इनकी कविताओं में भी देखा जा सकता है। इसके बाद कवि की सर्जनशीलता की धार वस्तु एवं शिल्प के धरातल पर तेज होती गई और प्रकाशन का अनवरत सिलसिला चलता रहा। 1983 में 'यहाँ से देखो' तीसरा काव्य संग्रह और 1988 में चौथा 'अकाल में सारस' प्रकाशित हुआ। इन संग्रहो में समसामयिक विषयों के अतिरिक्त ग्रामीणजीवन के विविध चित्र अपनी पूर्ण संवेदनाओं के साथ व्यक्त हुए हैं। 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएं' संग्रह की कविताए इनके गहन चिंतन की भावभूमि पर लिखी गई हैं। प्रगतिशील विचारधारा की सशक्त रचना इनकी लंबी कविता 'बाघ' है। जिसकी तुलना समकालीन रचनाकारों की लम्बी कविताओं से की जाती है।

समकालीन हिन्दी कविता कें परिदृश्य में केदारनाथ सिंह उन थोड़े से कवियों में से है जिनकी कविता में चित्र के साथ चरित्र को भी एक हरकत में देखा जा सकता है। ये चित्र अपनी भूमि पर अलग हैं। उदाहरण के तौर पर उनकी एक कविता 'कुदाल' देखिए। इस कविता में कवि ने कुदाल जैसी चीज़ को कविता के अन्त तक लाते-लाते उसे एक चरित्र में विकसित कर दिखाया है। यह कवि के अनुभव की ताकत है कि कविता में चरित्र और चित्र दोनों एक साथ खड़े हैं। केदारनाथ सिंह की कविता की बनावट में वे तर्क को कमोबेश तंत्र की तरह उपयोग में लाते हैं। वे कविता के

हुस्न को बेसब्री से एक साथ दिखाने की जल्द बाजी नहीं करते । वे धैर्यवान और संयम वाले कवि हैं । वास्तविकता में केदारनाथ सिंह के यहाँ कविता बनती देखी जा सकती हैं। जबकि अन्य समकालीन कवियों के यहाँ ऐसा नहीं है । केदारनाथ सिंह अलग काट के कवि है । उनकी काव्य प्रक्रिया में उनके भाव-बोध में जो प्रगति परक तत्व है, उसका बड़ा हाथ है । सम्भवत: इसी कारण उनकी कविताओं में एक भभक, एक लपट आर एक धुंधलके में चमकती लकीर दिखाई पड़ती है । आलोचक, केदारनाथ सिंह को चमक और चमत्कार दोनों का कवि मानते है ।

केदरनाथ सिंह को देखने का कवि भी माना गया है । क्योंकि वे प्रत्यक्ष को ही प्रस्तुत करते हैं । उनकी चेतना में संवेग व संवेदन तंतुओं की बनावट के साथ - साथ रुप और आकार घर्मिता भी है । वस्तुत: केदारनाथ सिंह की कविताएँ एक नाटकीय दृश्य की तरह खुलती है । उनकी कविताओं के कथानक में प्रश्नाकुलता है, कौतुक और कौतुहल है, विस्मय है, तर्क है । उनकी तर्क श्रृंखला से काव्य-विवेक की पुष्टि होती है । उनमें वह लय है जो अचानक दृश्य - बंधो के बीच स्मृति से चमकते सधन बेआवाज अंधेरे को चीरकर सहसा प्रकाश के विस्फोट में बदल देती हैं । उपरोक्त सभी गुणों को परिलक्षित करती है उनकी यह कविता:-

'फिर उस मद्धिम रोशनी में
पानी की आँखों में
आँखें डाले हुए
वे रात-भर खड़े रहते हैं
पानी के सामने

पानी की तरफ़

पानी के खिलाफ़

सिर्फ उनके अन्दर

अरार की तरह

हर बार कुछ टूटता है

हर बार पानी में कुछ गिरता है

छपाक्–छपाक् ––––'

केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति की बहुलता है। वह शायद अपने आदि काल से मानों प्रश्नों से नाभिनाल–बद्ध है। प्रश्न भरी मुद्रा में कवि पूछता है :–इस अनागत का करें क्या? यह उनकी काव्यानुभूति का ही आयाम प्रतीत होता है। उनके आरम्भिक दौर की एक ओर कविता है 'एक पारिवाकि प्रश्न' इस कविता में कवि अपना गुलाब रोपने के लिए व्याकुल है और प्रश्न पूछता है:–

मैं अपना नन्हा गुलाब

कहाँ रोप दूँ।

मुट्ठी में प्रश्न लिए

दौड़ रहा हूँ बन–बन,

पर्वत–पर्वत

रेती–रेती

लाचार।

ऐसा लगता है कि केदारनाथ सिंह प्रश्नसंस्कृति के कवि हैं। यद्यपि मैं निर्णायात्मक तौर से तो नहीं कह सकता, और बाद में भवानी प्रसाद मिश्र एवं धूमिल को इस धारा से जोड़ा जा सकता है। केदारनाथ सिंह इस विडम्बना –बोध की तरफ रुख करते तो है

परन्तु अधिकांशत: उनकी चेतना उस ओर मुड़ जाती है जहाँ द्वंद्व-भरे रिश्ते हैं, संशय की धूल है, कहीं बहुत गहरे में उनका कवि शब्दों की फाँक में झाँकता है ।

केदारनाथ सिंह न केवल दूसरे से बल्कि स्वयं से भी सवाल पूछते है 'जमीन पक रही है' संग्रह की कविताएं ऐसे अनेकों सवाल पूछती हैं । जैसे नदी को नाम कौन देता है? क्या एक को तोड़ने से बन जाते हैं दो लोग, 'हिमालय किधर है', 'मेरा घर किधर है ।' कवि स्वयं से भी पूछता है:-

"मैं खुद से पूछता हूँ
कौन बड़ा है
वह जो नदी पर खड़ा है मांझी का पुल
या वह जो ढंगा है लोगों के अन्दर?"

प्रश्नों की प्रवृत्ति 'उत्तर केदार' तक आते-आते काफी तीव्र हो गई है । वस्तुत: इन प्रश्नों के पीछे जो संशय और संदेह या जिज्ञासा है उससे उनकी काव्यानुभूति को घनत्व मिला है । यह प्रश्नाकुलता उनकी आदत भर नहीं है । बल्कि वह ताकत है जहाँ से उनकी कविता की जड़े मजबूत होती है और वे अपने लिए ताकत जुटाती है । उनकी प्रश्न प्रवृत्ति विभिन्न रुपों में प्रकृट होती है नीचे कुछ उदाहरण द्दष्टव्य हैं :-

i) "उसके जागते रहने/और हमारे सो जाने के बीच/ यह कौन सा नाता है?"

ii) "और अंदर झांक कर देखना ही होगा/ कि आखिर रिश्ता क्या है 'नमक' ध्वनि/ और नमक के स्वाद में?"

iii) "क्या मैं कभी समझ पाऊँगा/ बैलगाड़ी और बाजार का/ धूल-भरा रिश्ता ।"

iv) "और अब यह बहस तो चलती ही रहेगी/ कि नाच का आज़ादी से। क्या रिश्ता है?"

इन प्रश्नों के संबंध में नामवर सिंह कहते हैं कि "कबीर अक्सर सवाल करते रहते थे; जैसे "दुई जगदीश कहाँ से आया?" सवाल केदारनाथ सिंह जी भी बहुत करते है; बल्कि कुछ ज्यादा ही। उतने असुविधाजनक सवाल तो नहीं, लेकिन काफ़ी बुनियादी। निहायत मासूम अदा से। यह मासूम अदा बहुतों को प्यारी भी लगती है। कविता भी शायद इसी मासूमियत में ही है।"

केदारनाथ सिंह ने अपनी कविताओं में यथार्थ को एक चित्रकार की आँख से देखने की कोशिश की है न कि एक कैमरे की तरह। वे इस बदलते यथार्थ में कुछ अलग या कहिए कि अपने ढंग से रंग भरते हैं। और कार्य में वे भाषा एवं उसकी रंगतों एवं ताकत का सर्जनात्म उपयोग करते हैं। भाषा की नाटकीयता से यथार्थ पाठक के मन में कई कोणों से मूर्तिमान हो उठता है। उदाहरण स्वरूप :-

"दर्जी सूई की नोक में /खो गया हैं
सपना चूँकि पृथ्वी पर अकेला अद्धैत है,
भाषा के लगभग सारे पचांग,
उस शहर में भाषा ही हो गई है गुल
बिजली की तरह
अथाह चुप्पियों की ऐसी किताब
एकदम धारोष्ण
पृथ्वी से बन्द है आकाश की बातचीत
और पृथ्वी का सबसे सुंदर मूर्ख।"

उक्त पंक्तियों में इनके मिले-जुले तेवर देखे जा सकते है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में द्वन्द्व का रंग भी बहुत गहरा है। यह द्वन्द्व उनकी कई कविताओं में जैसे 'गाँव आने पर' तथा 'कुदाल' में नैतिक बोध के रुप में सामने आया है। दरअसल, वस्तु-जगत में न दिखाई देने वाली फॉक को पकड़ने के क्रम में यह द्वन्द्व उभरता है। संशय और द्वैत के अन्त: संबंधों और यथार्थ की भीतरी तहों को छूने और पहचानने के कारण उनके काव्य में यथार्थ का विचलनकारी चरित्र पाठक को एक नया आस्वाद देता है। यथार्थ को कविता में ढालने के कारण कभी-कभी असंतोष भी होता है क्योंकि यथार्थगत विडम्बना और तनाव भरी दृष्टि कम देखने को मिलती है।

केदारनाथ सिंह प्रस्तुत एवं प्रत्यक्ष के कवि हैं। उनकी चेतना में संवेग व संवेग देखने के साथ-साथ जाँचने-पूछने की प्रक्रिया है जो लगातार चलती है।

केदारनाथ सिंह अपने कविता संसार में बार-बार एक नदी की तरफ, पुल की तरफ, गाँव-कस्बे की तरफ, उन खेतों की तरफ लौटते है। लेकिन हरबार एक नया रिश्ता बनाने की तलाश में। उन सबके सात एक नया संवाद, एक नई पहल करने की तलाश में।

वे मूलत: बिम्ब धर्मी कवि हैं, इसलिए बिम्बों के बिना कुछ नहीं कहते। वे कभी बिम्ब रहित शब्दों का प्रयोग करते हैं तो कभी अपवाद स्वरुप बिम्ब प्रस्तुत करने के बजाय कविता में कोई वक्तव्य देते हैं। इस तरह से उनकी प्रवृत्ति बिलकुल मुक्तिबोध से मिलती है जिन्हें कुछ भी सीधे ढंग से कहने की आदत नहीं है। केदार की पैनी दृष्टि ने उन अनछुए बिम्बों को तरासा है, जहाँ उनके समकालिनों की दृष्टि नहीं पहुँच पाई। क्योंकि कवि अपने

समय से होकर गुजरा है और परिवेशगत संघर्षों को सीधे-सीधे जीवन से जोड़ा है, इसलिए अनुभवों से अर्जित भावों में उनकी जड़ों से आई स्मृतियां चुपचाप शामिल हैं । अन्य समकालीन कवियों की अपेक्षा कम लिखा, परन्तु बहुत कुछ कह जाने वाला । अपनी अनोखी कल्पनाशक्ति की सृजनशीलता से उन्होंने किसी दूसरे की राह का अन्वेशी न बन अपनी एक अलग राह एवं पहचान बनाई है । और अन्त में प्रो. काशिनाथ सिंह के इस वक्तव्य के साथ अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा :-

"सीधे-सीधे इनकी कोई विचार धारा न थी परन्तु जो ध्वनित हो रहा था उसमें मार्क्सवाद की झलक जरूर थी। केदारनाथ सिंह के लेखन का फलक बहुत व्यापक एवं गहराई लिए हुए है । इनका नाम समकालीन रचनाकारों में अग्रणी रहेगा ।"

*****

परिशिष्ट

परिशिष्ट -१

प्रो.काशिनाथ सिंह का व्याख्यान

स्थान :

गोवा विश्वविद्यालय दिनांक ७ मार्च १९९८

<u>प्रो. काशिनाथ सिंह</u> :- कविता में मेरी बहुत रुचि नहीं रही। मैं समझता था कि कविता मैं पसंद नहीं करता, पर दरअसल वह क्षमता मुझमें नहीं है। इसलिए बहुत ज्यादा उम्मीद न रखें। चूँकि बात केदारनाथ सिंह के विषय में करनी है, तो शायद कुछ साफ़ कर पाऊ, क्योंकि उनको मैं अच्छी तरह जानता-पहचानता हूँ।

केदारनाथ सिंह 'बलिया' जिले के एक गाँव 'चकिया' के रहने वाले हैं। उनके पिता का नाम 'डोमनसिंह' था। इस तरह के नाम हमारे यहाँ सामान्यत: उन बच्चों के रखे जाते है, जिनके जीवित रहने की सम्भावना कम होती थी। इस प्रकार से उल्टे-सीधे नाम इसलिए रखे जाते थे ताकि वे जीवित रह सकें । इनके पिता प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे। वे स्वाधीनता संग्राम के सैनानी थे और राजनीति में काफी रूचि रखते थे। हमारे ख्याल से साल-डेढ साल पहले ही उनका स्वर्गवास हुआ। वृद्धावस्था में केदारनाथ सिंह के साथ दिल्ली में रहते थे।

केदारनाथ सिंह की माँ जीवित है, जो जे एन यू में उन्हीं के साथ रहतीं हैं। इनके पाँच बच्चियाँ है जिनकी शादी हो गई है। एक बेटा है जो आई ए एस अलाइड़ है। साहित्य में उसकी कोई खाश दिलचस्पी नहीं है।

केदारनाथ सिंह की ज्यादातर शिक्षा बनारस में हुई,

आरम्भ में उदय-प्रताप कॉलेज, जिसे क्षत्रिय कॉलेज भी कहा जाता है, से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा पास की। एम.ए. सम्भवतया १९५५-५६ में किया। उदय प्रताप कॉलेज में अध्ययन के दौरान ही वे गीत लिखा करते थे। और वहाँ बनारस में गीतकारों का एक अच्छा खासा मंडल था। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण कवि और गीतकार थे शम्भुनाथ सिंह। उनकी बहुचर्चित कविता थी :- जिसे कवि सम्मेलनों वे गाते थें :-

समय की शिला पर
मधुर चित्र कितने
किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए।

शम्भुनाथ सिंह से सम्पर्क के दौरान केदारनाथ सिंह ने गीतों की दुनिया में कदम रखा और साथ ही कवि-सम्मेलनों में भी जाना शुरू कर दिया था। शुरुआती दिनों में उन्होंने बड़े अच्छे गीत लिखे जैसे कि एक लोकप्रिय गीत की धुन है :-

"झरने लगे नीम के पत्ते,
बढने लगी उदासी मन की।"

ये पतझड़ जब होता है तो मन भी न जाने कैसा-कैसा होने लगता है। यही सीजन है, जिसमें मौसम के साथ-साथ थोड़ी हवा भी बदल जाती है। फूल-खिलने लगते हैं और पत्ते झड़ने लगते हैं। उसी मनस्थिति को ध्यान मे रखते हुए उन्होंने यह गीत लिखा था।

उन दिनों केदारनाथ सिंह के गीतों के बहुत अच्छे कवि माने जाते थे। यह सन् १९५०-५१ के आस पास की बात है। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के बाद, स्व.शितीत लाल के

अन्तर्गत, 'छायावादी काव्य में बिम्ब विधान' विषय पर पी.एच.डी. की।

पी.एच.डी. करने के उपरान्त देवरिया के पड़रौना डिग्री कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक के रुप में कार्य करते हुए कालान्तर में वहीं प्राचार्य हो गए। इस समय प्रो.नामवर सिंह जोधपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे, जो कि १९७२ के आस-पास जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग को स्थापित करने के लिए गए तो उन्होंने केदारनाथ सिंह को पड़रौना से रीडर के रुप में आमंत्रित कर उनकी नियुक्ति की। केदारनाथ सिंह विभागाध्यक्ष पद से मुक्त होने के बाद पुन: वही पर अथिति आचार्य के रुप में कार्य कर रहे हैं। मेरे ख्याल से यह उनका पाँचवा साल है एक तरह से अंतिम वर्ष है कार्य करने का।

केदारनाथ सिंह का पहला कविता संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' १९६० में प्रकाशित हुआ और इसके बीस बरस बाद १९८० में दूसरा काव्य संग्रह 'जमीन पक रही है' आया। इसी क्रम में तीसरा और चौथा काव्य संग्रह क्रमश: 'यहाँ से देखो' और 'अकाल में सारस' आया। इसके पश्चात 'बाघ' काव्य संग्रह जिसे हम लम्बी कविता कह सकते है, यह भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ। ज्ञानपीठ पुरस्कार को छोड़कर शेष लगभग सभी महत्वपूर्ण पुरस्कार उन्हें मिल चुके हैं। अहिन्दी प्रदेशों से भी पुरस्कार प्राप्त हुए है। अभी हाल में ढाई लाख का व्यास सम्मान केदारनाथ सिंह को प्राप्त हुआ ।

जो प्रगतिवादी कविता नागार्जुन और त्रिलोचन से शुरू हुई थी और बाद में उसमें कई काव्य सोपान आए। केदारनाथ सिंह इसके महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में से एक है। वे कई देशों की यात्रा भी

कर चुकें हैं । गोरखपुर से निकलने वाली साखी पत्रिका के संपादक भी है । साहित्य अकादमी पुरस्कार जो काफी जद्दोजहद के बाद मिलता है, केदारनाथ सिंह को प्राप्त है । हिन्दी कवियों की संख्या, क्षेत्र और कविताए विविध रंग के होने कारण हिंदी में साहित्य अकादमी का पुरस्कार महत्वपूर्ण माना जाता है ।

केदारनाथ सिंह की कविताओं के बारे में बताने के लिए थोडा-बहुत उनके परिवेश से परिचित होना चाहिए । मैं अपनी बात संक्षेप में कहने की कोशिश करूँगा । और इसके लिए आपको लिए चलता हूँ छायावाद के बाद दो महत्वपूर्ण काव्यान्दोलनों के बीच । एक प्रगतिवाद जिसकी शुरुआत १९३६ से मानी जाती है और एक प्रयोगवाद -जिसकी शुरुआत 'तार सप्तक' के आरम्भ से मानी जाती है । १९४३ के आस-पास से । प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में बुनियादी फर्क क्या है पहले यह बता दें । १९३६ में शुरू होने वाला प्रगतिवाद, साहित्य रचना के लिए मार्क्सवाद में विश्वास रखता था । मार्क्सवादी विचार धारा में विश्वास रखता था । और कविता का विषय मुख्य रुप से किसान और मजदूर हुआ करता था। किसान और मजदूरों का जीवन संघर्ष प्रगतिवाद का विषय था। गरीबों की जिन्दगी के बारे में, गरीबी के बारे में उनके श्रम के बारे में केदारनाथ अग्रवाल की कविता है:-

उठमार कुदाली धरती पर

उठमार कुदाली धरती पर ।

खेतों से संबंधित उनकी एक कविता है:-

"बसंती हवा हूँ, बसंती हवा हूँ"

किसान, मजदूर, किसानों की जिन्दगी के बारे में खेत-खलिहान, ये प्रगतिवादी विषय थे। प्रगतिवादी कवि भी प्राय:

किसान परिवार से आने वाले थे।

प्रगतिवाद के विरुद्ध एक दूसरी काव्य धारा का नेतृत्व करते हुए 'अज्ञेय' का साहित्य में प्रवेश हुआ। विषय एवं वक्त बदला और प्रगतिवाद की जगह प्रयोगवाद ने ले ली। प्रयोगवादियों ने किसान और मजदूर को छोड़ मध्यवर्गीय जीवन को अपना विषय बनाया। जहाँ प्रगतिवाद कविता की विषय वस्तु पर बल देता था वहीं प्रयोगवाद ने शिल्प को मुख्य मानते हुए नए-नए प्रयोगों पर बल दिया।

कविता में प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण चीज है। शब्दों का, शैली का, डिक्सन का, लय का, प्रयोग। इससे कविता अगर गद्यात्मक होती है तो इससे भी उन्हें परहेज नहीं। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रयोगवाद किसी भी विचारधारा में विश्वास नहीं रखता था और जीवन को प्रयोग मानकर चलता था। यह सिलसिला ट्रायल एंड ऐरर के सिद्धान्त पर चलता रहा। आगे चलकर ये कवि एक अमेरी की संस्था "A forem for cultural freedom" से मिल गए। इसके कर्ता-धर्ता भी अज्ञेय ही थे। यह परिदृष्य था साहित्य का केदारनाथ सिंह के इस क्षेत्र में आने से पूर्व।

सन् पचास के आस-पास जब केदारनाथ सिंह ने कविता लिखना आरम्भ किया, उन दिनों इलाहाबाद से एक "नई कविता" के नाम से पत्रिका निकलनी शुरु हुई थी। उस समय हिन्दी साहित्य के दो केन्द्र थे।इलाहाबाद और बनारस दोनों ही एक दूसरे के कहीं -न-कहीं विरोधी थे। बनारस की परंपरा में भारतेन्दु, प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल आते थे और इलाहाबाद की परंपरा में महादेवी वर्मा, पंत, हरिवंशराय बच्चन,

भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश शरण गुप्त आदि थे। लेकिन इलाहाबादी, निराला से न होकर पंत और महादेवी वर्मा से प्रभावित थे। ये दोनों ऐसे छायावादी कवि थे जिनकी अपनी कोई विचार धारा नहीं थी।

हाँ, तो मैं बात कर रहा था 'नई कविता' पत्रिका के विषय में जो कि १९५४ में जगदीश गुप्त के संपादन मे निकली। कालान्तर में धर्मवीर भारती, धर्मयुग के सम्पादक हुए। जिसके माध्यम से उन्होंने साहित्य को एक नया आयाम दिया। इस समय इलाहाबाद में विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और दुष्यंत कुमार आदि रचना में निरत थे।

आजादी के बाद बनारस की अपेक्षा इलाहाबाद में आधुनिक शिक्षा के अधिकांश केन्द्र थे। शिक्षा संस्थानों में सेंट मेरी, सेंट जोजेफ, सेंट जॉन स्कूल एवं इविंग क्रिश्चियन कॉलेज आदि की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। आइ.ए.एस. एवं पी.सी.एस. की परिक्षाएं यहाँ सम्पन्न होती थीं और आज भी हो रही हैं। अंग्रेजी का प्रभाव अधिक था। बनारस इस मामले में ज्यादा परंपरावादी था जिसका प्रभाव लेखन पर भी पड़ा।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता या आधुनिकतावाद की चर्चा भी १९५० के आस-पास ही शुरू हुई।१९५२ इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि जिस सप्तक से यानी दूसरे सप्तक से प्रयोगवाद स्थापित हुआ, वह भी १९५२ में ही संपादित हुआ, जिसके चौथे कवि केदारनाथ सिंह हैं। सन् १९४० से लेकर लगभग बीस वर्षों तक अज्ञेय कवि एवं साहित्यकार के रुप में हिन्दी कविता ये छाये हुए थे। प्रत्येक कवि उनके जैसा लिखना चाहता था, उनके जैसा

दिखना चाहता था। और हिन्दी कविता को गहरे स्तर पर रखना चाहता था। उनके समक्ष मुक्तिबोध, नागार्जुन, समसेर, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि सभी कवि हॉसिये पर चले गए थे। सभी लिख रहे थे परन्तु किसी की कोई महत्वपूर्ण पहचान नहीं बन पाई थी। मुख्य रुप से सबसे महत्वपूर्ण कवि-लेखक माने जाते थे- 'अज्ञेय'। और कहा जा रहा था कि प्रेमचंद के बाद का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यासकार है 'अज्ञेय'।१९५२-५३ में इनका एक उपन्यास आया 'नदी के द्वीप' जो एक तरह से सदियों तथा तारागृहों के बीच प्रयोग वाद के दर्शन का प्रतीक बन गया था।

इतिहास गवाह है कि रामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जनता में भले ही लोकप्रिय रहे हों लेकिन साहित्य जगत में उनकी ख्याति तीन-चार सौ वर्षों के बाद बनी। मिश्र बंधु के जमाने में बिहारी, मतिराम, आदि महत्वपूर्ण कवि माने जाते थे। कालान्तर के समीक्षकों ने काव्य में लोकमंगल की भावना को अत्यधिक महत्व दिया जिसमें विशेष रुप से रामचन्द्र शुक्ल का नाम आता है। शुक्ल जी ने तुलसीदास को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित किया। इसी प्रकार १९६४ मे नामवर सिंह की पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' आयी, जिस पर कि उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। इसने नामवर सिंह को अज्ञेय और मुक्तिबोध के बराबर की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया।

दोनों की कविताओं की समीक्षा करते हुए नामवर सिंह ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि निराला की परंपरा को आगे बढाने का कार्य मराठी भाषा-भाषी मुक्तिबोध ने किया। इस बात को समझाने के लिए नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान पुस्तक के अंत में 'अंधेरे में' कविता पर एक लेख लिखकर यह

समझाने की कोशिश की है कि अंधेरे में का मतलब क्या है? मुक्तिबोध की कविताओं का प्रकाशन 'तार सप्तक' में हो चुका था लेकिन बीस-पच्चीस वर्षों तक इनकी कोई पहचान नहीं बन पायी थी। लेकिन कविता के नये प्रतिमान के प्रकाशन के बाद इनकी गिनती महत्वपूर्ण कवियों के रुप में होने लगी। इस दौरान सर्वेश्वर दयाल सक्सेना इलाहाबाद से दिल्ली आ गए थे और अज्ञेय द्वारा सम्पादित दिनमान पत्रिका में अपना सहयोग देने लगें। इनके साथ रघुवीर सहाय भी थे।

दिनमान का प्रकाशन दिल्ली में होता था। कालान्तर में इसके सम्पादक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हो गए। रघुवीर सहाय और सक्सेना दोनों केदारनाथ सिंह के साथ 'तीसरे सप्तक' मे शामिल है। मुक्तिबोध की मृत्यु (१९६४) के बाद रघुवीर सहाय और सक्सेना दोनो ने अपनी राह बदल कर समाजवादी द ेट अपना ली । अज्ञेय जी इस विचार धारा के थे परन्तु मुक्तिब मार्क्सवादी ही रहे। केदारनाथ सिंह प्रारम्भ में प्रयोगवादी कवि रुप में ही कविता के क्षेत्र में आए और उन्हें 'तीसरे सप्तक' माध्यम से ख्याति मिली।

१९५४ में नई कविता के साथ एक नया काव्यान्दोलन शुरू हुआ। एक तरह से प्रयोगवाद को नई कविता की पृष्ठ भूमि के रुप में देखा जा रहा था। केदारनाथ सिंह का लगाव कालान्तर में नई कविता से हुआ लेकिन लोकजीवन से अभिन्न रुप से जुड़े रहे। उनका पहला काव्य संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' आया तो लोक जीवन और लोक-शैली के अछूते बिम्बों को ताजगी के साथ लाया। इन जीवन दृष्यों की एक कविता याद आती है:-

"बादल जी आना जरुर।"

इसके बीस वर्षों के बाद 'जमीन पक रही है' आया जिस में कवि की रचना प्रक्रिया में परिवर्तन साफ़-साफ़ दिखाई दिया। और एक के बाद एक छ: काव्य संग्रह आए।

और अन्त में इतना ही कहूँगा कि सीधे-सीधे इनकीकोई एक विचारधारा न थी परन्तु जो ध्वनित हो रहा था उसमें मार्क्सवाद की झलक जरूर थी। केदारनाथ सिंह के लेखन का फलक बहुत व्यापक एवं गहराई लिए हुए है। इनका नाम समकालीन रचनाकारों में अग्रणी है।

*****

परिशिष्ट – २

डा.केदारनाथ सिंह से भेट वार्ता

केदारनाथ सिंह से शोधार्थी की भेंट वार्ता

स्थान : जे.एन.यू नई दिल्ली

दिनांक : २३ जून १९९९

२२ जून की शामको मैंने केदारनाथ सिंह को फोन कर अगली सुबह भेंट की प्रार्थना की, तो उन्होंने व्यस्तथा बताई, परन्तु अगले ही पल, मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। केदारनाथ सिंह ने मुझे सुबह दस बजे का समय दिया। मैं उत्सुकता के कारण नौ बजे ही जे.एन.यू. जा पहूँचा, और कुछ समय कैम्पस में बिता, दस बजने से कुछ मिनट पहले ही उनके घर जा पहुँचा। केदारनाथ सिंह की माता जी ने दवाजा खोला, और बैठने को कहा। माता जी एकदम बूढी हो गई है, कमर झुक गई है, शायद जीवन की इस संध्या में भी अपने बेटे का साथ बाखूबी निभा रहीं है।

कुछ क्षण बाद ही केदारनाथ सिंह जल्दी–जल्दी सीढियां उतरते नीचे आये। खद्दर का, खडे कालर वाला हल्के पीले रंग का कुरता एवं सफेद पाजामा पहने , आधे सफेद व आधे काले बाल जो उपर की ओर कंघी किये थे, चस्में मे चमकती आँखे व चेहरे परतेज, परन्तु साधारण स्वभाव, यह व्यक्तित्व अपने आप में अनेको गहराईयों वाला प्रतीत हो रहा था।

नीचे आते–आते ही बोले नास्ता करोगे? मैंने सहधन्यवाद कहा, सर, मैंने नास्ता कर लिया है। फिर ग्लास में पानी लाये और मुझे दिया और पास वाले सोफे पर बैठ गये।

केदारनाथ सिंह :- कहो मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ? उन्होंने पूछा?

शोधार्थी :- मैं सिर्फ आपके दर्शनों का इच्छुक था, क्योंकि मैं आपकी रचनाओं पर शोध कार्य कर रहा हूँ। मेरे इस कार्य को पूरा करने के लिए आपके आशिर्वाद की आवश्यकता है।

केदारनाथ सिंह :- हमारा आशिर्वाद आपके साथ है, कब जमा कर रहे हो? कितना समय हो गया है? उन्होंने कहा!

शोधार्थी :- सर, दो वर्ष हो गये है, अभी तो और समय लगेगा। मैंने एक प्रश्न किया, सर काफी दिनों से आपकी कोई नई रचना नहीं आयी, पत्र-पत्रिकाओं में भी आजकल आपके बारे में कुछ नहीं छप रहा है, क्या अभी कुछ नया आने की उम्मीद है?

केदारनाथ सिंह :- नहीं, अभी नया कुछ नहीं। हाँ, कुछ समय पूर्व सूरत से डा.ई.वी. रामकृश्नन आये थे, वे वहाँ अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं, उन्होंने मेरा काफी लम्बा इन्टरव्यू लिया था, जो उनकी पुस्तक "मेकिंग इट न्यू" में छपा है। यह पुस्तक शिमला के 'सेंटर फॉर एडवांश स्टडीज' से प्रकाशित हुई है। उन्होंने इस पुस्तक में मराठी के कवि दिलीप चित्ते और मलेयालम के कवि सच्चिदानन्द व मेरी तुलना की है। दूसरा 'उदय प्रकाश' जी की पत्रिका 'कथादेश' के

पहले कुछ अंकों में मेरे बारे में काफी छपा है ।

शोधार्थी :- मुझे आपके दादा जी के कार्य के बारे में थोडी सी जानकारी चाहिए , क्योंकि आपके परिचय वाले अध्याय में उनके बारे में थोड़ा छूट गया है ।

केदारनाथ सिंह :- मेरे दादा जी का नाम भोलासिंह था। जो उन्नीसवीं सदी के अंत में कलकत्ता के एक बैंक में बहुत छोटी सी, साधारण सी, नौकरी करते थे । अंग्रेजों का समय था, अच्छी नोकरियाँ तो वैसे भी नहीं मिलती थी ।

शोधार्थी :- आप सेवानिवृत्त होने के बाद वापस गाँव जायेंगे?

केदारनाथ सिंह :- नहीं, अभी कहाँ जा पाऊँगा। मैं जुलाई में रिटायर हो रहा हूँ यहीं साकेत में घर ले लिया है। सितम्बर / अक्तूबर तक वहाँ सिफ्ट कर जाऊँगा । बेटा यहीं दिल्ली में एस.डी. एम है । वह वहाँ रह रहा है, अपनी पत्नी व बच्चे के साथ । मैं और माँ भी वहीं चले जाएंगें । बस यही छोटा सा परिवार है । गाँव में चार-पाँच बीघे जमीन है जो अभी रखी है । वैसे गाँव आजकल बहुत बदल गया है। और बदले भी क्यों नहीं, बदलना प्रकृति का नियम है। अभी भी गांव अच्छा लगता है, सब कुछ भूल जाता हूँ, वहाँ जाकर । जब भी जाता हूँ १५-२० दिन रह कर आता हूँ । मेरे साथ के बहुत सारे लोग हैं उन्हीं के साथ रहता हूँ, वे समझते है कि मैं कुछ बड़ा काम करता हूँ और बहुत बड़ा आदमी बन गया हूँ ।

लेकिन उनका स्नेह मेरे प्रति बहुत है ।

उसके बाद बात बदल कर देश के मौजूदा हालात पर आ गयी । और वे बोले, कारगिल में जो स्तिति बनी है वह बहुत दुर्भाग्य पूर्ण है । उन्होंने बताया कि वे जर्मनी गये थे, वहाँ पर भी कश्मीर वासियों के विद्रोह की बात सुनने में आयी । जो भी हो बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है ।

अब समय हो चला था, और उन्हें एक गोष्टी में भाग लेने जाना था । मैंने इज़ाज़त ली, उन्होंने एक बार फिर मेरी सफलता का आशिर्वाद दिया और गोवा आने की इच्छा जाहिर की । मैंने भी अपना निमंत्रण उनको दिया और विदा ली ।

सच्चाई यह है कि पहली बार उनसे मिलने से पहले मैं जितना संकुचित एवं डरा-डरा सा था मुलाकात के बाद उतना ही ज्यादा प्रफुल्लित अपने आप को पा रहा था । इतना साधारण अपनत्व से ओतप्रोत व्यक्तित्व है, मैंने कभी कामना भी न की थी । इस उम्र में भी इतने चुस्त एवं फुर्तीले हैं, वाणी से मिठास ही मिठास झड़ता है । गाँव उन्हें अत्यन्त प्रिय है, और उससे भी प्रिय है उसके बारें में बात करना । गाँव के बारे में उनसे सुनकर ऐसा लगा की केदारनाथ सिंह की आत्मा गाँव में है तथा शरीर दिल्ली में । गाँव की एक स्मृति का चित्रण वे ऐसे करते हैं, मानो सामने सब कुछ देख रहे हों ।

उनसे मिलकर बार-बार मिलने को मन करता है ।

शेरपाल सिंह

परिशिष्ट ३

केदारनाथ सिंह से शोधार्थी की भेंट वार्ता

स्थान : केदारनाथ सिंह जी का निवास स्थान,

साकेत नई दिल्ली

दिनांक : २१ नवम्बर २००१

केदारनाथ सिंह जी की कविताओं के बारे में संक्षिप्त वक्तव्य जो उन्होंने मेरे आग्रह पर दिये क्रमश: नीचे अवतरित है:-

आरम्भिक रचनाएं- गीत:

<u>केदारनाथ सिंह:</u> मेरी आरम्भिक रचनाए गीत थी। उसके बाद गीता छूट गया उसका मुख्य कारण रहा, गीत का ढांचा जो मुझे अपर्याप्त लगता है, उसमें अस्वभाविकता लगती हैं। क्योंकि गीत में पहली पक्ति को पूरा गीत फोलो करता है। पहली पक्ति एक टेक की तरह होती है। यह टेक एक तानासाही काम करती हैं। यह तानासाही वाली पद्यति मुझे सहज नही लगती। भक्त कवियों ने जो गीत लिखे थे, उनमें लचीलापन था जो आजकल नहीं चलता।

गीत क्योंकि टेक से बंधा है इसलिए वह कवि की स्वतंत्रता को सीमित करता है। मैंने ढांचा हॉलाकि गीत का ढाँचा छोड दिया है। परन्तु स्प्रीट अभी भी बनी हुई है। मेरी छोटी कविताओं में अभी भी गीत की ऐंद्रियता, लयबद्धता, शैली एवं संघता मिल जायेगी।

परिशिष्ट ३

केदारनाथ सिंह से शोधार्थी की भेंट वार्ता

स्थान : केदारनाथ सिंह जी का निवास स्थान,

साकेत नई दिल्ली

दिनांक : २१ नवम्बर २००१

केदारनाथ सिंह जी की कविताओं के बारे में संक्षिप्त वक्तव्य जो उन्होंने मेरे आग्रह पर दिये क्रमश: नीचे अवतरित है:-

आरम्भिक रचनाएं- गीत:

<u>केदारनाथ सिंह:</u> मेरी आरम्भिक रचनाए गीत थी। उसके बाद गीता छूट गया उसका मुख्य कारण रहा, गीत का ढांचा जो मुझे अपर्याप्त लगता है, उसमें अस्वभाविकता लगती हैं। क्योंकि गीत में पहली पक्ति को पूरा गीत फोलो करता है। पहली पक्ति एक टेक की तरह होती है। यह टेक एक तानासाही काम करती हैं। यह तानासाही वाली पद्यति मुझे सहज नही लगती। भक्त कवियों ने जो गीत लिखे थे, उनमें लचीलापन था जो आजकल नहीं चलता।

गीत क्योंकि टेक से बंधा है इसलिए वह कवि की स्वतंत्रता को सीमित करता है। मैंने ढांचा हॉलाकि गीत का ढाँचा छोड दिया है। परन्तु स्प्रीट अभी भी बनी हुई है। मेरी छोटी कविताओं में अभी भी गीत की ऐंद्रियता, लयबद्धता, शैली एवं संघता मिल जायेगी।

अभी बिलकुल अभी

अभी बिलकुल अभी कविता संग्रह की रचनाएं एक प्रयास था, प्रचलित शैली से अलग ढंग से अपनी कविता का स्वरुप निर्मित करने का। मेरी कोशिश थी कि कविता में लय तत्व और बिम्बात्मकता दोनों एक नये ढंग से सामने आए। मैं दावे के साथ तो नहीं कह सकता लेकिन इस प्रयास को सफलता तो मिली है। कैई रचनाकारों ने इस संग्रह में बिम्ब की विशिष्टता की बात कही है जो इस बात की पुष्टि करती है।

इस संग्रह की कविताओं की एक खाश बात यह है कि कविताओं में जैसे 'रचनां की आधी रात' में (काव्य की स्वभाविक प्रक्रियां भी बहत्तर समाज के भीतर चलने वाली सृजन प्रक्रिया जैसे धधकती हुई भट्टी पर काम करता हुआ मजदूर और उसका काम, एवं शहतूत के पेड़ पर कीडे का धागा बनाने का काम)से जुडकर चलती है, एक सहज प्रक्रिया की तरह। यह रचनाकार की एकांतिक स्थिति को तोड़ने की कोशिश है जो इस संग्रह की अन्य कैई कविताओं में प्रदर्शित होती है।

जमीन पक रही है : एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिन्दु

इस संग्रह की कविता ओं को एक प्रस्थान बिन्दु माना गया है। और आलोचकों जैसे अशोक बाजपेई एवं नेमीचन्द्र जैन ने उसी समय कविता की वापसी की बात भी किसी लेख में उठाई थी। परन्तु व्यक्तिगत स्तर पर मैं ऐसा नहीं मानता कि जमीन पक रही है संग्रह की कविताओं को कविता की वापसी कहा जाय। कविता पहले भी थी और शशक्त ढंग से मौजूद थी। 'जमीन पक रही' है

और उस समय के कुछ रचनाकारों जैसे अरूण कमल और राजेश जोशी में एक नये ढंग की संवेदना दिखाई पड़ी, वह केवल इस अर्थ में नहीं थी कि इन कविताओं ने जिन संदर्भों से अनुभव एवं संवेदना अर्जित की वह सामान्य जीवन की छोटी–छोटी घटनाए, परिस्थितियां, एवं छोटी छोटी चीजें थी। जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध कथन को सही ठहराते हुए अपने कथन की पुष्टि करना चाहूँगा कि "यह लघुता के प्रति एक नया दृष्टिपात था" और नयापन इस कार्य में था। यह नयापन लघुता के बजाय लघु की सत्ता पर अधिक केन्द्रित था यानि रोजमर्रा की परिस्थितियाँ, चरित्र एव वस्तुएं। परन्तु 'जमीन पक रही है' किं कविताओं में यह बात खाश तौर से देखी जा सकती है।

यहाँ से देखो

इस संग्रह की कविताओं में स्थानीयता पर जोर है। यानि कवि अपने स्थान से हो कर अपने समय में जाता है। यहाँ स्थानिकता एक महत्वपूर्ण तत्व है। जैसे पानी से घिरे हुए लोग किस तरह बाढ से संघर्ष करते है। यह समाज का व्यापक संघर्ष है। समाज में मनुष्य उसी तरह लडता है जैसे बाढ से लोग लड़ते है।

एक अन्य कविता 'बुनाई का गीत' में एक सामाजिक परिवर्तन की मांग की गई है। और यह अन्तिम पंक्ति कि 'दुनिया का सारा कपड़ा फिर से बुनता होगा' एक टोटल चेजं की भावना का विकास करती है।

अकाल में सारस

इस संग्रह मे मेरी कोशिश रही है कि कविता को सरलीकृत होने से बचाते हुए अपेक्षा कृत सरल और ग्राही कैसे

बनाया जाय।

इस संग्रह में चरित ज्यादा ही स्थानिक है ग्राम्य परिवेश बहुत सारी कविताओं में छाया हुआ है ग्राम्य चरित्र की एक विशेषता की ओर इस संग्रह की कैई और कविताएं संकेत करती है कि किस तरह संर्घष करता हुआ आदमी कठिन से कठिन क्षणों मे भी उदास नहीं होता बल्कि संघर्षो को अपने ढंग से जारी रखता है। आडियल सांस कविता में मृत्यु से संघर्ष करती एक औरत का चित्र प्रस्तुत किया है। अन्तिम पंक्तियों में एवं स्वयं कविता का शीर्षक भी इस बात को बड़ी गहराई से सामने रखते है।

उत्तर कबीर

उत्तर कबीर संग्रह की कविता में मेरी एक कोशिश रही है कि महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक स्मृतियाँ कैसे उभर कर आये, क्योंकि इस समय की कविताओं पर यह आरोप रहा है कि वे स्मृति विहिन कविताएं है। ऐसी कैई कविताएं इस संग्रह में है जहाँ इस बात पर विशेषध्यान रखा गया है।

'उत्तर कबीर' विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि जहाँ एक ओर कबीर को लेकर पूरे हिन्दी समाज में उत्साह है वही दूसरी ओर यह भी सच है कि कबीर को धीरे-धीरे हमने मिथक में बदल दिया है। इस संग्रह की कविता 'कबीर' में स्वयं कबीर के मुहँ से कहलवाया भी गया है कि कितना भयानक है कि लोगों के मुहँ पर किस / कबीर एक नाम बन............(उदा)

जीवन्त उपस्थिति का रूपक में बदल जाना, सामाजिक प्रवृति का हिस्सा है और विडम्बनापूर्ण है उत्तर कबीर सामाजिक विडम्बना को उजागर करती है।

*****

सन्दर्भ ग्रंथ- सूची

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

क्र. सं.	पुस्तक	लेखक	प्रकाशन	संस्करण
1.	अकाल में सारस	केदारनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1989
2.	अधुनातन परिवेश और सृजन की समस्यायें	सं. नवल किशोर, चंद्रसिंह, नंद चतुर्वेदी	राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर	प्रथम संस्करण 1975
3.	अभी बिलकुल अभी	केदारनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1959
4.	आत्म हत्या के विरूध	रघुवीर सहाय	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण 1976
5.	आधुनिक हिंदी कविता	हरदयाल	तरूण प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली -32	प्रथम संस्करण 1993
6.	आधुनिक हिंदी काव्य और कवि	सुरेश चन्द्र निर्मल	बी.आर. प्रिंटर्स लक्ष्मी नगर दिल्ली	प्रथम संस्करण 1976
7.	आधुनिक परिवेश और नवलेखन	डा. शिवप्रसाद सिंह	संजय बुक सेंटर, गोलघर वाराणसी	प्रथम संस्करण 1990
8.	आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजनाशिल्प	हरदयाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरिया गंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1967
9.	आधुनिक हिंदी कविता	हरदयाल	शब्दाकार प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1993
10.	आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान	जगदीश नारायण त्रिपाठी	अनुप्रस्थ प्रकाशन कानुपर,	प्रथम संस्करण 1962
11.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	केदारनाथ सिंह	शोध प्रबंध बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	1952
12.	आधुनिक साहित्यः सृजन	नन्ददुलारे बाजपेयी	द मैक मिलन कम्पनी	प्रथम संस्करण

	और समीक्षा		इण्ड़िया लि. नई दिल्ली	
13.	आधुनिक कवि	केदारनाथ अग्रवाल	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	प्रथम संस्करण
14.	आधुनिक कवि	बालकृष्ण राव	वही	द्वितीय संस्करण
15.	आधुनिक हिन्दी काव्य में अलंकार विधान	जगदीश नारायण त्रिपाठी	अनुसंधान प्रकाशन कानपुर	प्रथम संस्करण 1962
16.	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	नामवर सिंह	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद-1	चतुर्थ संस्करण 1968
17.	आधुनिक हिन्दी गीत-काव्य विषय और शिल्प	डा. जीवनप्रकाश जोशी	मयुर विहार नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
18.	आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद	शिव प्रसादसिंह	नेशनल पब्लिसिंग हाऊस नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1988
19.	आधुनिक हिन्दी काव्य उद्भव और विकास	स्नेहलता पाठक	विद्याविहार प्रकाशन कानपुर	प्रथम संस्करण 1992
20.	आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि	सुरेश चन्द्र,	भावना प्रकाशन दिल्ली	प्रथम संस्करण 1976
21	उत्तर केदार	सं. सुधीश पचौरी	प्रवीण प्रकाशन, महरौली नई दिल्ली-30	प्रथम संस्करण 1997
22.	उत्तर कबीर और अन्य कविताएं	डा. केदारनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली-2	प्रथम संस्करण 1995
23.	कल्पना और छायावाद	डा. केदारनाथ सिंह	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण 1956
24.	कवि केदारनाथ सिंह	सं. भारत यायावार	वाणी प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
25.	कविता का जनपद	अशोक बाजपेयी	प्रतिभा प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-32	प्रथम संस्करण 1992
26.	कविता का अन्त	सुधीश पचौरी	प्रकाशन संस्थान, दरिया गंज नई दिल्ली-02	प्रथम संस्करण 1990
27.	कविता की मुक्ति (आलोचना)	नन्द किशोर नवल	वाणी प्रकाशन, दरिया गंज, नयी दिल्ली-02	द्वितीय संस्करण 1996

28.	कविता के नये प्रतिमान	डा.नामवर सिंह	राजमकल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
29.	कविताएं-2	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1978
30.	कवितांतर	सं. जगदीश गुप्त	आराधना प्रेस, कानपुर	प्रथम संस्करण 1973
31.	कवि केदार	व्योम शेखर	लोकभारती प्रकाशन गाजियाबाद	प्रथम संस्करण 1986
32.	कवि दृष्टि	अज्ञेय	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाकद	प्र.सं.1983
33.	कविता की तीसरी आँख	डा. प्रभाकर श्रोत्रिय	राधाकृष्ण प्रकाशन दरिया गंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
34.	कविता का अन्त	नन्द किशोर नवल	वाणी प्रकाशन, दरिया गंज, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण 1996
35.	कविता का आधुनिक - परिप्रेक्ष्य	डा.मत्स्येन्द्र शुक्ल	सुपर फाइन प्रिंटर्स इलाहाबाद	प्रथम संस्करण
36.	कविता की लोक प्रकृति	डा.जीवन सिंह	अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम संस्करण
37.	कविता के नये सीमान्त	डा.रघुवीर सिंह	पराग प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली	प्रथम संस्करण
38.	कविता का अर्थात्	परमानन्द श्रीवास्तव	आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा	प्रथम संस्करण 1999
39.	काव्य शास्त्र	डा.भगीरथ मिश्र	श्री महावीर प्रेस भेलपुरा वाराणसी-1	षष्ठ संस्करण 1980
40.	काव्य बिम्ब और छायावाद	डा.सुरेन्द्र माथुर	ज्ञानभारती प्रकाशन माडल टाउन दिल्ली-9	प्रथम संस्करण 1969
41.	काव्यास्वाद के नव्य निकष	डा.रवीन्द्रनाथ मिश्र	नरेश प्रकाशन, दुर्गापुरी दिल्ली-13	प्रथम संस्करण 2001
42.	काव्य के रूप	गुलाबराय	आत्माराम एण्ड संस नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1992
43.	काव्य-चिंतन	डा.नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली-6	प्रथम संस्करण 1967
44.	काव्य-बिम्ब	डा.नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	प्रथम संस्करण 1967
45.	काव्य-भाषा	डा.अरूण प्रकाश मिश्र	संस्कृति प्रकाशन अहमदाबाद	प्रथम संस्करण 1989

46.	काव्य में उदात्त तत्व	डा. नगेन्द्र	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	प्रथम संस्करण 1961
47.	काव्य के तत्त्व	आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम संस्करण
48.	कितनी नावों में कितनी बार	अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नइ दिल्ली	सातवाँ संस्करण 1992
49.	कुछ और कविताएँ	शमशेर बहादुर सिंह	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1961
50.	खूँटियों पर टँगे लोग	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	तृतीय संस्करण 1991
51.	चाँद का मुँह टेढ़ा	मुक्तिबोध	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन	द्वितीय संस्करण 1975
52.	चौथा सप्तक	सं. अज्ञेय	सरस्वती विहार प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1975
53.	जमीन पक रही है	डा.केदारनाथ सिंह	प्रकाशन संस्थान शाहदरा, दिल्ली	तृतीय संस्करण 1982
54.	डा.केदारनाथ सिंह का कर्म (लघु शोध प्रबंध)	मधु गुप्ता	लघु शोध कार्य, गोवा विश्वविद्यालय	सन्1993-94 पुस्तकालय, गोवा विश्व-विद्यालय
55.	तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना	डा.राजेन्द्र प्रसाद	वाणी प्रकाशन दरिया गंज नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण 1996
56.	तार सप्तक	सं.अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6	तृतीय संस्करण 1970
57.	ताना-बाना	सं. केदारनाथ सिंह एवं के. सच्चिनानंद	किताबघर प्रकाशन दर्या गंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 2000
58.	तीसरा सप्तक	सं अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-6	तृतीय संस्करण 1967
59.	दूसरा सप्तक	सं.अज्ञेय	सरस्वती विहार प्रकाशन दरिया गंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
60.	नई कविता	देवराज	वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1987
61.	नई कविता और	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन	द्वितीय प्रकाशन

	अस्तित्ववाद		नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली-02	1987
62.	नई कविता स्वरूप और समस्याएँ	डा.जगदीश गुप्त	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण 1969
63.	नई कविता-3	वही	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम संस्करण 2000
64.	नई कविता अंक-1	विजय देव नारायण साही	किताब महल, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण 1959
65.	नई कविता	नन्ददुलारे बाजपेई	भारती भंडार प्रकाशन इलाहाबाद	प्रथम संस्करण 1966
66.	नया काव्य नये मूल्य	ललित शुक्ल	स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1999
67.	नयी कविता की भूमिका	डा.अंजनी कुमार	शारदा प्रकाशन, दरिया गंज, नई दिल्ली-2	प्रथम संस्करण 1988
68.	नयी समीक्षा नये संदर्भ	डा.रामाधार शर्मा	प्रगती प्रकाशन, आगरा	प्रथम संस्करण 1974
69.	नये कवि एक अध्ययन	डा.संतोष कुमार तिवारी	भारतीय ग्रन्थ निकेतन दरिया गंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1991
70.	नये कवियों के काव्य-शिल्प-सिद्धान्त	दिविक रमेश	पराग प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
71.	नामवर के विमर्श	सं.सुधीश पचौरी	प्रवीण प्रकाशन, महरौली नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1995
72.	परिवेश हम-तुम	कुँवर नारायण	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण 1987
73.	प्रतिनिधि कविताएँ	डा.केदारनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2	प्रथम संस्करण 1985
74.	बाघ	डा.केदारनाथ सिंह	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोदी रोड, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1996
75.	मुक्तिबोध रचनावली	सं.नेमिचन्द्र जैन	भारती प्रिंटर्स शाहदरा नई दिल्ली-32	प्रथम संस्करण 1980
76.	मेरे समय के शब्द	डा.केदारनाथ सिंह	राधाकृष्ण प्रकाशन दरिया गंज नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1993
77.	यहाँ से देखो	डा.केदारनाथ सिंह	वही	द्वितीय संस्करण 1984
78.	शब्द जहाँ सक्रिय है	डा.नन्दकिशोर नवल	नेशनल पब्लिशिंग	प्रथम संस्करण

			हाउस, दरिया गंज नई दिल्ली-02	1986
79.	शोध भारती	सं.डा.रामगोपाल सिंह	अखिल भारतीय अनुवाद परिषद, अहमदाबाद	जुलाई 1998
80.	शैली विज्ञान और पाश्चात्य एवं भारतीय शास्त्र	प्र. राघव प्रकाश	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर	प्रथम संस्करण
81.	शैली विज्ञान	डा.सुरेश कुमार	दि मैक मिलन कंम्पनी आफ इंडिया, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1977
82.	शैली विज्ञान	डा.नीरजा टण्डन	ईस्टर्न बुक लिंकर्स जवाहर नगर, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1996
83.	शैली विज्ञान	डा.नगेन्द्र	महल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, नयी दिल्ली	द्वितीय संस्करण 1980
84.	शैली विज्ञान	डा. सुरेश कुमार	द मॅकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड नई दिल्ली, कलकत्ता	प्रथम संस्करण 1977
85.	संकल्प कविता दशक	डा.केदारनाथ सिंह	हिन्दी अकादमी नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1992
86.	सदी के अंत में कविता	सं.विजय कुमार	उद्भावना प्रकाशक शाहदरा, दिल्ली-95	प्रथम संस्करण 1998
87.	सप्तक काव्य	डा.अरविन्द पाण्डेय	मैक मिलन प्रेस मद्रास-02	प्रथम संस्करण 1976
88.	समकालीन काव्य यात्रा	नन्दकिशोर नवल	किताब घर दरियागंज नयी दिल्ली-02	प्रथम संस्करण 1994
89.	समकालीन हिन्दी कविता	डा.केदारनाथ सिंह भाटी	साहित्य प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर	प्रथम संस्करण 1992
90.	वही	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली	प्रथम संस्करण 1982
91.	साहित्य सहचर	डा.हजारी प्रसाद द्विवेदी	लोकभारती प्रेस महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-2	प्रथम संस्करण 1982
92.	साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य	डा.रघुवंश	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन कलकत्ता	प्रथम संस्करण 1968
93.	हिन्दी काव्य में प्रतीक	वीरेन्द्र सिंह	पंचशील प्रकाशन जयपुर	प्रथम संस्करण 1983

94.	हिन्दी की जनवादी कविता	डा.वशिष्ठ अनूप	राधा पब्लिकेशन्स दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम संस्करण
95.	हिन्दी के प्रमुख कवि रचना और शिल्प	डा. अरविन्द पाण्डेय	अनुभव प्रकाशन कानपुर	प्रथम संस्करण 1986

पत्र-पत्रिकाएं

01.	आलोचना(त्रैमासिक)	प्र.स.नामवर सिंह	सूरज कुण्ड, गोरखपुर	वर्ष 1996
02.	इंडिया टुडे	सं. प्रभु चावला	कनाट प्लेस नई दिल्ली	साहित्य वार्षिकी-2000
03.	वही	वही	वही	1993-94
04.	अंतराष्ट्रीय श्रोता समाचार अंक -2		इलाहाबाद	16 से 30 सितम्बर1997
05.	गगनाञ्चल अंक-2	सं.रेवती रमण	अंक 3-4	वर्ष-1989
06.	नया पथ अंक 24-25	प्र.स.शिवकुमार मिश्र	पटेल हाउस नई दिल्ली	अंक-24-25 22 अक्तूबर-2000
07.	नवभारत टाइम्स			
08.	प्रकर	डा.श्यामसुन्दर घोष	राजकमल नई दिल्ली	अगस्त 1988
09.	प्रतीक	सं.अज्ञेय		जून 1951
10.	बहुवचन (त्रैमासिक पत्रिका)	सं.अशोक वाजपेयी	अन्तराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय नई दिल्ली	अप्रैल 1998
11.	वर्तमान साहित्य	सं.लीलाधर मण्डलोई	शाहदरा दिल्ली-32	मई-जून 2001
12.	वसुधा (अनियत कालिक पत्रिका)	सं.प्रो कमला प्रसाद	ऑफसेट प्रिंटर्स भोपाल.	जून 2000
13.	शताब्दी कविता (विशेषांक)	सं.रघुनाथ शर्मा	मुकुन्दनगर गाजियाबाद	मई-जून-2000
14.	शोध भारती	सं.राम गोपालसिंह	अहमदाबाद	जुलाई-सितम्बर अंक वर्ष-1998
15.	समीक्षा	सं.गोपाल राय	मैदान गढ़ी, नई दिल्ली	जून-1996
16.	साक्षात्कार	सं.भगवत रावत		मई 1998
17.	संकल्प (कविता दशक)	सं.केदारनाथ सिंह	हिन्दी अकादमी नई दिल्ली	सन् 1992
18.	हिन्दी अनुशीलन (भारतीय हिन्दी परिषद का त्रैमासिक मुख-पत्र)	सं डा.कामता कमलेश	भारतीय हिन्दी परिषद	सितम्बर - दिसम्बर-1998
19.	हंस	सं.राजेन्द्र यादव	अन्सारी रोड	जन-फरवरी-98

			दरियागंज, नई दिल्ली	2000
20.	वर्तमान साहित्य	सं. लीलाधर मण्डलोई	शाहदरा, दिल्ली-32	मई-जून2000

शब्द कोश

1.	बृहत हिंदी कोश	सं.कालिका प्रसाद		
2.	वाचस्पत्यम भाग छः	सं. तारानाथ भट्टाचार्य		
3.	संस्कृत हिन्दी कोश	सं. वामन शिवराम आप्टे	नवभारतीय कॉर्पोरेशन नई दिल्ली	चतुर्थ संस्करण 2000
4.	विशाल शब्द सागर	सं.श्रीनवल जी	आदीश बुक डेपो करौल बाग नई दिल्ली	जुलाई-1989